"HINDI KAHANI ME MUSLIM JEEVAN KI ABHIVYKTI (SAN 2000 SE 2010 TAK)"

Thesis Submitted in Partial Fulfilment of the Requirement for the

Degree of "DOCTOR OF PHILOSOPHY" in Hindi

JANUARY 2018

BY

JYOTISH KUMAR YADAV

(14HHPH08)

SUPERVISIOR-PROFESSOR GARIMA SRIVASTAVA

DEPARTMENT OF HINDI

SCHOOL OF HUMANITIES

UNIVERSITY OF HYDERABAD

HYDERABAD, TELANGANA-500046

“हिन्दी कहानी में मुस्लिम जीवन की अभिव्यक्ति (सन् 2000 से 2010 तक)”

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की पीएच. डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध)

जनवरी 2018

शोधार्थी

ज्योतिष कुमार यादव

शोध निर्देशिका

प्रो. गरिमा श्रीवास्तव

विभागाध्यक्ष

प्रो. सच्चिदानंद चतुर्वेदी

हिन्दी विभाग

मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"HINDI KAHANI ME MUSLIM JEEVAN KI ABHIVYKTI (SAN 2000 SE 2010 TAK)" "हिन्दी कहानी में मुस्लिम जीवन की अभिव्यक्ति (सन् 2000 से 2010 तक)"** submitted by **JYOTISH KUMAR YADAV** bearing Regd. No. 14HHPH08 in partial fulfilment of the requirements for the award of Doctor of Philosophy in HINDI is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance which is a plagiarism free thesis.

As far as we know the thesis has not been submitted previously in part or full to this or any other University of Institution for the award of any degree or diploma.

Signature of Supervisor

Head of Department

Dean of the School of Humanities

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"HINDI KAHANI ME MUSLIM JEEVAN KI ABHIVYKTI (SAN 2000 SE 2010 TAK)" "हिन्दी कहानी में मुस्लिम जीवन की अभिव्यक्ति (सन् 2000 से 2010 तक)"** submitted by **JYOTISH KUMAR YADAV** bearing Reg. No. 14HHPH08 in partial Fulfillment of requirements for award of Doctor of Philosophy in Hindi in the School of Humanities is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

This thesis is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other university or institution for award of any degree or diploma.

Parts of this thesis have been :

A. published in the following publications:

1. 'Ekkisavi Sadi Ke Pahle Dashak Ki Kahaniya Aur Muslim Jeevan' (ISSN No.2454-2725) Chapter-2

2.Dharm, Satta Aur Stree Adhikaron Ki Abhivykti-Nasira Sharma Ki Kahaniya (ISSN No. 2454-6283) Chapter-4

And

B. presented in the following conferences:

1. "HINDI AUR URDU KI SAAJHI VIRASAT" Organized By Department of Hindi, Maulana Azad National Urdu University, Gachibowli, Hyderabad, India (30-31 March,2017).(International)

2. "AMARKANT EVAN SREELAL SHUKL KE SAHITY ME VYVSTHA KI VIDMABNA" Organized By Department of Hindi, The English And Foreign Languages University, Hyderabad, Telanagana, India, (30 January,2015)(National)

Further the student has passed the following courses towards fulfillment of coursework requirement for Ph.D. was exempted from doing coursework (Recommended by Doctoral Committee) on the basis of the following courses passed during his M.Phil. degree was awarded.

Course Code	Name	Credits	Pass/Fail
1. Paper-1	Research Methodology	4	Pass
2. Paper-2	Modern Thought	4	Pass
3. Paper-3	Philosophy of History Literature	4	Pass
4. Paper-4	Dissertation	16	Pass

Supervisor Head of Department Dean of School

DECLARATION

I, **JYOTISH KUMAR YADAV**, hereby declare that this thesis entitled **"HINDI KAHANI ME MUSLIM JEEVAN KI ABHIVYKTI (SAN 2000 SE 2010 TAK)" "हिन्दी कहानी में मुस्लिम जीवन की अभिव्यक्ति (सन् 2000 से 2010 तक)"** submitted by me under the guidance and supervision of **Professor Garima Srivastava** is a bonafide research work. Which is also free from plagiarism. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this university or any other university or institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in SHODHGANGA/ INFLIBNET.

Date -

Signature of the Supervisor

Name : **JYOTISH KUMAR YADAV**

(Signature of the Student)

Reg. No. 14HHPH08

हिन्दी कहानी में मुस्लिम जीवन की अभिव्यक्ति (सन् 2000 से 2010 तक)

अनुक्रमणिका

भूमिका I-VII

प्रथम अध्याय : मुस्लिम जीवन का रचनात्मक परिप्रेक्ष्य 1-42

1.1 मुस्लिम जीवन और हाशिये की वैचारिकी

1.2 भारतीय सन्दर्भ में मुस्लिम समाज

1.3 अंतर्राष्ट्रीय सन्दर्भ में मुस्लिम समाज

1.4 मुख्यधारा और मुस्लिम समाज

1.5 मुस्लिम समुदाय की विविधमुखी अभिव्यक्ति

द्वितीय अध्याय : हिन्दी में मुस्लिम जीवन केन्द्रित कहानियों का कथ्य 43-88

2.1 मुस्लिम जीवन पर आधारित कहानियों की क्रमवार सूची

2.2 हिन्दू कहानीकार

2.3 मुस्लिम कहानीकार

2.4 मुस्लिम जीवन को केंद्र बनाकर लिखी गई कहानियों का कथ्य (सन् 2000 से 2010 तक)

तृतीय अध्याय : मुस्लिम जीवन की कहानियों की आलोचना : वस्तु एवं शिल्प 89-160

3.1 शिल्प और वस्तु की अवधारणा

3.2 इक्कीसवीं सदी के पहले दशक की कहानियों का शिल्पगत वैशिष्ट्य

3.2.1 कहानी में शैलीगत प्रयोग

3.2.2 कहानी के शीर्षक चुनावों में नवीनता

3.2.3 कथानक के स्तर पर प्रयोग

3.2.4 पात्रों के नामकरण के चुनाव संबंधित वैविध्य

3.2.5 शिल्प के स्तर पर विधागत प्रयोग

3.2.6 लम्बी कहानी के क्षेत्र में नए प्रयोग

3.3 मुस्लिम जीवन केन्द्रित कहानियों की आलोचना : चयनित कहानियों के सन्दर्भ में

चतुर्थ अध्याय : मुस्लिम कहानीकारों की स्त्री-दृष्टि 161-188

4.1 मुस्लिम कहानीकारों की स्त्री दृष्टि-कुछ विशिष्ट कहानियों के सन्दर्भ में

4.2 मुस्लिम स्त्री रचनाकारों और पुरुष रचनाकारों की रचनात्मक दृष्टि में अंतर

4.3 कहानियों में स्त्री चरित्रों के वैविध्यपूर्ण सन्दर्भ और उनका वैशिष्ट्य

उपसंहार 189-194

आधार ग्रन्थ सूची 195-196

संदर्भ ग्रन्थ सूची 197-200

सहायक ग्रन्थ सूची 201-204

पत्र-पत्रिकाएँ 205

शब्द-कोश 206

इन्टरनेट सन्दर्भ 207

प्रकाशित लेख

भूमिका

भारत में इस समय 14.2 % मुसलमानों की आबादी है[1] । भारतीय मुस्लिम समुदाय का जीवन आज भी बहुत बेहतर स्थिति में नहीं है । पहला कारण है सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से पिछड़ापन, दूसरा कारण, तुष्टीकरण के नाम पर इनका वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल किया जाना । हालाँकि इस समुदाय में उच्च वर्ग(अशरफ) की स्थिति, निम्न वर्ग(अरजाल) की अपेक्षा बेहतर स्थिति में है । इसके अलावा ऐसे बहुत से आर्थिक और मनोसामाजिक कारण हैं जिसके कारण मुस्लिम समुदाय पिछड़ा हुआ है। इस शोध-प्रबंध में इक्कीसवीं सदी के पहले दशक की कहानियों में मुस्लिम-जीवन की स्थितियों को विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है । यह भी देखने का प्रयास किया गया है कि मुस्लिम जीवन की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति के यथार्थ का इन कहानियों में किस सीमा तक चित्रण हुआ है।

भारत में बीसवीं सदी का पूरा काल सामाजिक उथल-पुथल का काल रहा है । जिसमें चालीस के दशक में भारत-विभाजन की घटना एक त्रासद घटना के रूप में इतिहास में दर्ज है । भारत को आज़ादी मिलने के इतने वर्षों बाद भी भारतीय समाज में नई-पुरानी समस्याओं का विकट रूप आज भी विद्यमान है । विकट समस्याओं के रूप में साम्प्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रवाद, धर्मान्धता, अल्पसंख्यकों की त्रासदी, लैंगिक शोषण, दलित वर्ग की पीड़ा, उपभोक्तावाद, बाजारवाद, भूमंडलीकरण से उत्पन्न दैनंदिन समस्याओं को देखा जा सकता है । इन समस्याओं और जीवन के नित बदलते यथार्थ को हिन्दी कहानियों में कथानक के तौर पर ग्रहण किया गया है ।

भारतीय समाज की संरचना में सामासिक या साझी संस्कृति का जुड़ाव है या यह भी कह सकते हैं कि भारतीय समाज में कई संस्कृतियों का संगम है, जो अपने आप में बहुत बड़ी विशेषता है । मुस्लिम समाज की जो संस्कृति है वह भी साझी संस्कृति का एक अंग है । भारतीय समाज में मुस्लिम संस्कृति का मिश्रण और ऐक्य को दरकिनार नहीं किया जा सकता, न ही भारत की समग्रता को मुस्लिम समुदाय को अलग करके सम्पूर्णता में देख पाना संभव हो सकता है । किन्तु, भारत-विभाजन की घटना से लेकर आज

[1] https://en.wikipedia.org/wiki/islam_in_india.

तक जो समस्याएँ मुस्लिम समुदाय में व्याप्त हैं, राजनीति, शिक्षा, सामाजिक समानता के क्षेत्र में मुस्लिम समुदाय की समस्याओं के भिन्न स्वभाव की उपेक्षा हम नहीं कर सकते। समूचे कथा-साहित्य विशेषकर हिन्दी कहानी में मुस्लिम समुदाय के यथार्थ चित्रण के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। विशिष्ट बात ये है कि इस दशक के कहानीकारों ने मुस्लिम जीवन की प्रत्येक समस्याओं को छूने का प्रयास किया है। इक्कीसवीं सदी के पहले दशक के कहानीकारों में अब्दुल बिस्मिल्लाह, असगर वजाहत, नासिरा शर्मा, अनवर सुहैल, शमोएल अहमद, मो.आरिफ़, शकील, हसन जमाल, हृषीकेश सुलभ, फजल इमाम मल्लिक, शमीम, उद्दीन अहमद, मंजूर एहतेशाम, जाबिर हुसैन, मोहसिन खान, महमूद अय्यूबी, साजिद रशीद, गज़ाल ज़ैगम, अकिल कैस, मुशर्रफ आलम जौकी, नीलाक्षी सिंह, मेराज अहमद, नीला प्रसाद, अनुज, हबीब कैफ़ी, नसरीन बानो एवं गीतांजलि श्री आदि चर्चित हैं, जिन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से मुस्लिम जीवन की स्थितियों का यथार्थ चित्रण किया है।

भारतीय मुसलमानों की स्थिति सदैव एक जैसी नहीं रही है। निम्नवर्गीय या कहें गरीब मुस्लिम जनता हमेशा बदहाल रही है। उच्च वर्ग(अशरफ) मध्यकाल में शासक वर्ग से जुड़े हुए थे। लेकिन ब्रिटिश काल में आकर गुलाम बन गए। वहीं भारत-विभाजन के बाद नए संभ्रांत वर्ग के मुसलमान पाकिस्तान चले गए, बचे रहे निम्नवर्ग के मुसलमान या साधारण कामगार लोग। आज इस समुदाय की स्थिति यह है कि एक वर्ग तो बेहतर स्थिति में है लेकिन दूसरा वर्ग जिसे 'पसमांदा समाज' के नाम से जाना जाता है वह हाशिये की ज़िंदगी जी रहा है।

इस शोध कार्य में इस बात की ओर भी ध्यान दिया गया है कि क्या इक्कीसवीं सदी के पहले दशक के कहानीकारों ने मुस्लिम समुदाय की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक स्थिति पर राजेन्द्र सच्चर की रिपोर्ट में जो अनुशंसाएँ सरकार को पेश की गई थीं उसको ज़ेहन में रखकर कहानियाँ लिखी हैं या नहीं ? इस दशक की कुछ कहानियों में सच्चर समिति की अनुशंसाओं को केंद्र बनाकर कहानियाँ लिखी गई हैं, जिनमें मुस्लिम समुदाय की स्थिति का पूरा ब्यौरा मिलता है। राजेंद्र सच्चर समिति का गठन 9 मार्च 2005 को किया गया था। संसद में इसको 30 नवम्बर 2006 को प्रस्तुत किया गया तथा मंत्रीमंडल द्वारा कार्यवाही 17 मई 2007 को की गई। इस उच्च स्तरीय समिति में कुल 76 सिफारिशें थीं, जिनमें से 72 स्वीकृत हुईं,

तीन अस्वीकृत और एक स्थगित कर दी गई। सच्चर कमेटी की रिपोर्ट 12 पृष्ठों और 425 अध्यायों में विभाजित थी । अनुशंसाओं में समान अवसर उपलब्ध कराने के क़ानूनी आधार को बढ़ावा देना, पारदर्शिता, मॉनीटरन और आकड़ों की उपलब्धता की जरूरत, सरकार में भागीदारी को बढ़ावा, शिक्षा की जरूरत, कर्ज और सरकारी कार्यक्रमों तक पहुँच बढ़ाना, रोजगार के अवसर और स्थितियों को सुधारना, अवसंरचना प्रावधान की निपुणता को बढ़ाना, समुदाय के प्रयासों को प्रोत्साहन देना, मौलाना आज़ाद शिक्षा प्रतिष्ठान, अजमेर दरगाह अधिनियम को संशोधित करने की जरूरत, कानूनी और प्रशासनिक सुधार-परिहार्य न्यायिक कमजोरियों को दूर करना, लीज की अवधि को बढ़ाना, गलत तरह से कब्ज़ा की गई संपत्ति (विस्तार) की वापसी की समय सीमा बढ़ाना, कानूनी प्रावधानों को लागू करना आदि प्रमुख थीं। सरकार के सामने जो भी अनुशंसाएँ पेश की गई थीं उसे सैद्धांतिक रूप से तो पूरा किया गया परन्तु व्यावहारिक रूप से कोई ख़ास कदम नहीं उठाए गए। जिसके कारण आज मुस्लिम समुदाय का एक बड़ा तबका हाशिये की ज़िंदगी जीने को विवश है।

इक्कीसवीं सदी के पहले दशक की कहानियों में कुछ ऐसी कहानियाँ हैं, जिनके कथानक समस्याग्रस्त हैं । इन कहानियों में तहारत(शकील), नुक्ताचीं है गमे-दिल(हसन जमाल), खुला(हृषीकेश सुलभ), जिहाद(सरोज खान 'बातिश'), तमाशा(मंजूर एहतेशाम), कागज़ी बादाम(नासिरा शर्मा), मैं हिन्दू हूँ(असगर वजाहत), जोहरा(मोहसिन खान), आतंक(महमूद अय्यूबी), तपती रेत(ज़ेबा रशीद), नेक परवीन(गज़ाल ज़ैगम), परिंदे का इंतजार-सा कुछ(नीलाक्षी सिंह), शेर खां(विजय), चादर(सलाम बिन रज्जाक), एक दुनिया समानांतर(नीला प्रसाद), बाबुल का द्वार(नसरीन बानो), ग्यारह सितम्बर के बाद(अनवर सुहैल), चहल्लुम(अनवर सुहैल), ऊँट(शमोएल अहमद) एवं बेल-पत्र(गीतांजली श्री) आदि चर्चित हैं।

मुसलमानों को अल्पसंख्यक कहा गया, जबकि 'अल्पसंख्यक' पर बात की जाए तो, यह कहना बहुत मुश्किल है कि यह समुदाय अथवा यह समाज अल्पसंख्यक है। अल्पसंख्यक किसे कहा जाए? इसके लिए कोई सर्वमान्य कसौटी अथवा परिभाषा निश्चित नहीं है। जहाँ 1 और 99 होंगे, वहाँ 1 अल्पसंख्यक होगा और 99 बहुसंख्यक। इसी प्रकार 49 और 50 में केवल एक अंतर होने के बावजूद भी यहाँ पर 49

अल्पसंख्यक होगा और 50 बहुसंख्यक। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि कोई सटीक कसौटी निर्धारित नहीं है अल्पसंख्यक के बारे में। कोई वस्तु अधिक की तुलना में कम होगी तो उसे कम अथवा अल्पसंख्यक का बोध अवश्य हो जाएगा, परन्तु वह वस्तु अधिक की तुलना में कितनी कम होगी इसकी कोई मात्रा निश्चित नहीं है। इसका सबसे बड़ा प्रभाव राजनीतिक क्षेत्र में देखा जा सकता है। मात्रा और संख्या निर्धारित न होने के कारण अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक में संघर्ष होता रहता है। विश्व में शायद ही ऐसा कोई देश होगा, जहाँ पर अल्पसंख्यक नहीं होंगे। इन्सान की दुनिया में अल्पसंख्यक की समस्या उसी दिन प्रारम्भ हो गई थी, जिस दिन दुनिया का निर्माण हुआ था या यह कह सकते हैं कि जिस दिन दुनिया बनी। कृषि युग में इसका विस्तार देखने को मिलता है। बाद में जैसे-जैसे मनुष्य प्रगति करता गया, विकास करता गया, धन अर्जित करने की लालसा बढ़ी, सत्ता हथियाने की प्रवृत्ति बढ़ी, उसी समय से समाज का बँटवारा होता चला गया। धर्म में, धन में, राज्य की सत्ता में, सभी स्थानों पर 'अल्पसंख्यक' शब्द प्रचलन होता चला गया। दुनिया में किसी भी रूप में 'अल्पसंख्यक' अस्तित्व में है, वहाँ संघर्ष या कहें रक्तपात जरूर हुआ है। सन् 1830 से 1870 के बीच जो नए राज्य बने उसमें धर्म की समानता के आधार पर उनको सुरक्षा प्रदान की गई जो अंतर्राष्ट्रीय समझौते का एक नियम था। बीसवीं शताब्दी में दो महायुद्ध लड़े गए, जिसमें अल्पसंख्यक समस्या बहुत तेजी से उभरकर सामने आई। उसके निवारण के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रयास किए गए।

जब प्रथम विश्वयुद्ध हुआ तब यह लोगों को आभास हुआ कि जब तक अल्पसंख्यकों की समस्याओं को दूर नहीं किया जाएगा, तब तक युद्ध का ख़तरा मँडराता ही रहेगा। इसी बात को मद्देनजर रखते हुए प्रथम महायुद्ध के बाद 'लीग ऑफ़ नेशंस', "संयुक्त राष्ट्र एक अंतरराष्ट्रीय संगठन है, जिसके उद्देश्य में उल्लेख है कि यह अंतरराष्ट्रीय कानून को सुविधाजनक बनाने के सहयोग, अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा, आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति, मानव अधिकार और विश्व शांति के लिए कार्यरत है। संयुक्त राष्ट्र की स्थापना 24 अक्टूबर 1945 को संयुक्त राष्ट्र अधिकारपत्र पर 50 देशों के हस्ताक्षर होने के साथ हुई।"[2] ने एक नियम बनाया। जिसमें आनुवांशिक, भाषाई और जातीय अल्पसंख्कों को सुरक्षा प्रदान की गई। प्रथम महायुद्ध के बाद कई देशों की सीमाएँ बदल गईं। एक देश के भूभाग पर रहने वाले मनुष्य जब दूसरे देश के

[2] https://hi.wikipedia.org/wiki/संयुक्त_राष्ट्र

भूभाग पर गए तो वहाँ वह अल्पसंख्यक हो गए। देशों की जो पुरानी सीमाएँ थीं उसमें रहने वाले लोगों की एक ही राष्ट्रीयता थी। लेकिन सीमाओं के विस्तार के कारण दूसरे देशों के लोग आकर निवास करने लगे। कोई देश अगर दूसरे भूभाग को जीत लेता है तो इसका मतलब यह कतई नहीं है कि वहाँ के निवासियों के दिलों, दिमाग पर भी कब्ज़ा कर लेगा। अब यह मामला सामने आया कि अगर दूसरे भूभाग के लोगों को अपने देश में शामिल करना है तो उनके धर्म, जाति, भाषा और उनकी परम्पराओं को अपने संविधान में मान्यता प्रदान करनी होगी। यदि ऐसा नहीं होगा तो उसमें अलगाव की मानसिकता उभरेगी। यहीं वह जड़ है जहाँ से अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक का मामला शुरू होता है। बाद में चलकर 'लीग ऑफ़ नेशंस' की देख-रेख में कई संधियाँ और समझौते हुए।

राष्ट्रसंघ की स्थापना के बाद अल्पसंख्यक के अधिकारों और उनकी सुरक्षा के लिए विश्व में अधिक चर्चा होने लगी। इसके लिए सन् 1947 में सब-कमीशन का गठन किया गया। राष्ट्रसंघ में यह बात जोरों पर उठी कि अल्पसंख्यकों को उस राज्य से तभी सुरक्षा और सुविधा प्रदान की जायेगी, जबकि वह उस राज्य के नागरिक हों अथवा उन्हें उस राज्य की नागरिकता प्राप्त हो। अल्पसंख्यक समुदाय के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए नागरिकता को अनिवार्य बनाकर राष्ट्रसंघ ने इस पर कार्य किया। सन् 1950 में राष्ट्रसंघ के महामंत्री ने ज्ञापन तैयार किया, जिसका शीर्षक था- 'परिभाषा और अल्पसंख्यकों का वर्गीकरण', इसके अंतर्गत अल्पसंख्यक की कुछ परिभाषाएँ निश्चित की गईं, अल्पसंख्यक समुदाय के अधिकारों, उनके लिए सुरक्षा के प्रावधानों आदि पर कुछ नियम बनाए गए। परन्तु 'अल्पसंख्यक' शब्द की कोई निश्चित परिभाषा तय नहीं हो पाई। आज प्रत्येक देश में रह रहे अल्पसंख्यकों की अलग-अलग समस्याएँ हैं। प्रत्येक देश अपने ढंग से उनके अधिकारों की रक्षा करता है। एक बात यह भी देखने को मिलती है कि अल्पसंख्यक अपनी अस्मिता की पहचान और अधिकारों को लेकर देश की सरकार पर अधिक दबाव डालते हैं, जो कहीं न कहीं संघर्ष का कारण बनता है।

भारत देश के सन्दर्भ में 'अल्पसंख्यक' के बारे में बात करें तो, यहाँ भी कोई निश्चित परिभाषा नहीं बन पाई है। किस मानक के आधार पर किसी समुदाय को अल्पसंख्यक कहा जाएगा यह बहुत बड़ा प्रश्न

है? कुछ विचारकों का मानना है कि भाषा, धर्म और जनसंख्या के आधार पर अल्पसंख्यकों का निर्धारण किया जा सकता है।

प्रस्तुत विषय पर शोध करने की प्रेरणा मुझे राही मासूम रज़ा के कथा-साहित्य को पढ़ने और अपने प्रान्त में नजदीक से मुसलमानों की स्थिति को देखने से मिली। प्रसंगतः मैंने मुस्लिम जीवन पर आधारित कई चलचित्र भी देखे और लगभग अनछुए विषय पर शोध कार्य करने का मन बनाया। शोध-प्रबंध में विषय के अनुरूप आलोचनात्मक, तुलनात्मक, मनोवैज्ञानिक आदि शोध पद्धति का समन्वित प्रयोग किया। अध्ययन, विश्लेषण की सुविधा हेतु शोध-प्रबंध को चार अध्यायों में विभाजित किया।

प्रथम अध्याय में मुस्लिम जीवन के रचनात्मक पक्ष का विस्तार पूर्वक आकलन किया गया है। साथ ही साथ मुस्लिम समुदाय में जो तबका हाशिये पर है उस पर भी दृष्टिपात किया गया है। जिसका शीर्षक है- 'मुस्लिम जीवन का रचनात्मक परिप्रेक्ष्य', इस शीर्षक के अंतर्गत पाँच उपबिंदु भी हैं- पहला, मुस्लिम जीवन और हाशिये की वैचारिकी। दूसरा, भारतीय सन्दर्भ में मुस्लिम समाज। तीसरा, अंतर्राष्ट्रीय सन्दर्भ में मुस्लिम समाज। चौथा, मुख्यधारा और मुस्लिम समाज। पांचवाँ, मुस्लिम समुदाय की विविधमुखी अभिव्यक्ति। द्वितीय अध्याय का शीर्षक है- 'हिंदी में मुस्लिम जीवन केन्द्रित कहानियों का कथ्य'। इस अध्याय के अंतर्गत सन् 2000 से 2010 के बीच मुस्लिम जीवन, जिन कहानी-संग्रहों अथवा कहानियों में व्याप्त है, उसका उल्लेख किया गया है। इस अध्याय के चार उपबिंदु हैं- पहला, मुस्लिम जीवन पर आधारित कहानियों की क्रमवार सूची। दूसरा, हिन्दू कहानीकार तीसरा, मुस्लिम कहानीकार। चौथा, मुस्लिम जीवन को केंद्र बनाकर लिखी गई कहानियों का कथ्य(सन् 2000 से 2010 तक)।

तृतीय अध्याय में मुस्लिम जीवन पर आधारित चयनित कहानियों की वस्तु और शिल्प पर बात की गई है, जिसका शीर्षक है -'मुस्लिम जीवन की कहानियों की आलोचना: वस्तु एवं शिल्प'। इस अध्याय में शिल्प और वस्तु की अवधारणा और उनके अन्तःसम्बन्ध का विश्लेषण किया गया है और साथ ही इक्कीसवीं सदी के पहले दशक की कहानियों के शिल्पगत वैशिष्ट्य का विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है। इस अध्याय में कुल तीन उपशीर्षक हैं।

चतुर्थ अध्याय का शीर्षक -'मुस्लिम कहानीकारों की स्त्री दृष्टि' है। इस अध्याय में इक्कीसवीं सदी के पहले दशक की कहानियों में मुस्लिम स्त्री समस्या को देखने का प्रयास किया गया है। उन कहानीकारों का उल्लेख किया गया है, जिनकी कहानियों में मुस्लिम स्त्री की स्थिति का यथार्थ अंकन हुआ है, साथ ही मुस्लिम स्त्री- रचनाकारों और पुरुष रचनाकारों की रचनात्मक दृष्टि में क्या अंतर है ? इसको भी देखने का प्रयास किया गया है।

इस शोध-प्रबंध के विषय से संबंधित सामग्री के लिए विभिन्न पुस्तकालयों से सहयोग लिया गया है, जिसमें दिल्ली, हैदराबाद, इलाहाबाद, वाराणसी और अन्य विश्वविद्यालयों के पुस्तकालय प्रमुख हैं। पत्र-पत्रिकाओं के लिए इंटरनेट का भी सहयोग इस शोध-प्रबंध को पूरा करने के लिए लिया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के अंत में उपसंहार में समस्त शोध कार्य का सारांश एवं निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

इस शोध-प्रबंध के विषय चयन से लेकर पूर्ण होने तक सम्पूर्ण प्रक्रिया में मुझे अपनी शोध निर्देशिका गुरुवर प्रो. गरिमा श्रीवास्तव का निरंतर मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है, उनको आभार व्यक्त करना चाहता हूँ। जिनके मार्गदर्शन के न मिलने से यह शोध कार्य पूरा नहीं हो पाता। उनकी विचार व्यापकता को ग्रहण कर मैंने व्यवहार में लाने का पूरा प्रयत्न किया है।

इस शोध-प्रबंध को अंतिम रूप देने में आदरणीय विभागाध्यक्ष प्रो. सच्चिदानंद चतुर्वेदी जी, डॉ. भीम सिंह जी और डॉ. श्याम राव जी का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है, उनको मैं आभार व्यक्त करता हूँ।

अंत में मैं अपने सहपाठियों, मित्रों एवं हैदराबाद विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के कर्मचारियों का आभार व्यक्त करना चाहता हूँ, जिनसे मुझे समय-समय पर बहुत सहयोग मिला। जिसके कारण अपने शोध-प्रबंध को अंतिम रूप दे पाया।

स्थान - हैदराबाद

तिथि : ज्योतिष कुमार यादव

प्रथम अध्याय

मुस्लिम जीवन का रचनात्मक परिप्रेक्ष्य

1.1 मुस्लिम जीवन और हाशिये की वैचारिकी

समाज का वह वर्ग या समुदाय जो राष्ट्रीय जीवन की मुख्यधारा में शामिल नहीं है अथवा जो राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से उपेक्षित है, पिछड़ा हुआ है, शोषित है, 'हाशिये का समाज' कहलाता है। "हाशिए की अवधारणा का सम्बन्ध समाजशास्त्र से है। समाजशास्त्र में भिन्न एवं विशिष्ट सांस्कृतिक समूहों में सहभागिक होने के कारण दुविधा, असमंजस्यता तथा मानसिक संघर्ष की स्थिति से ग्रस्त व्यक्ति को सीमांत व्यक्ति की संज्ञा दी गई है।"[1]

मुस्लिम समाज का निचला तबका ऐसा है जो हाशिये का जीवन-यापन करता है। प्रत्येक समुदाय, समाज में कुछ लोगों के पास धन-सम्पदा, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं शक्ति जैसे संसाधन अधिक रहते हैं या कह सकते हैं मूल्यवान संसाधन का हिस्सा उनके पास अधिक रहता है, जिसके कारण सामाजिक विषमता उत्पन्न होती है, जिसके पास ये संसाधन पर्याप्त मात्रा में होते हैं, वे वर्ग विकास की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं और विकास की प्रक्रिया से भी जुड़े रहते हैं। वहीं समाज में जिन वर्गों के पास इन संसाधनों का अभाव होता है, वे वर्ग या समुदाय विकास की मुख्यधारा से नहीं जुड़ पाते हैं और हाशिये पर चले जाते हैं। इस वर्ग के अंतर्गत मुस्लिम समुदाय का 'पसमांदा समाज' आता है। कह सकते हैं यही वह अंतर है जिसके कारण हाशिए के समाज का निर्माण होता है। समाज में उच्च वर्ग अपने-अपने हितों की रक्षा के लिए निम्न वर्ग को कमजोर बनाने की कोशिश करते हैं, इस तरह कमजोर वर्ग हाशिये पर चला जाता है, "सम्पन्न एवं शक्तिशाली वर्ग अपने हितों की रक्षा के लिए कमजोर वर्गों को और अधिक कमजोर बनाने की चेष्टा करते हैं। उनके लिए कई अनुकूल कानूनों की व्यवस्था की जाती है। भारत में प्राचीन काल से तथाकथित सवर्णों द्वारा एक बड़े समुदाय

का जातीय आधार पर दमन व उत्पीड़न होता रहा है। शूद्र के नाम से जाना जाने वाला यह वर्ग विभिन्न असमानताओं, अन्याय और उत्पीड़न का शिकार रहा है।"[2]

'हाशिये' का शाब्दिक अर्थ है -'किनारा',[3] अथवा 'कोर, पन्ने या पृष्ठ के चारों ओर का किनारा'[4] इत्यादि। अंग्रेजी में इसे मार्जिन (MARGIN) के अर्थ में देखा जाता है, वहीं सामाजिक सन्दर्भ में देखा जाए तो हाशिये का अर्थ उन लोगों, समूहों, समुदायों या वर्गों से है जो सामाजिक जीवन में उपेक्षित या पीड़ित हैं। इनका सामाजिक जीवन में उपेक्षा का कारण सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से पिछड़ापन है, "भारतीय समाज में कई ऐसे लोग, समूह और समुदाय हैं, जो आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से कमजोर तथा पिछड़ा होने के कारण हाशिये की ज़िन्दगी व्यतीत करने को विवश हैं।"[5]

1.2 भारतीय सन्दर्भ में मुस्लिम समाज

भारतीय संदर्भ में मुस्लिम समाज की रचनात्मक स्थिति पर विचार करने से पहले यह देख लेना समीचीन होगा कि भारत में हाशिये के समाज की अवधारणा क्या है ? हाशिये के समाज की अवधारणा का भारतीय सामाजिक परिप्रेक्ष्य में आकलन करें तो हम पाते हैं कि यहाँ वर्ग, समूह या समुदाय के हाशिये पर जाने का सबसे बड़ा कारण उनका सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक आदि स्तर पर पिछड़ापन है। आर्थिक पिछड़ापन इसके मूल में है। इसके अलावा भारतीय समाज में वर्ण, जाति, वर्ग, लिंग-भेद, समुदाय और अक्षमता जैसे कारण हाशिये के समाज का निर्माण करते हैं। वर्णगत स्तर पर देखें तो दलित या शूद्र जिन्हें 'हरिजन' कहा जाता है, भारतीय सामाजिक संरचना में 'अछूत' माने जाते हैं, सामंती समाज व्यवस्था के शोषण का शिकार यही वर्ग रहा। आज भी यह वर्ग सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़ा होने के कारण हाशिये का जीवन व्यतीत करता है। "वर्णगत स्तर पर दलित या शूद्र, जिन्हें हरिजन भी कहा जाता है, भारतीय सामाजिक संरचना में 'अछूत' माने गए हैं। 'छुआछूत' या 'अस्पृश्यता' जाति-व्यवस्था का एक अत्यंत घृणित एवं दूषित

पहलू है जो धार्मिक एवं कर्मकाण्डीय दृष्टि से शुद्धता एवं अशुद्धता के पैमाने पर सबसे नीची माने जाने वाली जातियों के विरुद्ध अत्यंत कठोर सामाजिक अनुशास्तियों (दंडों) का विधान करता है ।"[6] सामाजिक तौर-तरीकों पर भी ये वर्ग सताए जाते हैं, "तथाकथित ऊँची जाति के लोगों द्वारा इन 'अछूतों' से अनादर और अधीनता सूचक कार्य करवाना अस्पृश्यता की प्रथा का महत्वपूर्ण अंग है, ऊँची जाति के लोगों के प्रति जबरन सम्मान प्रदर्शित करने के लिए उन्हें अनिच्छापूर्वक कई व्यवहार करने पड़ते हैं।"[7]

आज के सन्दर्भ में देखा जाए तो एक सीमा तक इसमें बदलाव आया है, शिक्षा के प्रचार-प्रसार से इसमें थोड़े परिवर्तन को देखा जा सकता है, अब कुछ ख़ास अवसरों पर ही दलितों से उच्च जातियाँ भेदभाव रखती हैं और उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करती हैं, के. एल. शर्मा के अनुसार- "सवर्ण जातियाँ अब छुआछूत के मामले में उतनी गंभीर नहीं हैं। सामाजिक परिवर्तनों के अनुरूप हरिजन भी परिवर्तित हो गए हैं। सवर्ण जातियाँ बहुत कम अवसरों पर जैसे- जन्म, विवाह, सामुदायिक भोजन और उत्सवों पर अस्पृश्यता का ध्यान रखती हैं। दिन-प्रतिदिन के जीवन में एक उच्च जाति के व्यक्ति और एक हरिजन के बीच सम्बन्धों में छुआछूत का कोई विशेष महत्व नहीं है।"[8]

भारतीय संविधान में 'अछूत' जातियों को अनुसूचित जातियों के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। इनके उत्थान या कहें बेहतर जीवन के लिए संविधान में सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षणिक क्षेत्रों में प्रावधान किया गया है, जिससे अनुसूचित जाति और जनजातियों में चेतना जाग्रत हुई है।

दलितों की ही भाँति जनजातीय समाज भी राष्ट्रीय जीवन की मुख्यधारा से वंचित है। दलित वर्ग मुख्यधारा के अन्दर हाशिये का जीवन जीते हैं तो वहीं जनजातीय समाज मुख्यधारा के बाहर। हालाँकि इन्हें मुख्यधारा में जोड़ने के प्रयास जारी हैं लेकिन आज भी यह समाज मुख्यधारा से जुड़ नहीं पाया है। आदिवासियों के कल्याण हेतु जो योजनाएँ बनाई जाती हैं, वह इन तक सही तरीके से पहुँच नहीं पाती हैं, जिससे इनका जीवन अच्छा नहीं हो पाता है। पी. सी. जैन के अनुसार- "आदिवासियों के कल्याण के लिए बनाई जाने वाली नीतियों का क्रियान्वयन नौकरशाहों द्वारा इस प्रकार किया जाता है कि उसकी शक्ल ही बदल जाती है।

इससे आदिवासियों को लाभ पहुँचना तो दूर उनका जमकर शोषण किया जाता है और उनके शांतिमय जीवन में अनेक प्रकार की बाधाएँ खड़ी कर दी जाती हैं।"[9] विगत वर्षों में आदिवासियों को उनके जीवन से अलग कर दिया गया, जिससे वे विस्थापन की समस्या से जूझ रहे हैं, विस्थापन हाशिये के समाज का निर्माण करता है। विस्थापन के कारण आदिवासियों का जीवन कष्टमय हो गया और उन्हें बंधुआ मजदूरों की तरह कार्य करना पड़ रहा है, "अनेक स्थानों पर आदिवासियों को बंधुआ मजदूरों की तरह कार्य करना पड़ रहा है। आज भी उत्तर-प्रदेश में डोम और कोलता उच्च जातियों की उसी प्रकार सेवा करते हैं। राजस्थान में सागड़ी प्रथा, आंध्रप्रदेश में वेत्ती प्रथा, उड़ीसा में गोठी प्रथा, कर्नाटक में जेठा और मध्यप्रदेश में नौकरी नामा आदिवासियों के बंधक के कारण हैं। आदिवासी ऋण लेते हैं और उसका भुगतान करने में असमर्थ रहते हैं और जब तक ऋण नहीं चुका पाते साहूकारों के यहाँ बंधुआ मजदूरों की तरह काम करते रहते हैं। साहूकारों से उनको मुक्ति नहीं मिल पाती क्योंकि कोई भी आदिवासी कर्ज शीघ्र और पूर्ण रूप से चुका नहीं पाता।"[10]

भारतीय समाज की संरचना ऐसी है कि उसमें बहुत विविधता या कहें असमानता है, किसी भी समुदाय के विकास के लिए आर्थिक योजना तो आती है, परन्तु वह पूरे समुदाय के लोगों तक नहीं पहुँच पाती, जिससे समुदाय के कुछ लोगों का विकास तो होता है वहीं कुछ लोग हाशिये पर चले जाते हैं -"उनके हाशिये पर जाने की यह प्रक्रिया इतने सूक्ष्म स्तर की रही कि हाशिये पर जाने वाला व्यक्ति, समूह अथवा समुदाय इस बात को जान नहीं पाया कि वह सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्तर पर राष्ट्रीय जीवन की मुख्यधारा के अन्दर और बाहर हाशिये पर जी रहा है।"[11] भारतीय समाज की संरचना पर विचार करें तो स्पष्टतः यह एक बहुसामुदायिक समाज है, जिसमें भिन्न-भिन्न वर्गों, जातियों, प्रजातियों, धर्मों और सम्प्रदायों के लोग रहते हैं। प्रत्येक समूह, समुदाय की अपनी एक अलग संस्कृति और सामाजिक प्रतिबद्धता होती है, जो उनके जीवन को गतिमान करती है। यही संस्कृति और सामाजिक प्रतिबद्धता उनको राष्ट्रीय स्तर पर एक पहचान दिलाती है, इसी स्वतंत्र अस्तित्व को बनाए रखने के लिए समाज, समुदाय या समूह बार-बार मुख्यधारा से टकराता है, "इस क्रम में उसकी कोशिश होती है कि वह सम्बन्धित राष्ट्र की मुख्यधारा के साथ-साथ विकास की प्रक्रिया में सहभागी भी बने। कई बार रूढ़िगत सामाजिक-व्यवस्था और अज्ञानता, मुख्यधारा के विकास की प्रक्रिया में

अव्यवस्था और अधिकांशतः प्रभु वर्ग द्वारा जानबूझकर उन्हें विकास की प्रक्रिया से वंचित कर दिए जाने के कारण वह समुदाय अथवा समाज राष्ट्रीय जीवन की मुख्यधारा में शामिल नहीं हो पाता है। परिणामतः विकास की प्रक्रिया से वंचित हो जाने के कारण वह समूह अथवा समुदाय धीरे-धीरे समाज की मुख्यधारा से कट जाता है और अंततः हाशिये पर चला जाता है।"[12]

भारत में हाशिये के समाज के अंग के रूप में दलित वर्ग और जनजातीय समाज के अलावा और भी समाज हैं जो हाशिये पर जीवन जीते हैं -

1. ग्रामीण जीवन में हाशिये के लोग

2. शहरी जीवन में हाशिये के लोग

3. विभिन्न सामाजिक समूहों में स्त्रियाँ

4. आर्थिक आधार पर हाशियाकृत समूह

5. मानसिक रोगी, भिक्षुक, अनाथ, कुछ विधवाएँ, देह -श्रमिक, कुछ विकलांग आदि

भारत एक कृषि प्रधान देश है। एक अनुमान के अनुसार अधिकांश जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। प्राचीन काल से ही ग्रामीण समाज की ऐसी संरचना रही है जिसके कारण कुछ लोग हाशिये की ज़िन्दगी जीते हैं। ग्रामीण समाज में उच्च और निम्न दो वर्ग पाए जाते हैं। उच्चवर्ग अपना आधिपत्य जमाये रहता है और निम्न वर्ग उसकी सेवा करता है। हालांकि औद्योगीकरण के बाद ग्रामीण समाज में बहुत हद तक सुधार आया है, लोगों में चेतना आई है, लोग अपने हक़ को पहचानने लगे हैं। औद्योगीकरण के फलस्वरूप निम्न जातियों के युवाओं में प्रवास की प्रवृत्ति बढ़ी है।

बंधुआ मजदूरी ग्रामीण समाज का एक हिस्सा है, आर्थिक तंगी के कारण निम्नवर्ग की जातियाँ बंधुआ मजदूरी करती हैं। कभी-कभी गाँवों में बंधुआ मजदूरी वंशानुगत भी होती है। 'भारत में बंधुआ मजदूर' शीर्षक

नामक पुस्तक में महाश्वेता देवी और निर्मल घोष ने लिखा है-"इस अर्द्ध औपनिवेशिक एवं अर्द्ध सामंती देश के खेतिहर गरीबों के नंगे शोषण और बर्बर दमन की झलक की अभिव्यक्ति इस प्रथा में दिखाई देती है।"[13] बंधुआ मजदूर कभी गाँव छोड़कर नहीं जा सकता, उसका अपने श्रम और उत्पादन पर कोई अधिकार नहीं रहता है। कभी वह अकेले तो कभी पूरे परिवार के साथ परिश्रम करता है। यही वह स्थिति है जहाँ पर बंधुआ मजदूर हाशिये की ज़िन्दगी जीता है। यही हाल खेतिहर मजदूरों का होता है। ग्रामीण समाज में आय अथवा आमदनी में कमी होने के कारण या बेरोजगारी के कारण कर्ज का सहारा लेना पड़ता है। एक बार लिया गया कर्ज पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है, जिससे उच्च वर्ग या कहें सेठ, महाजन फायदा उठाते हैं। इस प्रकार ग्रामीण समाज में खेतिहर और बंधुआ मजदूर विवश होकर हाशिये का जीवन व्यतीत करते हैं।

नगरीय समाज भारत देश का महत्वपूर्ण हिस्सा है। यहाँ पर विभिन्न क्षेत्रों से भिन्न-भिन्न जातियों, वर्गों, समुदायों के लोग आकर रहते हैं। ग्रामीण समाज में बढ़ती आर्थिक तंगी और बेरोजगारी के कारण युवा वर्ग तेजी से शहर की ओर पलायन कर रहा है, जिससे वह अपनी रोजी-रोटी चला सके। गाँव से आए बेरोजगार मनुष्य को अपना पेट पालने के लिए शहर में मजदूरी, रिक्शा चलाना, या घरेलू नौकर के रूप में कार्य करना पड़ता है। शहरी जीवन के परिवेश में गाँव से आया मनुष्य अपने आप को समायोजित न कर पाने के कारण हाशिये पर महसूस करता है, देवेन्द्र चौबे के अनुसार-"सांस्कृतिक दृष्टि से भी स्थान परिवर्तन के कारण ये नये परिवेश में स्वयं को समायोजित करने के प्रयत्न में दोहरी ज़िन्दगी जीने को बाध्य होते हैं।"[14] बाहर से आए मनुष्य को स्थान परिवर्तन के कारण उन्हें अपना घर द्वार, समाज, संस्कृति एवं परिवेश सब कुछ छोड़ना पड़ता है और नये माहौल में अपने आप को ढालना पड़ता है, कभी तो वह ढाल पाता कभी नहीं- "ऐसे समय में वे अपनी पुरानी संस्कृति को छोड़ने के लिए बाध्य हो जाते हैं। लेकिन नई संस्कृति को जल्दी अपना नहीं पाते। संक्रमण के इस दौर में वे अपने आपको दोनों समुदायों, समूहों अथवा समाजों में हाशिये पर खड़ा महसूस करते हैं, तथा इस प्रकार समाजशास्त्रीय शब्दावली में वे 'हाशिये के लोग' अथवा 'सीमांत आदमी' बन जाते हैं ।"[15]

इस प्रकार स्पष्ट है जहाँ ग्रामीण समाज में खेतिहर मजदूर और बंधुआ मजदूर हाशिये का जीवन व्यतीत करते हैं, वहीं नगरीय परिवेश में या समाज में रिक्शा चालक, घरेलू नौकर, व्यावसायिक मजदूर, फेरीवाले, छोटे-मोटे रोजगार में लगे लोग इत्यादि अनेक ऐसे समूह हैं जो हाशिये की ज़िन्दगी यापन करते हैं।

समाज में भी कुछ ऐसे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक हालात आते हैं, जिनके कारण स्त्रियाँ शोषित, उत्पीड़ित या दमित होती हैं, अंततः हाशिये पर चली जाती हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से स्त्री समाज के हाशियेकरण की प्रक्रिया पर दृष्टिपात करें तो पता चलता है कि ऋग्वेद में स्त्री और पुरुष को बराबर अधिकार दिए गए थे। स्त्रियों को ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। इस काल में घोषा, अपाला, किश्वर जैसी महिलाएँ उच्च कोटि के वैदिक भजनों की रचयिता बनीं। गार्गी और मैत्रेयी जैसी विदुषी स्त्रियाँ उपनिषद काल की देन हैं। उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि पूर्व वैदिक काल में नारी, पुरुष के बराबर समझी जाती थीं और उनको समाज में बहुत अधिकार प्राप्त थे। उत्तर-वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन आया, उन्हें एक अलग दृष्टि से देखा जाने लगा, "उत्तर वैदिक काल से समाज में स्त्रियों की स्थिति बिगड़ने लगी। पुत्री को एक अभिशाप माना जाने लगा। शूद्रों की भांति स्त्रियों को भी उत्तराधिकार और सम्पत्ति के स्वामित्व से पृथक किया जाने लगा।"[16] स्त्रियों की दशा में जो बदलाव आया उसके मूल में कृषि व्यवस्था की अहम भूमिका रही। कृषि के विकास से उत्पादन की प्रक्रिया में स्त्रियों की भागीदारी कम होती गई। ग्राम समुदाय की व्यवस्था अस्तित्व में आई जिससे परिवार बड़ा होने लगा। बड़े कुटुम्ब के आने के बाद नारी उत्पादन की व्यवस्था से एकदम अलग कर दी गई। मुद्रा के प्रचलन ने भी नारी की स्थिति में परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नारी अब आर्थिक रूप से पूर्णतः पुरुष पर आश्रित हो गई, और धीरे-धीरे समाज में उसका स्थान निम्न होता गया। बौद्ध काल में नारी की स्थिति और दयनीय हो गई, के. एल. शर्मा का कथन है- "बौद्ध काल में उनसे वेदों के अध्ययन का अधिकार छीन लिया गया। परन्तु गुप्त काल तक तो उनकी दशा और भी बिगड़ गई। इसी काल में दहेज प्रमुख संस्था बनी।"[17] गुप्तकाल तक आते-आते, "विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार नहीं रहा। उनका जीवन प्रायश्चित एवं सादगी का पर्याय बन गया। सातवीं सदी तक सती प्रथा सार्वजनिक जीवन की अंग बन चुकी थी।"[18]

ब्रिटिश काल में समाज सुधार आंदोलनों और राष्ट्रीय आंदोलनों के द्वारा स्त्रियों की स्थिति में सुधार लाने का प्रयास किया गया। राजाराममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, गोविन्द रानाडे, सावित्रीबाई फुले आदि समाज सुधारकों ने अपने आंदोलनों के द्वारा स्त्री को समाज में अच्छी जगह दिलाने के लिए संघर्ष किए। परन्तु देखा जाए तो आज भी स्त्री समाज पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में हाशिये पर ही है। समाज में देह -श्रमिकों का जीवन घृणित माना जाता है। सभ्य समाज देह-श्रमिकों के साथ समाज अच्छा व्यवहार नहीं करता है। इसको इस स्थिति में लाने का जिम्मेदार पुरुष समाज ही होता है। परन्तु जब इनके उत्थान की बात आती है तो पुरुष समाज उनके बहिष्कार से पीछे नहीं हटता, समाज की यह सबसे बड़ी विडम्बना है। इस प्रसंग में सिमोन द बोउवार का यह कथन द्रष्टव्य है -"वेश्या की स्थिति एक बलि के बकरे के समान है। पुरुष उसके साथ व्यभिचार करता है और फिर उसे बहिष्कृत कर देता है।"[19]

इस प्रकार भारतीय समाज में ऐसी अनेक स्त्रियाँ हैं जो प्रत्येक स्तर पर हाशिये की ज़िन्दगी जीने को विवश हैं - चाहे घरेलू नौकर के रूप में, बाज़ार में कामगार के रूप में, मजदूर के रूप में।

भिक्षा-वृत्ति को समाज में अच्छा नहीं माना जाता है। भिक्षा-वृत्ति पर पलने वाले मनुष्य आर्थिक रूप से कमजोर और शारीरिक तौर पर विकलांग होते हैं, जिसके कारण वे हाशिये का जीवन व्यतीत करते हैं। कई बार स्वस्थ मनुष्यों को भी जबरन भिक्षा-वृत्ति करने के लिए विवश होना पड़ता है।

जहाँ तक भारत में मुस्लिम समाज की बात है तो इस समाज के अंदर बहुत ऊहापोह की स्थिति देखी जाती है, कारण समाज के एक तबका अच्छी स्थिति में है तो वहीं दूसरा तबका आर्थिक कमजोरी के कारण पीड़ा झेल रहा है।

1.3 अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में मुस्लिम समाज

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मुस्लिम समाज की स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं है। कुछ देशों में रहने वाले मुस्लिम समाज धनाढ्य हैं, उनका जीवन-यापन भी अच्छा है वहीं कुछ देशों में गरीबी के कारण हाशिये का जीवन-यापन करने को अभिशप्त हैं। अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में मुस्लिम समुदाय की स्थिति को निम्नलिखित ढंग से समझा-परखा जा सकता है -

1. इस्लाम के ऊपर नस्लवाद की विचारधारा का आरोप लगाया जाता है, जो कि कुछ प्रसंगों में सही भी है । इधर हाल ही में 4 नवम्बर 2017 को नेब्रास्का विश्वविद्यालय में इस्लाम के नजरिये से नस्लवाद का अध्ययन किया गया। यह अध्ययन नेब्रास्का विश्वविद्यालय में सुन्नी अध्ययन विभाग के प्रमुख अबूइद्रिस युसूफ वेल्स जो 20 वर्ष पहले मुस्लिम बने थे, उन्हीं के भाषण के साथ आयोजित किया गया। यह कार्यक्रम नेब्रास्का लिंकन विश्वविद्यालय के मुस्लिम छात्र संघ द्वारा आयोजित किया गया जो कि सामान्य तौर पर इस्लाम पर केन्द्रित था। इस आयोजन में इस्लाम पर नस्लवाद का प्रभाव, इस्लाम के दृष्टिकोण से नस्लवाद और इस्लाम के लोगों के विचार जैसे मुद्दे शामिल थे।

2. मुस्लिम देशों में प्रत्येक रमजान के दौरान विशेष रस्में व आदाब का आयोजन होता है, जो सदियों से अब तक जारी है। अंतर्राष्ट्रीय कुरान समाचार एजेंसी (IQNA) के अनुसार इस्लामी दुनिया में हर साल मुसलमान अल्लाह के मेहमानी के महीने के स्वागत के लिए एक विशेष परम्परा व अदब का इस्तेमाल करते हैं। रमजान का पवित्र महीना आते ही सभी इस्लामी देशों में मुसलमान संस्कृति और राष्ट्रीयता की अनदेखी के साथ रोजहदारी और तिलावते कुरान में लग जाते हैं।

इंडोनेशिया में रमजान का महीना विशेष कार्यक्रमों के साथ शुरू होता है । इस देश के 'आचे' शहर में, रमजान के आगमन के साथ शहर में बच्चे सड़कों पर भव्य जश्न मनाते दीखते हैं। इस समारोह के अवसर पर कुरआन की कुछ आयतें पढ़ने के अलावा मौलूद दवानी कार्यक्रम भी चलते हैं। रमजान के दौरान इंडोनेशियाई

मस्जिदें भक्तों की उपस्थिति से भरी रहती हैं; ऐसे भक्त जो इस महीने के शुभ अवसर को तिलावते कुरान और पापों को दूर फेंकने का बेहतरीन मौक़ा जानते हैं।

'मस्जिदे इस्तेक़्लाल' दक्षिण पूर्व एशिया में सबसे बड़ी मस्जिद है जो शहर "जकार्ता" इंडोनेशिया की राजधानी में है। इस मस्जिद में रमजान के आगमन के साथ हर साल पवित्र कुरानी महफ़िलों का आयोजन होता है । इंडोनेशियाई मुस्लिम महिलाएँ भी इस देश के विशिष्ट स्थानीय प्रकार के कपड़ों के साथ पवित्र कुरानी महफ़िलों में भाग लेती हैं।

3. अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इस्लाम का खौफ़ बढ़ता चला जा रहा है और आए दिन छोटी-बड़ी घटनाएँ देखने को मिलती हैं। हाल ही में "ब्रिटेन में जून से पहले तीन चरमपंथी हमलों में शामिल सारे लोग मुसलमान थे । अलबत्ता शायद मुसलमान होने से ज्यादा ये तमाम लोग भटके हुए नौजवान थे जिन्हें अपने गुस्से और मायूसी के लिए एक मकसद चाहिए था और जिन्होंने जिहादी इस्लाम का हवाला देकर लोगों का मजहब के नाम पर कत्ल किया। अब आखिर में अधिकांश मुसलमानों और धार्मिक नेताओं ने इन जिहादियों के बारे में साफ तौर पर स्टैंड लेना शुरू कर दिया है, लेकिन शायद इसमें बहुत देर हो गई है । हममें से ज्यादातर लोग वर्षों से ये सोचते आए हैं कि शायद जिहादी कुछ सही काम कर रहे थे क्योंकि पश्चिम और खासकर अमरीका ने दुनिया के मुसलमानों के साथ ज्यादतियां की हैं। अफगानिस्तान और इराक पर हमला किया है। मुसलमानों को मार डाला है और उनके मुल्क बर्बाद किए हैं ।"[20]

इस्लाम के खौफ़ को बढ़ावा देने वाले कारकों में कुछ राजनीतिक मुद्दे भी होते हैं और साथ में धर्म भी। "लेकिन धर्म के नाम पर होने वाले इस चरमपंथ के बारे में साफ रुख न अपनाकर हमने अपना बड़ा नुकसान किया है, क्योंकि हत्यारों की हमने सही तरीके से निंदा नहीं की । तो कुछ मुसलमानों ने जानबूझकर साफ स्टैंड नहीं अपनाया और कुछ पश्चिमी देशों के नेताओं ने बेहद गैरजिम्मेदारी का परिचय दिया और इस गैर जिम्मेदारी के कारण पश्चिमी देशों में इस्लामोफोबिया या इस्लाम का डर अब खुलकर सामने आ गया है । 11 सितंबर,

2001 के हमलों को 15 साल से अधिक हो गए हैं, लेकिन सही मायने में पश्चिमी समाज में इस्लामोफोबिया अब फलफूल रहा है । पिछले दो साल की राजनीतिक घटनाओं ने इन सबमें बड़ी भूमिका निभाई है ।"[21]

4. एक तरफ़ इस्लाम से पूरी दुनिया में खौफ़ मचा हुआ है तो वहीं दूसरी तरफ़ कई देशों में मुस्लिम समाज पर जमकर अत्याचार किया जा रहा है। कुछ दिन पहले म्यांमार में हजारों रोहिंग्या मुसलमानों पर हो रही हिंसा के खिलाफ मुस्लिम संप्रदाय के लोगों ने दिल्ली में बर्मा दूतावास तक मार्च निकाला। दिल्ली पुलिस ने इस मार्च को चाणक्य पुरी में ही रोक दिया। म्यांमार में हजारों रोहिंग्या मुसलमानों को मार दिया गया और बचे-खुचे बांग्लादेश में शरण लेने को मजबूर हैं। भारत सरकार भी देश में रह रहे 40,000 रोहिंग्या मुसलमानों को देश से बाहर करने की तैयारी में है । प्रदर्शनकारियों ने भारत सरकार से देश के अंदर रह रहे रोहिंग्या मुसलमानों को शरण देकर हमेशा के लिए भारतीय नागरिकता देने और उन्हें सुरक्षा प्रदान करने की मांग की है।

उपर्युक्त विवेचन के बाद यह कहा जा सकता है कि अंतर्राष्ट्रीय सन्दर्भ में मुस्लिम समाज की स्थिति दयनीय है और कुछ देशों में हाशिये का जीवन भी जी रहे हैं।

अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में हम हाशिये के समाज के बारे में नस्लवाद, उपनिवेशवाद और दास प्रथा के आधार पर विचार कर सकते हैं । नस्लवाद, शोषण, उत्पीड़न और दमन को उग्रता प्रदान करने वाली सामान्य विचारधारा है । नस्लवाद साम्राज्यवादियों के लिए वह हथियार है जिससे किसी राष्ट्र के अन्दर शोषण की प्रणाली को मजबूत किया जाता है। इस विचारधारा के द्वारा शोषित जनता को नस्ल के आधार पर बाँट दिया जाता है, जिससे जनता द्वारा उच्च वर्ग के प्रति जो रोष है वह कमजोर पड़ जाता है। नस्लवाद के आधार पर जनता का जमकर शोषण किया जाता है। नस्लवाद के द्वारा इस सत्य को झूठ करार दिया जाता है कि "बहुमत का श्रम उत्पादन करता है और चंद लोगों की पूँजी उसका निपटारा करती है ।"[22] नस्लवाद के द्वारा औपनिवेशिक देशों की जनता में ये बात बैठाने की चेष्टा की जाती है कि राष्ट्र के विकास और समृद्धि में साम्राज्यवादियों की पूँजी का बहुत बड़ा योगदान होता है न कि बहुमत के श्रम का । चूँकि पूंजीपति वर्ग साम्राज्यवादी देशों का अंग है, जिसने उपनिवेश में अपनी पूँजी लगाने का एहसान किया है और यह वर्ग गोरों

का है, अतः औपनिवेशिक देश के काले निवासियों को उनके समक्ष घुटने टेककर या कहें झुककर आभार प्रकट करना चाहिए। विडम्बना यह है कि "गोरे मजदूर भी श्रम के कालेपन के विरुद्ध पूँजी के गोरेपन को चिह्नित करने लगते हैं। समय के साथ यह एक आसान नस्लवादी सूत्र बन जाता है कि कालों को गोरों का आभारी होना चाहिए इस नस्लवादी सूत्र से इस तथ्य को धुंधला बना दिया जाता है कि कालों के श्रम से उत्पादन होता है।"[23] इस तरह काले और गोरे के आधार पर आम जनता का शोषण किया जाता है।

नस्लवाद ख़ास तौर से 'फूट डालो और शासन करो' की नीति पर आधारित है। काले और गोरे रंगभेद के आधार पर यूरोप, अमेरिका, जापान आदि देशों में शोषण की प्रवृत्ति को देखा जा सकता है। गोरे अल्पसंख्यक समूहों द्वारा साम्राज्यवाद की जो लम्बी परम्परा चलाई गई उसमें नस्लवाद की बहुत ही प्रभावी भूमिका रही, गोरे इतने कम होते हुए भी अपनी वर्चस्व शक्ति के माध्यम से कालों पर अपना अधिपत्य बनाए रखने में कामयाब हो जाते हैं। घृणित रंगभेद के आधार पर अल्पसंख्यक गोरों ने काले बहुमत पर लम्बे समय तक शासन किए और उनका जमकर शोषण भी। नस्लवाद को एक हथियार के रूप में पश्चिमी देशों में प्रयोग किया गया, इसके द्वारा मजदूरों की एकता को भंग करके उनका शोषण किया गया। "हिटलर ने नस्लवाद के हथियार का इस्तेमाल नाजी जर्मनी की जनता की संवेदना को कुंद करने के लिए किया ताकि वे मानवता पर हो रहे अपराधों को न देख सकें। जिन दिनों दासों का व्यापार होता था और दास प्रथा का चलन था तथा अफ्रीका पर उपनिवेशवादियों का कब्ज़ा हो रहा था यूरोप के राष्ट्रों ने इसी हथियार का इस्तेमाल किया ताकि उनके देश की जनता अफ्रीका के विरुद्ध किये जा रहे अपराधों को न देख सके।"[24]

स्पष्ट है कि रंगभेद या नस्लवाद के आधार पर साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने औपनिवेशिक राष्ट्रों की बड़ी आबादी पर शासन कर वहाँ की जनता का जमकर शोषण किया, शोषित और उत्पीड़ित जनता या कहें कमजोर वर्ग मुख्यधारा से नहीं जुड़ पाए और हाशिये पर चले गए।

नस्लवाद के रूप में ही हम दास प्रथा को भी देख सकते हैं। रामविलास शर्मा के अनुसार -"दास प्रथा और नस्लवाद का आपसी सम्बन्ध अटूट है।"[25] इसी नस्लवादी दृष्टिकोण के अनुसार यूरोप के व्यापारियों ने

एशिया के देशों को गुलाम बनाने के लिए अपने को श्रेष्ठ और एशियाइयों को घटिया घोषित किया या बताया। दास प्रथा की शुरुआत प्रमुख रूप से प्राचीन काल में हो चुकी थी। नरेन्द्र शर्मा के अनुसार -"सात सौ ई. एथेंस में दास प्रथात्मक राज्यों का उदय हो चुका था।"[26] दास प्रथा शोषण का सबसे प्राचीन हथियार है जिसका प्रयोग कमजोर वर्गों को उत्पीड़ित या शोषित करने के लिए किया जाता है। शोषण के इस हथियार को प्लेटो, अरस्तु, सेंट ओंगस्टीन आदि अन्य विद्वानों का समर्थन प्राप्त था। अरस्तु के अनुसार -"सभी व्यक्तियों में बुद्धिमता की मात्रा एक जैसी नहीं होती। इसलिए बुद्धिमान तथा तर्कशील लोगों को प्रकृति की ओर से एक स्वतंत्रता पूर्ण जीवन जीने के अधिकार है। जबकि मूर्ख एवं बुद्धिहीन व्यक्तियों को दासता अथवा पराधीनता का जीवन व्यतीत करना होता है।"[27] सेंट ओंगस्टीन के अनुसार -"दासता मनुष्य के पापों का दंड है।"[28] प्राचीन काल में रोम, यूनान आदि देशों में इसका प्रचलन बहुत ज्यादा था।

प्राचीन यूनान में कला-कौशल, दस्तकारी उद्योग और विस्तृत व्यापार की आधारशिला दास प्रथा थी। रोमन साम्राज्य में दास प्रथा बहुत ज्यादा था, "दास गृह कार्य के अलावा कृषि कार्य, पशुचारण, अनाज को हाथों की चक्कियों से पीसने एवं अंगूर तथा जैतून का रस निचोड़ने जैसे अनेकानेक कार्य किया करते थे, इसके अलावा वे कारखानों में, चाँदी के खानों में, जहाज चलाने एवं सड़क एवं भवन निर्माण का कार्य भी किया करते थे।"[29] दासों के साथ उनके मालिकों का व्यवहार अच्छा नहीं था, उनके मालिक प्रत्येक समय प्रताड़ित करते रहते थे, उनको बैलों के समान समझा जाता था। जो दास गेहूँ की पिसाई करते थे उनको गर्दन पर लकड़ी का चक्र पहना दिया जाता था ताकि वे अनाज को उठाकर खा न लें। कठोर परिश्रम और शोषित होने के कारण दास कुछ ही वर्षों में बेकार हो जाते थे अथवा दूसरे शब्दों में कहें मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे- "दास केवल कुछ वर्षों के पश्चात ही अनुपयुक्त हो जाते थे। उनको ऐसी दशा में मरुस्थलों में ले जाकर भूखे मरने के लिए छोड़ दिया जाता था और उनके स्थान पर नये दास भर्ती कर लिए जाते थे जो कि मंडियों में आसानी से मिल जाते थे।"[30] रोमन साम्राज्य में दासों का प्रयोग जनता के मनोरंजन के लिए भी किया जाता था -"रोम के कुलीन लोग फुर्तीले तथा हृष्ट-पुष्ट दासों को शस्त्र चलाना सिखाते थे, इन दासों को ग्लेडिएटर (Gladiator) कहा जाता था। इन ग्लेडिएटरों की लड़ाई के लिए सर्कस की भांति हॉल बनाए जाते थे। जिन्हें कोलोसियम कहा जाता था।"[31]

अब हम उपनिवेशवादी दौर में दासों की हालात पर चर्चा करें तो अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यूरोपीय देशों के भीतर दास प्रथा ने अपने पैर जमा लिए थे। दास प्रथा ने जीते-जागते मनुष्य को खरीद-फ़रोख्त की वस्तु बना दिया। प्रभुत्वशाली लोगों द्वारा कमजोर जनता का जमकर शोषण किया जाता था।

इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक बड़े समूह अथवा समुदाय को हाशिये पर लाने की प्रक्रिया में उपनिवेशवाद, नस्लवाद और दास प्रथा का महत्वपूर्ण योगदान रहा। ये तीनों संकल्पनाएँ एक दूसरे से इस तरह मिली हुई हैं कि इन्हें अलग करके देखना मुश्किल है। उपनिवेशवाद के दौर में प्रजाति के आधार पर रंगभेद की नीति अपनाई गई। यह माना जा सकता है कि विकसित राष्ट्रों की समृद्धि में विकासशील राष्ट्रों की श्रम शक्ति का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस सन्दर्भ में 'मुख्यधारा की अवधारणा' शीर्षक लेख में रामशरण जोशी का कथन महत्वपूर्ण है- "दोनों स्तरों के विकसित और शक्तिशाली समाजों की कोशिश रहती है कि हाशिए के समाजों को विकास का भार ढोने के लिए जोता जाए और इनके परिश्रम के बल पर ही मुख्यधारा का निर्माण किया जाए। क्या यह सच नहीं है कि पिछड़े, गरीब और विकासशील देशों के कन्धों पर ही योरो-अमेरिकी शिविर के राष्ट्रों ने बहुआयामी विकास की प्राचीरों को खड़ा किया है।"[32]

1.4 मुख्यधारा और मुस्लिम समाज

भारत के सन्दर्भ में मुख्यधारा से आशय प्रमुख रूप से राष्ट्रीय जीवन की उस धारा से लिया जाता है, जो देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास की प्रक्रिया से संचालित होती है। लेकिन खास तौर से आर्थिक और सामाजिक विकास की प्रक्रिया से व्यक्ति समाज, समुदाय या समूह का हाशियेपन निर्धारित होता है। मुख्यधारा के भीतर प्रमुख रूप से वैसे समूह, समुदाय और व्यक्ति आते हैं जो मुख्यधारा के अन्दर रहते हुए भी हाशिये का जीवन जीते हैं। आर्थिक कारण सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कभी-कभी सामाजिक और सांस्कृतिक कारण भी। अर्थ को पाने के लिए या कहें जीवन यापन के लिए व्यक्ति, समूह

स्थान परिवर्तन करता है जिसके कारण वह अपने को अलग जगह में समायोजित न कर पाने के कारण हाशिये की स्थिति महसूस करता है। एक व्यक्ति जब एक जगह से दूसरी जगह पर जाता है तो उसे कई सारी कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ता है। यह स्थिति घरेलू नौकर, खेतिहर अथवा बंधुआ मजदूर, स्त्री समाज और स्वरोजगार में लगे लोगों में देखा जा सकता है। समाज में मुख्यधारा के अंदर रहते हुए भी हाशिये पर जाने का सबसे महत्वपूर्ण कारण है- हिन्दू समाज की संरचना। वर्ण और जाति पर आधारित इस समाज की ऐसी संरचना रही जिससे कुछ लोग निकृष्ट कार्य करने के लिए विवश हुए। 'हंस' में प्रकाशित एक लेख में मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि -"पुराणों के अनुसार ब्रम्हा के मुख से ब्राह्मण, बांहों से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य और पैरों से शूद्र की उत्पत्ति हुई है। इसके आधार पर ब्राह्मण स्वयं को श्रेष्ठ और शूद्र को सबसे नीचे कहते हैं।"[33] इसी भ्रामक मान्यता के कारण आज भी निम्न वर्ग की जातियाँ सवर्णों द्वारा शोषित होती रही हैं, इसमें दलितों की संख्या ज्यादा है।

"मुख्यधारा के बाहर हाशिये पर वे लोग आते हैं, जो अपनी प्रजातीय विशेषताओं के कारण राष्ट्रीय जीवन की मुख्यधारा से नहीं जुड़ पाते हैं तथा विकास की प्रक्रिया से दूर होने के कारण धीरे-धीरे हाशिये पर चले जाते हैं। इस दृष्टि से भारतीय समाज में आदिवासी और एंग्लो-इंडियन समाज ही ऐसे दो समुदाय हैं, जो भारतीय समाज की संरचना में अपने प्रजातीय गुणों के कारण सार्थक ढंग से जुड़ नहीं पाये।"[34] आदिवासी और एंग्लो-इण्डियन समाज का हाशिये पर जाने का सबसे बड़ा कारण है राष्ट्र के विकास में सामाजिक और सांस्कृतिक के प्रति संकुचित दृष्टिकोण। एंग्लो-इण्डियन समुदाय वर्ण-संकर के कारण हाशिये पर है, जबकि आदिवासी समाज के साथ ऐसी कोई बात नहीं है। यह समाज अपनी प्रजातीय विशेषताओं को सुरक्षित रखने के लिए दूसरे समाज से अपने को दूर रखा, दूसरा कारण है आर्थिक पिछड़ापन और राजनीतिक। "इसमें प्रशासन द्वारा उनके विकास के लिए तैयार की गयी नीतियाँ भी कम दोषी नहीं हैं, जिसने सारे आदिवासी समुदाय को एक मानकर उनके विकास का लक्ष्य सामने रखा, जिसे वे कभी भी स्वीकार नहीं कर पाये।"[35]

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय समाज की संरचना ऐसी है जिसमें कोई भी व्यक्ति अथवा समुदाय अपने आपको हाशिये पर खड़ा महसूस कर सकता है। आदिवासी समाज के साथ सबसे बड़ी समस्या रही अपनी संस्कृति और कबिलाई समाज को श्रेष्ठ समझना, तो वही एंग्लो-इण्डियन समुदाय जो ब्रिटिश काल में मुख्यधारा में था, आज आर्थिक और सांस्कृतिक कारण से हाशिये की ज़िन्दगी यापन कर रहा है।

जहाँ तक मुस्लिम समाज की बात है तो यह समाज मुख्यधारा के अंदर रहते हुए भी हाशिये का जीवन जीता है, ख़ास तौर से इस समाज का निचला तबका।

साहित्य ने हमेशा से समाज के यथार्थ की अभिव्यक्ति की है। हिंदी कहानियाँ भी इसका अपवाद नहीं हैं। हिंदी में वे कहानियाँ जो 'हाशिये के लोगों' के जीवन-संघर्ष को यथार्थवादी ढंग से उकेरती हैं, उन्हें यहाँ देखा जा सकता है - अमरकांत की 'बहादुर'(1973), भीष्म साहनी की 'बबली' और 'संभल के बाबू'(1997), रमाकांत की 'भागमनी आयेगी'(1995), शेखर जोशी की 'दाज्यू'(1953), शैलेश मटियानी की 'इब्नू मलंग'(1996), पंकज बिष्ट की 'टुन्ड्रा प्रदेश' 'अमितेश्वर की तीलियां', रामनारायण शुक्ल की 'फिर'(1971), सुरेश कंटक की 'एक बनिहार का आत्मनिवेदन', मदन मोहन की 'बच्चे बड़े हो रहे हैं', विजेंद्र अनिल की 'विस्फ़ोट' 'हल', विजयकांत की 'इन्द्रजाल', हृषिकेश सुलभ की 'वधस्थल से छलांग', जगदम्बा प्रसाद दीक्षित की 'गंदगी और गंदगी' 'दृष्टि परिवर्तन' 'पुल के नीचे', चित्रा मुद्गल की 'भूख'(1994) और 'फातिमबाई कोठे पर नहीं रहती', श्रीकांत वर्मा की 'शवयात्रा'(1998) एवं रमेश उपाध्याय की 'मिट्टी' आदि।

हिंदी साहित्य में हाशिये पर जीवन-यापन करने वालों का चित्रण उपन्यास विधा में भी हुआ है। प्रेमचन्द के पहले के उपन्यासों में ज्यादातर रोमांचकारी, घटना-प्रधान, जासूसी, प्रेमप्रधान आदि विषय देखने को मिलते हैं। लेकिन प्रेमचन्द युग से उपन्यासों में हाशिये पर जीने वाले पात्रों का अंकन मिलने लगता है। प्रेमचन्द के पहले के उपन्यासों पर रामचन्द्र तिवारी ने टिप्पणी की है- "प्रेमचन्द पूर्व-युग के अर्द्धशिक्षित पाठकों के संस्कार अधिक उन्नत नहीं थे। उनमें सुरुचि का अभाव था। वे अब भी सो रहे थे। उपन्यासकारों का एक बड़ा समुदाय उन्हें जगाने के बजाय उनके मनोरंजन में ही लग गया। फलस्वरूप प्रेम-प्रधान, रोमांचकारी,

साहसिक तथा अद्भुत घटनाप्रधान उपन्यासों की भरमार हो गई । हिंदी कथा साहित्य का क्षितिज तिलस्मी-ऐयारी और साहसिक उपन्यासों की रंगीन पतंगों से भर गया । इस युग के सबसे बड़े उपन्यासकार किशोरीलाल गोस्वामी भी प्रेम, चुहल , रोमांस और कुतूहल के रहस्यलोक के निर्माण में प्रवृत्त दिखाई पड़ते हैं।"[36]

हाशिये पर जीवन यापन करने वाले पात्रों को उद्घाटित करने वाले उपन्यासों पर थोड़ी चर्चा कर लेना शोध की दृष्टि से समीचीन होगा- प्रेमचन्द के उपन्यास 'प्रेमाश्रम'(1922) में सर्वप्रथम हमें हाशिये पर जीवन यापन करने वाले पात्रों का अंकन मिलता है । इसमें औपनिवेशिक शासन काल में जमींदारों और किसानों के संबंधों का उल्लेख किया गया है । किसानों की दयनीय स्थिति का यथार्थ चित्रण भी किया गया है । पात्र-ईजाद हुसैन, फैजू आदि हैं । इन्हीं के द्वारा लिखा गया उपन्यास 'रंगभूमि'(1925) में भी हाशिये पर जीवन यापन करने वाले पात्रों का चित्रण मिलता है । इस उपन्यास में औद्योगिक और कृषि जीवन की तुलना, पूंजी केन्द्रीयकरण का विरोध, धार्मिक रुढ़िवादिता, स्वतंत्रता के लिए आम आदमी का संघर्ष आदि का चित्रण किया गया है ।

1929 में जयशंकर प्रसाद के उपन्यास 'कंकाल' में हाशिये पर जीने वाले लोगों का यथार्थ चित्रण किया गया है । इसमें समाज की जर्जर व्यवस्था का, उच्च वर्ग का शोषण और धार्मिक पाखंडों का यथार्थ चित्रण किया गया है । इस उपन्यास में मजहब की आड़ में हो रहे खून-खराबे को भी उकेरा गया है । पात्र-तारा, घंटी आदि हैं । 1932 में प्रेमचन्द द्वारा लिखा गया 'कर्मभूमि' उपन्यास में गरीब या कह लें हाशिये पर जीने वाले लोगों का उल्लेख किया गया है । इस उपन्यास में गरीब शहरी और गाँव के लोगों का चित्रण किया गया है । मंदिर में अछूतों का प्रवेश निषेध, महंतों का अत्याचार और भोग लिप्सा, मजदूरों किसानों की समस्या, पूंजीपतियों का दमन आदि का चित्रण है । पात्र-अमरकांत, आत्मानंद आदि हैं । महाकाव्य की संज्ञा पाने वाला उपन्यास 'गोदान'(1936) में भी हाशिये पर जीने वाले पात्रों का अंकन किया गया है । ग्रामीण जीवन में आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण हाशिये पर जीवन यापन करने वाले व्यक्तियों का चित्रण किया गया है । पात्र-होरी, धनिया आदि । भगवतीचरण वर्मा ने भी सन् 1936 में 'तीन वर्ष' उपन्यास लिखा है । जिसमें समाज

में वेश्या जीवन जीने वाली स्त्रियों का चित्रण और शोषण को उद्घाटित किया गया है पात्र- सरोज है। इलाचंद्र जोशी द्वारा लिखा गया 'पर्दे की रानी'(1942) में भी हाशिये का जीवन जीने वालों पात्रों का चित्रण मिलता है। इस उपन्यास में पात्र निरंजना के माध्यम से नारी शोषण का चित्रण किया गया है । 'बलचनमा' (नागार्जुन,1952) उपन्यास में एक परिश्रमी और ईमानदार किसान को अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करते हुए दिखाया गया है। इस उपन्यास में हाशिये की जिन्दगी जीने वालों का यथार्थ चित्रण किया गया है। पात्र-बलचनमा है।

धर्मवीर भारती द्वारा लिखा गया उपन्यास 'सूरज का सातवाँ घोड़ा'(1952) है, जिसमें इलाहाबाद के एक मुहल्ले के निम्नवर्गीय लोगों का चित्रण है, जिनका वर्तमान पीड़ाग्रस्त और भविष्य द्वंद्व में है। पात्र-माणिक मुल्ला है। 'कब तक पुकारूँ'(1957) रांगेय राघव का चर्चित उपन्यास है, जिसमें हाशिये पर जी रहे ब्रज के नटों का यथार्थ चित्रण मिलता है । 1957 में ही लिखा गया 'जहाज का पंक्षी' (इलाचंद्र जोशी) हाशिये पर जीने वाले बेरोजगार व्यक्तियों पर आधारित है। इस उपन्यास में एक शिक्षित नवयुवक के भटकाव को उकेरा गया है। खास तौर से कलकत्ता शहर को केंद्र में रखकर यह उपन्यास लिखा गया है। रामचन्द्र तिवारी ने इस उपन्यास पर इस प्रकार टिप्पणी की है- "जहाज का पंक्षी में कथानायक एक शिक्षित नवयुवक है। वह कलकत्ता महानगरी में काम की तलाश में भटकता है। कलकत्ता नगरी वह जहाज है, जिसमें वह चारों ओर भटककर लौट आता है। कथानायक ज्योतिषी के रूप में, गिरहकट के रूप में, ट्यूटर के रूप में, धोबी के मुनीम के रूप में, भादुड़ी परिवार में रसोइये के रूप में, चकले में और निपट अकेली सम्पन्न महिला लीला के सेवक के रूप में आधुनिक महानगरी की विविध जीवन स्थितियों का अनुभव करता है। वह संघर्षशील मध्यवर्गीय युवकों का प्रतिनिधि है।"[37] पात्र-लीला, नायक आदि हैं। देवराज द्वारा लिखा गया -'रोड़े और पत्थर' (1958) उपन्यास हाशिये पर जीने वाले व्यक्तियों का नग्न सत्य उद्घाटित करता है। इस उपन्यास में निम्नमध्यवर्गीय लोगों का जीवन-संघर्ष चित्रित किया गया है। 'हरीश' नामक पात्र पूरे जीवन एक छोटा-सा अपना मकान बनाने का सपना देखता है, परन्तु उसका सपना, कभी हकीकत नहीं बन पाता है। इसमें हाशिये पर जीवन-यापन करने वाले व्यक्तियों के कुंठित जीवन की त्रासदी का यथार्थ अंकन हुआ है।

यशपाल द्वारा दो भागों में लिखा गया 'झूठा-सच' (1958) उपन्यास में निम्नवर्ग की दयनीय स्थिति का सूक्ष्म चित्रण दिखाई पड़ता है। रामचन्द्र तिवारी ने इस उपन्यास का सूक्ष्म विवेचन इस प्रकार किया है -"विभाजन के पूर्व के पंजाब की स्थिति, वहाँ के जनमानस का गठन, निम्न मध्यवर्गीय जीवन की अव्यवस्था; राजनीतिज्ञों के दाँव-पेंच, साम्प्रदायिक संकीर्णता; और तनाव; देश का विभाजन; भीषण नरसंहार; विस्थापितों की दुर्दशा; उनकी अक्षय जीवन शक्ति; मनुष्यता के आवरण के भीतर दबी हुई पशुता का तांडव; स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समाज और उसमें व्याप्त भ्रष्टाचार; उच्च वर्ग की स्वार्थ परता; निम्न मध्यवर्ग का नैराश्य आदि सब कुछ इसमें यथार्थ रूप में चित्रित हुआ है।"[38] पात्र-मनोहर, अमजद, हाफिज, तारा आदि हैं। 1961 में उषा प्रियंवदा का उपन्यास 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' नारी शोषण को उद्घाटित करता है। निम्नवर्ग की स्त्री जो किसी तरह अपना पेट पालती है, उसका जमकर शारीरिक और मानसिक शोषण किया जाता है।

1965 में मुस्लिम कथाकार शानी का प्रसिद्ध उपन्यास 'काला जल' आता है। इस उपन्यास में मुस्लिम परिवारों की तीन पीढ़ियों के माध्यम से उनकी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं को परत-दर-परत उकेरा गया है। इस उपन्यास में मुस्लिम समाज में हाशिये पर जीने वाले व्यक्तियों का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। इस पूंजीवादी युग में आज भी मुस्लिम समाज की एक बड़ी आबादी घोर गरीबी का जीवन जीती है। 'काला जल' के लेखक ने इस उपन्यास के लिए जो परिवेश उठाया है वह है- निम्नमध्यवर्ग। इस उपन्यास में निम्नवर्ग की दयनीय स्थिति का पूरा चित्रण शानी ने किया है। निम्नवर्ग जो अपना पेट पालने के लिए सुबह घर से निकलता है तो उसे यह मालूम नहीं होता है कि शाम तक वह कुछ जुटा पाएगा या नहीं। निम्न वर्ग को समाज में किस तरह प्रताड़ित किया जाता है, उन्हें उच्च वर्ग द्वारा किस तरह शोषित होना पड़ता है इसका सूक्ष्म चित्रण इस उपन्यास में मौजूद है। उपन्यासकार स्वयं इस परिवेश में पैदा हुआ था इसलिए इस वर्ग की हैसियत से पूरी तरह परिचित है। वह लिखता है- "पड़ोस का हाल उससे अच्छा न था। तीन-चार घरों को छोड़कर, बाकी सब आबादी निम्नवर्ग के रिक्शावाले, बढ़ई, कारीगर आदि क़िस्म के लोगों की थी, जो स्वयं तो दिन-भर गायब रहते, लेकिन अपने नंगे-गंदे बच्चों को सड़कों पर लापरवाही से धूल में खेलने के लिए छोड़ जाते।"[39] इसी तरह लेखक अपनी गरीबी का चित्रण कुछ इस प्रकार करता है- "किसी के सामने अपनी असम्पन्नता और

दरिद्रता को खुलते देख अपमान और हीनभाव का एहसास होता था। सचमुच, अपने को दरिद्र और साधन हीन बताने में मुझे क्यों हिचक होती थी।"[40] यहाँ एक प्रश्न उठ सकता है कि मुस्लिम समुदाय में गरीबी के कौन से कारण हैं? इसके अनेक उत्तर दिए जा सकते हैं, जैसे-शिक्षा की कमी, अवसर की कमी, संसाधन की कमी, रूढ़िवादिता आदि। परन्तु शानी ने मुस्लिम समाज में व्याप्त गरीबी के कारणों में धार्मिक-सांस्कृतिक संस्कारों को एक प्रमुख कारण बताया है। "हिन्दू समाज की तरह मुस्लिम समाज भी धार्मिक विधानों के पाखण्ड और दिखावे में जकड़ा हुआ है। सम्पन्न वर्ग के लोग तो दिखावे की भावना से रीति-रिवाजों के नाम पर धन खर्च करते हैं। परन्तु निम्न वर्ग अपनी जाहिलता के कारण सम्पन्न वर्ग का अनुसरण करता है और अपने खून-पसीने की कमाई मृत संस्कारों, रीति-रिवाजों के नाम पर लुटाता है और फिर दरिद्रता में रोता है।"[41] इस उपन्यास में मिर्जा करामत बेग की मृत्यु के बाद के संस्कारों के लिए अपनी हैसियत से ज्यादा दावत का प्रयोजन किया गया है। उपन्यास का एक प्रसंग है -"आँगन में चहल्लुम के पुलाव के लिए मन-डेढ़ मन उम्दा चावल धुल रहे हैं और एक ओर तीन ज़िबह किये गए बकरे छिले जा रहे हैं।"[42] उपन्यास में मिर्जा करामत बेग पेशे से चूड़ियाँ बेचते थे और किसी तरह अपने घर को चलाते थे। रज्जू मियाँ बी-दारोगिन से ऐसे ही पूछ बैठते हैं तुम्हारे घर का खर्च कैसे चलता है? बी-दारोगिन उत्तर देती है-"मिर्जा ने जितना कमाया था, वह सब बीमारी में चला गया। जो जमा पूँजी थी, वह भी चालीसवें में समा गई।"[43] इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि मुस्लिम समाज में गरीबी के कारणों में एक प्रमुख कारण धार्मिक-संस्कारों के नाम पर पैसा लूटाने की प्रवृत्ति है।

चर्चित उपन्यास 'आधा-गाँव'(1966) राही मासूम रजा द्वारा लिखा गया है। यह उपन्यास प्रमुख रूप से गाजीपुर जिले के 'गंगोली' नामक गाँव को केंद्र बनाकर लिखा गया है। गंगोली जो कि मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्र है। इस क्षेत्र की जीवन-शैली, आचरण, सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति आदि का सूक्ष्म चित्रण राही जी ने किया है। इस उपन्यास में विभाजन के समय और उसके बाद की स्थितियों पर चित्रण किया गया है। इसमें निम्नवर्ग के मुसलमानों के यथार्थ जीवन का अंकन भी किया गया है, जो हाशिये पर जीवन यापन करते हैं। विभाजन के समय मुस्लिम समाज की जो दुर्दशा हुई उसका सटीक ब्यौरा इस उपन्यास में निहित है। पात्र-जोखन है। रामदरश मिश्र का उपन्यास 'बीच का समय' प्रमुख रूप से हाशिये पर जीवन-यापन कर रही

स्त्रियों पर केन्द्रित है। पात्र-शील और रीता आदि हैं। 'ओस की बूँद' हिन्दू और मुस्लिम के धार्मिक उन्माद पर आधारित उपन्यास है। इसमें निम्नवर्ग की पीड़ा का अंकन किया गया है। पात्र-हाजरा, वजीर हसन आदि हैं।

1973 में लिखा गया 'तमस' उपन्यास 1947 में हुए भीषण साम्प्रदायिक दंगे पर आधारित है। इस उपन्यास में पांच दिनों की भीषण दंगे की कहानी गढ़ी गई है, दंगे के दौरान हिन्दू और मुस्लिम दोनों की मन: स्थिति का सूक्ष्म विवेचन मौजूद है। उपन्यास में मुस्लिम कौम की सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों का काला चिट्ठा भीष्म साहनी ने खोला है। मुस्लिम युवक जिसको यह मालूम नहीं कि उचित क्या है अनुचित क्या क्या है, वह दंगे में हिस्सा लेते हैं या यह भी कह सकते हैं कि कुछ मुस्लिम उलेमा उन्हें जबरदस्ती दंगे में इस्तेमाल करते हैं। इस उपन्यास में लेखक ने देश विभाजन के पूर्व की सामाजिक मानसिकता का चित्रण किया है। "इसे पढ़कर हम यह अनुभव करते हैं कि बड़े लोगों के स्वार्थ की पूर्ति करने वाली नीतियाँ जन साधारण के जीवन से खिलवाड़ करके बड़े-बड़े राष्ट्रों के इतिहास और भूगोल बदल देती हैं।"[44] 'कटरा बी आरजू' (राही मासूम रज़ा) उपन्यास में इलहाबाद के एक मुहल्ले कटरा की कहानी है। मजदूर और गरीब वर्ग की पीड़ा को बहुत ही सूक्ष्म ढंग से चित्रित किया गया है, साथ ही साथ इस बात का अंकन किया गया है कि एक गरीब व्यक्ति की आरजू उसके सपनों में रह जाती है। गरीब व्यक्ति की आरजू कभी पूरी नहीं होती। गरीब परिवार कि सामाजिक जीवन का पूरा ब्यौरा इस उपन्यास में देखने को मिलता है। पात्र-देशराज, प्रेमनारायण, बिल्लो, श्म्सू मियां और शहनाज आदि हैं। मणिमधुकर का उपन्यास 'पत्तों की बिरादरी' ख़ास तौर पर देश विभाजन पर केन्द्रित है। देश बँटवारे के बाद रोजी-रोटी की तलाश में भटक रहे आम आदमी का भी चित्रण है। "कैम्पों की व्यवस्था करने वाले इनका हर प्रकार से शोषण करते हैं। इस शोषण का विरोध करता है 'शुबो' जो पाकिस्तान से भटककर भारतीय कैंप में आया है। उसकी हत्या कर दी जाती है। उसके बाद उसकी पत्नी 'जुगनी' संघर्ष को आगे बढ़ाती है।"[45]

निर्मल वर्मा का चर्चित उपन्यास 'एक चिथड़ा सुख' में मानव के एकाकीपन को रेखांकित किया गया है। आज स्थिति यह है कि मानव अपने को खुश रखने के लिए कुछ भी करने को तैयार है, परन्तु उसे खुशी नहीं

मिल रही है। इसमें इस बात का उल्लेख है कि प्रत्येक मानव का अपना एक अलग दुःख है जो मानव को अन्दर से ही खोखला करता है। प्रत्येक मानव अपनी भीतरी दुनिया में अकेले हैं, जहाँ दूसरे मनुष्य या कहें मानव के लिए प्रवेश वर्जित है। एक अकेले मनुष्य को उसका एकाकीपन उसे बहुत खोखला कर देता है। एकाकीपन को बढ़ाने में उपभोक्तावादी संस्कृति और बाजारवादी संस्कृति का बहुत बड़ा हाथ है। आज स्थिति यह है कि बाजार में ऐसी अनेकों वस्तुएँ आ गई हैं, जिनमें मनुष्य पूरी तरह खो जा रहा है। एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से बात तक करने का समय नहीं मिल पा रहा है, जिसका परिणाम यह हो रह है कि मनुष्य अपनी ही दुनिया में व्यस्त है। पात्र-विट्टी, इरा, मुन्नू, नित्ति, आदि हैं। 'वसन्ती' (भीष्म साहनी) उपन्यास प्रमुख रूप से दिल्ली की झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाले व्यक्तियों पर प्रकाश डालता है। एक गरीब लड़की अपने जिजीविषा के लिए संघर्ष करती है जिसका सजीव चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। पात्र-वसंती है। विवेकी राय का उपन्यास 'सोना माटी' उतर-प्रदेश के गाजीपुर और बलिया के बीच लगभग चालीस-पचास किलोमीटर के वृत्त में फैले हुए करइल क्षेत्र के जीवन को केंद्र में रखकर लिखा गया है। इसमें एक असहाय मनुष्य का चित्रण किया गया है जो हाशिये की ज़िन्दगी जीता है। पात्र-रामस्वरूप है।

1984 में प्रकाशित 'बिना दरवाजे का मकान'(रामदरश मिश्र) उपन्यास में एक असहाय स्त्री के संघर्ष और शोषण का चित्रण किया गया है। पात्र-दीपा है। जगदीश चन्द्र के 'घास गोदाम' उपन्यास में दिल्ली शहर के विस्तार होने के बाद शहर के आस-पास रहने वाले किसानों के शोषण का चित्रण है। इस उपन्यास में किसान परिवार के रोजी-रोटी से खिलवाड़ करने वाले धर्म के ठेकेदारों, राजनीति के नये व्यावसायियों का यथार्थ चित्रण किया गया है। किसान अपनी रोजी-रोटी चलाने के लिए मजदूर या अपराधी का जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होते हैं, इसका बहुत ही सूक्ष्म ढंग से अंकन किया गया है।

कथाकार संजीव का चर्चित उपन्यास 'सावधान ! नीचे आग है' में बिहार और बंगाल में कोयला खदानों में व्याप्त भ्रष्टाचार को उकेरा गया है। कोयला खदानों में कार्य करने वाले मजदूरों के शोषण का यथार्थ चित्रण किया गया है। कोयला में काम करने वाला मनुष्य जब घर से निकलता है तो उसके जेहन में यह बात

रहती है कि आज काम पर जाकर दो पैसे कमा लूँगा तो मेरे परिवार की रोजी-रोटी चल जाएगी, लेकिन इस उम्मीद को किस प्रकार पूंजीपतियों द्वारा रौंद दिया जाता है इसका पूरा ब्यौरा उपन्यास में मौजूद है। बिहार और बंगाल में रहने वाले आदिवासियों का किस प्रकार शोषण किया जाता है इस पर भी संजीव ने जबरदस्त संकेत किया है। पात्र-सोमारू है। 'सूखा बरगद' (मंजूर एहतेशाम) में हिन्दू-मुस्लिम के संघर्ष को उकेरा गया है। संघर्ष के दौरान हाशिये पर जीवन व्यतीत करने वाले मनुष्यों का यथार्थ अंकन किया गया है। पात्र-शाहिदा, नसीमा, रशीदा आदि हैं। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' (अब्दुल बिस्मिल्लाह) उपन्यास प्रमुख रूप से बनारस जिले के बुनकरों के जीवन-यापन को उद्घाटित करता है। इसमें हाशिये पर जीवन व्यतीत कर रहे लोगों की कहानी है। जुलाहे समाज में व्याप्त अशिक्षा, बेरोजगारी, रूढ़िवादिता, धार्मिक संकीर्णता आदि का यथार्थ चित्रण किया गया है। उपन्यास का एक प्रसंग है- "रऊफ चाचा बिन रहे हैं। करघे के पीछे टिका हुआ उनका बूढ़ा शरीर बिलकुल किताब में छपी कबीर की तस्वीर की तरह लग रहा है। दर्जा पांच की किताब में मतीन ने वह तस्वीर देखी थी। रऊफ चाचा के बदन पर सिर्फ़ लुंगी है और टोपी। कुर्ता उतारकर उन्होंने बगल में रख लिया है। करघे पर बैगनी रंग की एक साड़ी बीनी जा रही है। नारी पर कलावत लिपटा है और ढोटा पर रेशम, मानो आसमान पर चाँद और सूरज साथ-साथ चमक रहे हैं और दुनिया का करघा एक अखंड लय के साथ गतिमान है।"[46] पात्र-इकबाल, मतीन आदि हैं। मुद्राराक्षस का उपन्यास 'दण्ड विधान' में गाँव के शोषण को उकेरा गया है। निम्नवर्ग की पीड़ा को कथाकार ने सूक्ष्म ढंग से चित्रित किया है। पात्र-भूरेलाल और विशन हैं। 'ज़हरबाद' अब्दुल बिस्मिल्लाह का लघु उपन्यास है। इसमें गरीबी रेखा के बहुत नीचे का जीवन-यापन करने वाले एक निम्नवर्गीय मुस्लिम परिवार की कथा है। "इस उपन्यास की स्त्रियाँ भी सब कुछ सहन कर लेती हैं, मन मारकर जी लेती हैं किन्तु कानून के दरवाजे पर दस्तक देना उनके लिए संभव नहीं होता। कदाचित यह उस दौर के समय और समाज का दबाव था कि गरीब मुस्लिम परिवारों की स्त्रियाँ अपने हालात और हक के लिए न्याय की आवाज़ मुखर नहीं कर सकती थीं।"[47] इस उपन्यास में कथाकार ने अभिशप्त और उपेक्षित ज़िन्दगी का यथार्थ चित्रण किया गया है। आनंद प्रकाश त्रिपाठी ने इस उपन्यास पर इस प्रकार टिप्पणी की है-"अपनी साधारण कथावस्तु के बावजूद 'ज़हरबाद' उपन्यास मुस्लिम समाज का एक यथार्थ चित्र ही नहीं प्रस्तुत करता,

व्यवस्था और पितृसत्ता की खामियों की ओर भी इशारा करता है। स्त्री के प्रति असम्वेदनशील का पर्दाफाश करते हुए लेखक ने निम्नवर्गीय मुस्लिम समाज की दयनीय स्थिति और उनकी कुंठा एवं हताशा को भी अभिव्यक्ति दी है।"[48] पात्र-रफीक, शहीदन, हफीज आदि हैं।

1989 में प्रकाशित उपन्यास 'शैलूष' (शिवप्रसाद सिंह) ख़ास तौर पर कबीलाई जीवन व्यतीत करने वाले नटों पर केन्द्रित है। पात्र-जुड़ावन, सावित्री आदि हैं। नासिरा शर्मा का चर्चित उपन्यास 'ठीकरें की मंगनी' रूढ़ियों में जकड़े एक मध्यवर्गीय मुस्लिम परिवार की कथा है। इस उपन्यास में हाशिये पर जीवन व्यतीत कर रहीं स्त्रियों के संघर्ष को भी उद्घाटित किया गया है। पात्र-महरूख, रफत आदि हैं। वीरेंद्र जैन का चर्चित उपन्यास 'डूब' प्रमुख रूप से लड़ैया गाँव को केंद्र में रखकर लिखा गया है। इस उपन्यास में विस्थापन के कारण हाशिये पर जीवन व्यतीत कर रहे लोगों की कथा है। पात्र-माते, मास्साहब, पटसाव, गोराबाई आदि हैं। 'छिन्नमस्ता' (प्रभा खेतान) में नारी-जीवन के संघर्ष को उकेरा गया है। पात्र-प्रिया है। मंजूर एहतेशाम का चर्चित उपन्यास 'दास्तान ए लापता' 1947 से 1987 तक के भोपाल शहर के एक मध्यवर्गीय परिवार की कथा है। इसमें काल्पनिक भोपाल शहर की स्थिति का बहुत ही मार्मिक ढंग से चित्रण किया गया है जो की वास्तविक भोपाल शहर से बहुत कुछ हू-ब-हू मिलता-जुलता है। 1947 से1987 तक जो लापता हुआ है वह है - " इंसानियत, नैतिकता, संवेदनशीलता और वह सब कुछ जो घर, परिवार, समाज, घर्म, मजहब सबको एक दूसरे से जोड़ता और एक दूसरे के सुख-दुःख में भागीदार बनाता था। जमीर अहमद खान इन सारी खूबियों का प्रतीक पुरुष है। 'जमीर' का अर्थ ही है-'भले-बूरे का विचार करने वाली अंतःकरण की वृत्ति'। उसके देखते-देखते भोपाल ही नहीं पूरे देश में एक ऐसी पीढ़ी उग आई है, जिसमें न नैतिकता है, न मानवीयता। जिसका एकमात्र लक्ष्य है- सत्ता, शक्ति, वैभव, सुविधा और सुख-भोग।"[49] पात्र-इक़बाल है।

1995 में लिखा गया 'हिम्मत जौनपुरी'(राही मासूम रजा) उपन्यास में उत्तर-प्रदेश के गाजीपुर जिले के एक मुसलमान की कथा है। इस उपन्यास में मुस्लिम परिवार में हाशिये पर किसी तरह जीवन निर्वाह कर रहे मनुष्यों की कहानी है। पात्र-रहीम, हिम्मत जौनपुरी, गफूर आदि हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह का उपन्यास 'मुखड़ा

क्या देखे' खास तौर से गाँव में रहने वाले हाशिये पर जीने वाले मनुष्यों पर केन्द्रित है। इस उपन्यास की पृष्ठभूमि इलहाबाद का बलापुर गाँव है, जो की अब्दुल बिस्मिल्लाह जी का जन्म स्थान है। उपन्यास को पढ़ते हुए ऐसा महसूस होता है कि कथाकार ने जिन पात्रों का जिक्र किया है उसने मिला जरूर है। 'मुखड़ा क्या देखे' का कथानक किसी एक परिवार या फिर कुछ पात्रों पर आधारित नहीं है, बल्कि कथाकार का पूरा जोर रहा है कि आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी देश के गाँवों में किस तरह से सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक बदलाव आए हैं उसको पाठकों के सामने पेश करना। "उपन्यास में लेखक ने कोई तीन दशक की लम्बी कहानी बुनी है। इन तीन दशकों में गाँव-देहात की ज़िन्दगी किस तरह से बदलती है, पाठक इस बात का अहसास उपन्यास पढ़ते हुए साफ-साफ महसूस कर सकते हैं। गाँव में हो रहे बदलावों को अब्दुल बिस्मिल्लाह, बड़े ही बारीकी से चित्रण करते हैं। अली अहमद उर्फ अली चूड़ीहार उपन्यास का केन्द्रीय किरदार है। इस किरदार के मार्फत उपन्यास की कहानी आगे बढ़ती है। एक तरफ अली चूड़ीहार एवं उसके परिवार की ज़िन्दगी के सुख-दुःख, संघर्ष हैं, तो इसी के समांतर गाँव और उसकी ज़िन्दगी है। जिसमें सभी शामिल हैं।"[50] इस उपन्यास में हाशिये पर जीवन यापन कर रहे लोगों का बहुत ही बारीकी से चित्रण किया गया है। पात्र- समी अहमद, अली अहमद आदि हैं। 'प्रतिरोध' (विश्वम्भरनाथ उपध्याय) उपन्यास में व्यवस्था विडम्बना को उद्घाटित किया गया है। मनुष्य आधुनिक व्यवस्था में अपने को सही तरीके से स्थापित न कर पाने के कारण हाशिये की ज़िन्दगी व्यतीत करता है, उपन्यास का केन्द्रीय बिंदु है।

चित्रा मुद्गल का चर्चित उपन्यास 'आवां' बम्बई के मजदूर संगठनों के जीवन संघर्ष को केंद्र में रखकर लिखा गया है जिसमें मजदूरों के शोषण को भी उकेरा गया है। उपन्यास में स्त्री बेबसी को भी उद्घाटित किया गया है। इस उपन्यास में नारी के प्रति मजदूर संगठनों के मालिकों का जो व्यवहार रहता है उसका चित्रण किया गया है। एक निम्नवर्ग की स्त्री अपना पेट पालने के लिए काम पर जाती है ताकि उसे दो जून की रोटी मिल जाए, लेकिन उसे क्या मालूम होता है कि जहाँ वह अपने पेट के लिए जाती है वहाँ जिस्म के भेड़िये मिलेंगे। उपन्यास में निम्नवर्ग की बदहाली के कारणों पर चित्रा मुद्गल ने जबरदस्त कलम चलाई है। उपन्यास का एक प्रसंग है -"समाज का कोई वर्ग क्यों न हो, आज भी सर्वत्र पुरुष प्रधान समाज में नारी ही उत्पीड़ित होने के लिए

अभिशप्त है। आज की उपभोक्तावादी संस्कृति ने मानवीय संवेदना को कुंठित कर दिया है और सब कुछ बिकाऊ माल बन गया है। खरीद फ़रोख्त के रास्ते इतने तिलिस्मी हो गये हैं कि एक बार उनमें फँस जाने के बाद मुक्ति का कोई मार्ग दिखाई नहीं पड़ता।"[51] 2004 में प्रकाशित असगर वजाहत का उपन्यास 'कैसी आग लगाई' अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय को केंद्र में रखकर लिखा गया है। यह उपन्यास 391 पृष्ठों का है। विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए देश के तीन प्रदेशों से आए हुए मुस्लिम युवकों के माध्यम से तत्कालीन मुस्लिम समाज की सोच को उद्घाटित किया गया है। उपन्यास में इस बात का जिक्र भी किया गया है कि अन्य प्रदेशों से आए हुए तीनों युवक कहीं न कहीं हाशिये पर खड़े हुए महसूस करते हैं और अपने को तात्कालिक समय में ढालने का प्रयास भी करते-रहते हैं। पात्र-साजितद, अहमद, शकील आदि हैं।

उपर्युक्त उपन्यासों के अतिरिक्त ऐसे और भी कुछ उपन्यास हैं, जिनमें हाशिये के समाज का चित्रण मिलता है- निस्सहाय हिन्दू (राधाकृष्ण)1890, कठपुतली (देवेन्द्र सत्यार्थी)1954, लौटे हुए मुसाफिर (कमलेश्वर)1961, जुलूस (रेणु)1965, छाको की वापसी (बदीउज्जमा)1975, कोरजा (मेहरुनिस्सा परवेज)1977, अकेला पलाश (मेहरुनिस्सा परवेज)1981, साफिया (हबीब कैफ़ी)1988, कुहरे में कैद1992, दिल्ली दूर है (शिवप्रसाद सिंह)1993, जिन्दा मुहावरे (नासिरा शर्मा)1993, उन्माद (भगवान सिंह)1999 एवं वशारत मंजिल (मंजूर एहतेशाम)2004 आदि।

1.5 मुस्लिम समुदाय की विविधमुखी अभिव्यक्ति

मुस्लिम समुदाय में प्रमुख रूप से तीन जातियाँ पाई जाती हैं- 'अशरफ', 'अजलाफ़' और 'अरजाल'। 'अशरफ' के अंतर्गत अभिजात वर्ग के व्यक्ति आते हैं, 'अजलाफ़' के अंतर्गत सामान्य स्तर या कहें मध्यवर्ग के व्यक्ति आते हैं और 'अरजाल के अंतर्गत निम्नस्तर के व्यक्ति आते हैं। 'अरजाल' जाति के अंतर्गत जितने भी व्यक्ति आते हैं, उन्हें 'पसमांदा समाज' से भी सम्बोधित किया जाता है 'पसमांदा' पस और मांदा दो शब्दों

से मिलकर बना है। 'पस' फारसी शब्द है, जिसका अर्थ 'पीछे' होता है। 'मांदा' का अर्थ 'छूट गया' अर्थात जो पीछे छूट गया। ख़ास तौर से मुस्लिम समुदाय में पसमांदा समाज के अंतर्गत आने वाले मनुष्य हाशिये का जीवन जीते हैं।

पसमांदा समाज का हाशिये पर जाने का सबसे बड़ा कारण है- धर्मांधता। अजमेर में ख्वाज़ा मुईनुद्दीन चिश्ती रहमतुल्ला की दरगाह पर सालाना उर्स चलता है तो लाखों की तादाद में मुसलमान बसों में भरकर अजमेर जा पहुँचते हैं। वहीं दूसरी तरफ मुसलमानों के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए अगर कोई व्यवस्था या कहें मुख्यधारा में लाने के लिए कोई सम्मेलन होता है तो बमुश्किल कुछ ही संख्या में मुसलमान पहुँचते हैं, "धार्मिक आयोजनों के मौकों पर मुसलमानों का जोश बल्लियों उछलता है। लेकिन जब समाज में प्रतिष्ठा पाने के लिए तालीमी और सियासी बेदारी का मामला आता है तो ये जोश बर्फ़ की तरह ठंडा पड़ जाता है। शबेरात को नफिल नमाज़ पढ़ने के लिए मुसलमान रात-रात भर जागते हैं। कब्रिस्तान में जाकर फ़ातिहा पढ़ते हैं। रमजान में दिन भर टोपी सिर से नहीं उतरती। तरावीह पढ़ने के लिए दूर-दूर चले जायेंगे। लेकिन जब सामाजिक, तालीमी और सियासी बेदारी के लिए काम करने का मसला आता है तो लोगों को अपने रोजगार की फिक्र सताने लगेगी। फिक्र भी ऐसी मानों अगर एक दिन काम नहीं करेंगे तो शाम को घर में चूल्हा नहीं जलेगा।"[52]

मुस्लिम समुदाय में जाति-प्रथा की अवधारणा पर बात की जाए तो, इस्लाम का भारत में आगमन से पूर्व जाति व्यवस्था का उतना जटिल रूप देखने को नहीं मिलता है। खुद अपने अंतिम उपदेश में पैगम्बर साहब ने सभी मुसलमान को भाई-भाई कहकर सम्बोधित किया था। मुस्लिम समाज में दसवीं सदी के बाद जाति-प्रथा का स्वरूप बदलने लगता है। मुस्लिम समाज के इतिहास में ग्यारहवीं सदी तक जाति-प्रथा की स्थिति कुछ इस प्रकार थी -"1.मुस्लिम समाज अपनी सैद्धांतिक समानता के बावजूद मूलतः श्रेणी बद्ध समाज था। 2.श्रेणियों में विभाजित समाज का ऐसा ही स्वरूप इस्लाम पूर्व ईरान में विद्यमान था, अंतर सिर्फ़ इतना कि अरबों में श्रेणियों

का आधार वर्ग पूर्वाग्रह एवं जातिगत श्रेष्ठता थी, न कि व्यावसायिक श्रेणियाँ। 3.छुआछूत या अछूत जैसी अवधारणा, जो हिन्दू वर्ण व्यवस्था का अभिन्न रूप थी, मुसलमानों में नहीं थी।"[53]

मध्यकाल में मुस्लिम समाज में जाति-प्रथा का विकास परिलक्षित होता है, "मुसलमानों में जाति-प्रथा मध्यकाल में क्रमिक रूप से विकसित हुई। प्रारम्भ में ये विभाजन मुख्यरूप से वर्ग आधारित था। इसी समय अभिजात वर्ग का उदय हुया जिसे अशरफ कहा गया। इस वर्ग में मुख्यतः विदेशी अप्रवासी एवं उच्च जाति के हिन्दू से धर्म परिवर्तन करके आए कुलीन व्यक्ति थे। दूसरा वर्ग 'अजलाफ़' का था जिसमें सामान्य स्तर के व्यक्ति थे। इस वर्ग में हिन्दू निम्न जाति से धर्म परिवर्तन करके आए लोग थे कालांतर में इन दोनों वर्गों में भी विभाजन हुए। अशरफ सैयद, शेख, पठान इत्यादि उपवर्ग में विभाजित हुए और इन्हें मुसलमानों की विशिष्ट जातियों की पहचान मिली।"[54] एक बात और देखने को मिलती है, भारत में आने के बाद हिन्दू समाज की जटिल जाति-प्रथा का प्रभाव तो पड़ता है, लेकिन मुस्लिम समाज में जाति व्यवस्था के अंतर्गत अपने से उच्च वर्ग में पहुँचना बहुत सरल था, जबकि हिन्दू समाज में ऐसा नहीं था। मुस्लिम समाज में कोई व्यक्ति धुनिया (निम्न जाति) से सैयद (उच्च जाति) बनने की ख्वाहिश रख सकता था, "सिंध में अरबों की विजय के समय जाटों का उल्लेख निम्न जाति के रूप में मिलता है। उन्हें शूद्रों के समकक्ष माना जाता था और उन्हें बहुत चीजों से वंचित रखा गया था। सल्तनत काल में वे समृद्ध कृषक के रूप में दिखाई पड़ते हैं और इनकी स्थिति वैश्यों के समकक्ष है। अठारहवीं शताब्दी तक आते-आते वे एक अलग साम्राज्य कायम कर लेते हैं और उनकी स्थिति क्षत्रियों के सदृश्य हो जाती है। उनके लिए यह एक लम्बी छलांग है। आठवीं सदी से अठारहवीं सदी तक वे शूद्र से क्षत्रिय बन जाते हैं।"[55]

मध्यकाल में व्याप्त जाति-प्रथा की स्थिति पर चर्चित विचारक इम्तियाज अहमद का कथन है-"1.मुस्लिम समाज में जाति-प्रथा का जो स्वरूप आज विद्यमान है वह मूलतः भारतीय समाज पर हिन्दू समाज का प्रभाव है। 2.मुस्लिम समाज में जाति-प्रथा कम सख्त थी, इसमें व्यक्ति को अपने सामाजिक उन्नयन करने के अवसर प्राप्त थे और छुआछूत से रहित इस समाज में अंतर्वर्गीय विवाह को अनुमति प्राप्त थी।

3.सामाजिक विभेद 'विदेशी' एवं भारतीय के आधार पर अपेक्षाकृत ज्यादा सख्त था, बनिस्बत जातिभेद के ।"[56]

औपनिवेशिक काल के आरम्भ होते ही जाति व्यवस्था मुस्लिम समाज में एक प्रमुख तत्व के रूप में उभरती है। विभाजन के बाद मुस्लिम समाज में जाति-प्रथा और जटिल हुई। आज 'पसमांदा समाज' मुस्लिम समुदाय में प्रत्येक स्तर पर शोषित है। पसमांदा समाज के अंतर्गत निम्नलिखित जातियाँ आती हैं- जोलहा, हलालखोर, लालबेगी, भटियारा, गोरकन, बक्खो, मीरशिकार, चिक रंगरेज, दर्जी, नट आदि। इन पर थोड़ी चर्चा कर लेना शोध की दृष्टि से समीचीन होगा।

मुस्लिम समाज में निम्न जातियों के अंतर्गत 'जुलाहे' आते हैं जो बहुत ही मेहनती होते हैं। लेकिन समाज में इनका बहुत ही मजाक उड़ाया जाता है। इनके बारे में कई कहावतें प्रसिद्ध हैं -'खेत खाए गदहा, मार खाए जोलहा' आदि। 'हलालखोर' यह अरबी शब्द है जो 'हलाल' और फारसी के 'खुर्दन' शब्द से मिलकर बना है जिसका अर्थ होता है- परिश्रम करके अपनी रोजी-रोटी चलाने वाला।

आम तौर पर धारणा है कि ज्यादातर मुसलमान, हिन्दू से मुसलमान बने हैं। हिन्दू समाज में जो दलित कहे जाते हैं, उनमें कुछ लोगों का पेशा होता है- जानवर मारकर उसका मांस खाना। यही दलित वर्ग धर्म परिवर्तन करके 'हलालखोर' बन गए। इस जाति की स्थिति पर अली अनवर का कथन है -"परिवार के बच्चे और औरतें अगरबत्ती बनाकर कुछ पैसा कमा लेती हैं। एक औरत दिनभर में एक किलो अगरबत्ती बना सकती है। जिसके लिए उसको पांच रुपया मजदूरी मिलता है। इस मुहल्ले के लोग पूछते हैं कि जिस तरह हरिजनों के लिए सरकार पक्का मकान बनाती है, उसी तरह उन लोगों के लिए क्यों नहीं किया जाता?"[57]

'लालबेगी' जाति खासतौर से बिहार विधानसभा के दक्षिण गेट के सामने गुमटी के पास यारपुर मुहल्ले के बीचोंबीच बसी है। "चार युग बीत गये-नई पीढ़ियाँ आ गईं, पर लालबेगी परिवार वहीं है जहाँ पहले युगों पहले ।"[58] इनका मुख्य व्यवसाय झाड़ू लगाना है। यह जाति गाँव-गाँव में घूमकर झाड़ू लगाकर किसी तरह अपना पेट पालती है। इस जाति के लोग कभी-कभी किसी एक घर में रहकर ही अपना काम करते हैं, जिससे

इनको महीने में एक बार पैसा मिलता है, जिससे यह अपना परिवार चलाते हैं। 'भटियारा' जाति के लोगों का मुख्य व्यवसाय छोटा-मोटा होटल चलाना है -"बिहार, उत्तर-प्रदेश आदि कई राज्यों में अब भी इस जाति के लोग हैं। चूँकि इस तरह के होटलों का संचालन अपनी गरीबी के कारण परिवार के सभी मर्द, औरत और बच्चे मिलकर करते थे इसलिए उनकी महिलाओं को संदिग्ध चरित्र का करार दिया गया और उन्हें 'भटियारा' जैसा अपमानजनक विशेषण दे दिया गया ।"[59] पुराने जमाने में सड़कों के किनारे मुसाफ़िरों को ठहराने के लिए 'सराय' होती थीं जिसे धर्मशाला भी कहा जा सकता है।

'गोरकन' जाति का मुख्य व्यवसाय है- कब्र खोदना। गोरकन फ़ारसी भाषा का शब्द है, जो 'गोर' और 'कन' से मिलकर बना है। 'गोर' का अर्थ- कब्र और 'कन' का अर्थ- खोदना अर्थात कब्र खोदने वाला। इनके व्यवसाय पर कई किस्से कहानियाँ और अफ़साने मिलते हैं। इस जाति के लोगों में किसी को कब्र खोदने का कार्य मिलने पर खुशियाँ मनाई जाती हैं क्योंकि इसी के द्वारा उनकी रोजी-रोटी चलती है। कब्र खोदने के अलावा इनका दूसरा पेशा कब्रिस्तान की रखवाली और देखभाल करना भी है। "कोई जानवर किसी मुर्दा को कब्र से निकालकर न ले भागे और कोई जमीन का भूखा इंसान कब्रिस्तान की जमीन का कोई हिस्सा न हथिया ले, इसके लिए वह बराबर मुस्तैद रहता है। आम तौर पर कब्रिस्तान आबादी से दूर शहर और गाँव से बाहर होते हैं। इसलिए इन बातों का खतरा तो हमेशा बना ही रहता है। यही वजह है कि गोरकन कब्रिस्तान के इर्दगिर्द ही रहता है। कई जगहों पर तो कब्रिस्तान के अन्दर उसका गरीबखाना होता है।"[60] 'बक्खो' खानाबदोश किस्म की जाति है। ये लोग अक्सर बिना घर के जीवन यापन करते हैं। अपनी रोजी-रोटी के लिए जगह-जगह घूमते रहते हैं- "इस बिरादरी की आबादी पटना, नालन्दा, गया, बेगूसराय, समस्तीपुर, मुजफ्फरपुर, मधुबनी, सहरसा, सुपौल, गोपालगंज, छपरा, सिवान, किशनगंज, अररिया आदि जिलों में पायी जाती है। दक्षिण बिहार में इस जाति की आबादी नहीं है। पहले यह जाति घुमंतू थी लेकिन अब जहाँ-तहाँ झोपड़ियाँ बनाकर बसने लगी है।"[61]

'मीरशिकार' जाति के लोगों का मुख्य व्यवसाय है- पशु-पक्षियों का शिकार करना। इसी व्यवस्था के द्वारा ये अपना जीवन यापन करते हैं। खस्सी बकरियों की खरीद बिक्री के लिए 'चिक' जाति के लोग मशहूर हैं। 'रंगरेज' जाति के लोग अपनी जीविका का निर्वाह फूल-पत्तों से रंग बनाकर करते हैं। अली अनवर के शब्दों में -"कुदरत से प्रेरणा लेकर फूल-पत्तियों तथा पेड़ के खाल से जिन लोगों ने सबसे पहले रंग तैयार किया होगा, वे ही रंगरेज कहलाये होंगे। मगर कैसी विडम्बना है कि तरह-तरह के रंग तैयार कर दुनिया को रंगीन बनाने वालों का खुद का जीवन 'बदरंग' हो गया ! रंगों को एक दूसरों से मिलाकर पक्के रंगों से तरह-तरह के परिधान तैयार करने वाली इस कलाकार बिरादरी को आज तक वह मुकाम नहीं मिला जो बहुत पहले मिलना चाहिए था।"[62]

कपड़े की सिलाई करना 'दर्जी' जाति का मुख्य व्यवसाय है। 'नट' जाति के लोगों का व्यवसाय है- लकड़ी काटना। "टोला के हिन्दू नट हों या मूस्लिम सभी का पेशा, रहन-सहन, खान-पान आर्थिक व सामाजिक स्थिति एक तरह की है। लकड़ी काटना, मधु चुआना, मवेशियों की खरीद-बिक्री तथा खेतों में मजदूरी यहाँ के मर्दों का पेशा है। औरतें मनिहारी का सामान फेरी में बेचकर पैसा कमाती हैं।"[63]

पसमांदा समाज के अंतर्गत आने वाली ये सभी जातियाँ आज भी वहीं की वहीं हैं। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों में इनका कोई विकास दिखाई नहीं पड़ता। इनके जीवन स्तर में सुधार न होने के कारण ये जातियाँ हाशिये का जीवन व्यतीत करती हैं।

आम तौर पर देखा जाए तो मुस्लिम समुदाय में पसमांदा समाज को केंद्र में रखकर अशरफ जाति के लोग राजनीति करते हैं। इनकी सामाजिक, आर्थिक समस्याओं को न दिखलाकर, सिर्फ़ कुछ ही मुद्दों जैसे- बाबरी कांड, उर्दू, पर्सनल लॉ आदि पर बात करते हैं -"आखिर क्या है अशरफिया राजनीति ? यह मुसलमानों के अभिजात्य उच्च जातियों की राजनीति है जो कि सिर्फ़ कुछ सांकेतिक और जज्बाती मुद्दों को जैसे कि बाबरी मस्जिद, उर्दू, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, पर्सनल लॉ इत्यादि को उठाती रही है। इन मुद्दों पर गोलबंदी करके और मुसलमानों की भीड़ दिखाकर मुसलमानों के अशराफ तबके और उनके संगठन जमीअत-ऐ

-उलेमा-ऐ-हिन्द, जमात-ऐ-इस्लामी, आल इण्डिया पर्सनल लॉ बोर्ड, मुस्लिम मजलिस-ऐ-मशावारात, पोपुलर फ्रंट ऑफ़ इण्डिया, इत्यादि अपना हित साधते रहे हैं और सरकार में अपनी जगह पक्की करते हैं।"[64]

प्रमुख विचारक खालिद अली अंसारी ने 'पसमांदा' समाज के विकास के लिए तीन मुख्य बातों की ओर ध्यान आकृष्ट कराया है - पहला, बहुलतावाद, इनका मानना है कि, "सांप्रदायिक दंगे भारत में दबे कुचले तबकों और शोषित जातियों की जनतान्त्रिक माँगों को दबाने का एक हथियार हैं। इसीलिए बाबरी मस्जिद, राम जन्मभूमि का विवाद, मंडल क्रांति को दबाने के लिए खड़ा किया गया।"[65] दूसरा लोकतंत्र, पसमांदा समाज में जब तक लोकतन्त्रीय प्रक्रिया नहीं पहुंचेगी, तब तक यह समाज आगे नहीं आ सकता। तीसरा- विकास का मॉडल, खालिद जी का मानना है कि पसमांदा समाज तभी विकास कर सकता है, जब इनके विकास के लिए आर्थिक परियोजनाएँ लागू किया जाए- "कुछ कारोबारों पर सस्ती दरों में ऋण/लोन उपलब्ध कराने से काम चलेगा, कुछ में पुनर्प्रशिक्षण की जरूरत होगी, कुछ में नई तकनीक प्रचलित करनी होगी, इत्यादि। इसके अलावा सामाजिक सुरक्षा की स्कीमों, कार्य स्थल में जम्हूरियत, कॉर्पोरेट डाईवर सिटी, कार्पोरेट सोशल रेस्पोंसिबिलिटी निजी क्षेत्र में आरक्षण, गवर्नेंस बगैरह, जैसे मुद्दों पर भी बहस करने की जरूरत है।"[66]

आज मुस्लिम समुदाय में अरजाल अथवा पसमांदा जाति के लोगों के साथ 'अशरफ' जाति के लोग 'अछूत' जैसा व्यवहार करते हैं। इस समाज के अन्दर ऐसी कोई व्यवस्था नहीं बनाई गई जिससे इनका जीवन बेहतर हो सके और समाज में इज्जत पूर्वक रह सकें। "मुस्लिम समाज का एक तबका लगातार पिछड़ने का शिकार है। उसके अन्दर ऐसी कोई चेतना जाग्रत नहीं हुई और न कोई ऐसी व्यवस्था बनी जिससे उस तबके को बराबरी का अवसर मिले। इस झूठे गरूर में कि हमारे समाज में जात-पात, आला अदना और छुआछूत जैसी बीमारी नहीं है, गैरसरकारी स्तर पर भी कोई प्रयास नहीं किया गया और न ही मजहबी सतह से इसलाह मुआशरा (समाज सुधार) के लिए कोई पहल की गई। असलियत छिपाने की इसी जेहनियत की वजह से मुस्लिम समाज की यह बीमारी अब ऐसा नासूर बन चुकी है कि इसका एक तबका जानलेवा दर्द से कराह रहा है।"[67]

इतिहास गवाह है कि जिस तरह हिन्दुओं में 'कुलीन' होते थे उसी प्रकार मुसलमानों में 'अशरफ'। अशरफ शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है- अभिजात। अभिजात के अंतर्गत सैयद, मुगल, पठान, शेख, मल्लिक की गिनती होती है। ये जातियाँ अपने को विदेशी मूल से जोड़ती हैं या हिन्दुओं की ऊँची जाति से धर्मांतरण होने से। एक बात और भी देखने को मिलती है कि ज्यादातर लोग मुस्लिम समाज में अपना ऊँचा स्थान बनाए रखने के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं और इसे अपना पैदाइशी अधिकार मानते हुए कुछ भी करने को तैयार रहते हैं। मुस्लिम समाज में उसूल और अमली ज़िन्दगी में फर्क का इतिहास बहुत ही पुराना रहा है। यहाँ पर नौवीं सदी की एक घटना को देख सकते हैं -"बुखारा के अमीर खालिद बिन अहमद जिहली ने एक बार मशहूर मुस्लिम धर्मशास्त्री अबु अब्दुल्लाह मोहम्मद उल-बुखारी (सन् 810-870) को कहा कि मेरे घर पर आकर मेरे बच्चों को पढ़ाइए। यह इसलिए कि अमीर नहीं चाहते थे कि उनके बच्चे जुलाहों (हाईक) और चमारों (इसकाफ) के साथ बैठकर पढ़ें। इमाम ने इनकार किया। उन्होंने कहा कि ऐसा करके वह परम्परा को नापाक नहीं कर सकते क्योंकि ज्ञान पैगम्बर की परम्पराओं पर आधारित है। अगर अमीर को जरूरत है तो वह अपने बच्चों को भेजें, जो दूसरे बच्चों के साथ ही पढ़ेंगे।"[68] इस बात को सुनकर अमीर बोला ऐसी बात है तो मैं अपने बच्चे को पढ़ने के लिए भेजता हूँ, लेकिन यह भी है कि जब तक मेरा बेटा पढ़ेगा तब तक मेरे बेटे के साथ कोई नीच जाति का बच्चा नहीं बैठेगा। अमीर के बच्चे पढ़ने तो गए मगर उन्हें स्कूल के दरवाजे पर ही इंतजार करना पड़ा। "अमीर के अहंकार ने उस बात की इजाज़त नहीं दी कि उनके बच्चे जुलाहों और चमारों के साथ बैठकर पढ़ें। लेकिन इमाम ने इसे कबूल नहीं किया। उन्होंने ने कहा कि उनका ज्ञान पैगम्बर की देन है, जो सबके लिए समान रूप से उपलब्ध है। यह किसी ख़ास आदमी के लिए नहीं है। इमाम ने अमीर के विचार को नहीं माना क्योंकि वह इस्लामी सिद्धांतों की लोकतांत्रिक भावना के खिलाफ़ था। नतीजा यह हुआ कि अमीर ने इमाम बुखारी को बुखारा से निकलवा दिया।"[69] इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि इस्लाम में ऊँच-नीच की भावना बहुत पहले से मौजूद थी। अली अनवर के शब्दों में -"मुस्लिम समाज में ऊँच-नीच का भेदभाव भारत के बाहर और भारत में मुस्लिम सल्तनत कायम होने के पहले शुरू हो चुका था। राजतंत्र ने शासन करने वालों का वर्ग पैदा कर दिया था। इस वर्ग के लोग अपने को ऊँचा या ऊँची खानदान वाला और आम मेहनतकशों, जुलाहों और चमारों को

नीच खानदान वाला मानने लगे थे। बेशक भारत में ऊँच-नीच के इस भेदभाव पर यहाँ की पुरानी वर्ण व्यवस्था और जाति-प्रथा का असर पड़ा।"[70]

भारतीय मुस्लिम समुदाय में सुधार के लिए सरकार द्वारा जो भी योजनाएँ चलाई जाती हैं, उसमें भी मुस्लिम समाज के प्रति उदासीनता बरती जाती है। "आमतौर पर मुसलमानों की यह शिकायत रही है कि उनके पिछड़ने का मुख्य कारण व्यवस्था की उपेक्षा है। कई मायनों में यह बात सही भी ठहरती है कि बिहार सहित देश की राजनीतिक व्यवस्था और उस व्यवस्था को चलाने वालों ने मुस्लिम समाज के प्रति उदासीनता बरती अथवा उपेक्षा की। जब कभी व्यवस्था ने मुसलमानों की ओर रुख किया तो यह दीखता है कि उसने मुसलमान आबादी को देश की मुख्यधारा में शामिल करने के लिए जो कुछ किया वह या तो एहसान या फिर भीख के रूप में।"[71] आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी मुस्लिम समुदाय के अंदर ऐसी कई एदारे हैं जो सीधे मुसलमानों द्वारा ही संचालित की जाती हैं। इस संचालन में निचले तबकों के प्रति कैसा रवैया संचालकों का रहता है इससे तो पूरी जनता ही वाकिफ़ है। संचालकों द्वारा निचले तबकों का जमकर शोषण किया जाता है। यह भी देखने को मिलता है कि संचालक ऊँच-नीच की भावना से कार्य करते हैं।

बिहार राज्य के सन्दर्भ में बात करें तो उर्दू अकादमी से लेकर मदरसा शिक्षा बोर्ड तक मुसलमानों से जुड़ी हुई कम-से-कम सात सरकारी संस्थाएँ हैं। इन संस्थाओं के अध्यक्ष को कैबिनेट अथवा राज्य मंत्री का दर्जा प्राप्त होता है। सबसे अहम बात तो यह है कि इन संस्थाओं के प्रधान मुसलमान ही होते हैं। इन संस्थाओं पर एक नजर दौड़ाएँ तो हमें यह देखने को मिलता है कि स्थापना वर्ष से लेकर आज तक मुस्लिम समुदाय के उच्च लोगों का ही कब्जा रहा है। यहाँ पर उन संस्थाओं की चर्चा कर लेना समीचीन होगा जिसके संचालन कर्ता अधिकतर अशरफ जाति के लोग हैं।

उर्दू अकादमी, उर्दू जुबान की तरक्की के लिए बिहार में उर्दू अकादमी का गठन राज्य सरकार द्वारा 9 मार्च 1972 को किया गया। इस संस्था को लागू करने का कुछ ध्येय था, जैसे - उर्दू पुस्तकों का प्रकाशन, मुशायरा तथा सेमिनार आयोजित कराना, हर माह पत्रिका निकलवाना आदि। इस संस्था को सलाना 10 लाख

से लेकर 25 लाख तक का अनुदान आता है। इस अकादमी का पदेन अध्यक्ष मुख्यमंत्री होता है लेकिन अल्पसंख्यक मामलों के मंत्री इसके कार्यकारी अध्यक्ष होते हैं। "अकादमी के गठन काल से लेकर अब तक इन पदों के लिए कुल 17 व्यक्ति मनोनीत किए जा चुके हैं जिनमें से बारह अशरफ (फारवर्ड) मुसलमान हैं। एक व्यक्ति अगर दो बार किसी पद के लिए मनोनीत हुआ तो हमने उसकी गिनती दो बार की है। गद्दी बिरादरी के एक व्यक्ति का दो बार मनोनयन हुआ। अंसारी और कलाल बिरादरी को एक-एक मौका मिला।"[72]

वक्फ बोर्ड, इसका गठन बिहार राज्य में 1948 में हुआ। इसमें 11 सदस्य होते हैं, जिन्हें राज्य सरकार तीन साल के लिए मनोनीत करती हैं। इन 11 सदस्यों की अनुशंसा पर ही इनमें से किसी एक को बोर्ड का अध्यक्ष बनाया जाता है। "इन वक्फों के पास अकूत अचल सम्पत्ति है। अगर इन वक्फों की देखरेख और संचालन ठीक से हो तो गरीब मुसलमानों के कल्याण के बहुत सारे काम किए जा सकते हैं। मगर ऐसा आज तक कभी नहीं हुआ। बोर्ड को दस-पंद्रह लाख सालाना सरकारी अनुदान मिलता है। बावजूद इसके यहाँ के कर्मचारियों को नियमित वेतन तक नहीं मिलता।"[73] इस बोर्ड में 1948 से लेकर कुल 22 अध्यक्ष हुए, जिसमें से 21 बार फारवर्ड मुसलमान ही मनोनीत हुए। सिर्फ एक बार निचली जाति का मुसलमान इस पद पर आसीन हुआ।

अल्पसंख्यक आयोग, इसकी स्थापना ख़ास तौर से 1991 में हुई। इस आयोग के अंतर्गत सभी धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यक आते हैं जैसे-मुस्लिम, सिख, ईसाई, बंगाली, बौद्ध, जैन आदि। "अध्यक्ष और इसके आठ सदस्यों का मनोनयन राज्य सरकार करती है। अध्यक्ष को कैबिनेट मंत्री का दर्जा हासिल है। क़ानूनी दर्जा मिलने के बाद प्रो.जाबिर हुसेन इसके पहले अध्यक्ष हुए। पहले वह इसके कार्यकारी अध्यक्ष थे। सुहैल अहमद खां इसके दूसरे अध्यक्ष हैं। आयोग का कार्यकाल तीन साल का होता है। हारून रशीद कम-से-कम दस साल तक इसके उपाध्यक्ष रह चुके हैं। अभी तक पिछड़ी जाति तथा दलित मुसलमानों के बीच से किसी व्यक्ति को इस आयोग का अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष नहीं बनाया गया।"[74]

उर्दू सलाहकार समिति, इसका गठन इसलिए किया गया ताकि उर्दू के बारे में राज्य सरकार को पूरी जानकारी मिले और उर्दू की स्थिति किस प्रकार है। इस समिति के अध्यक्ष और सदस्यों का मनोनयन राज्य सरकार करती है। इसका अध्यक्ष राज्यमंत्री के समकक्ष होता है। इस समिति का गठन 1981 में किया गया। तब से लेकर अब तक पांच अध्यक्ष चुने गए जिसमें तीन बार ऊँची जाति के मुसलमान रहे।

15 सूत्री समिति, केंद्र सरकार ने अल्पसंख्यकों के कल्याण के लिए इसका गठन 1985 में किया। लेकिन दुर्भाग्य यह है कि 2001 तक पांच कार्यकारी अध्यक्ष हुए और सभी फॉरवर्ड मुसलमान।

अल्पसंख्यक वित्त निगम, इसकी स्थापना मार्च 1984 में हुई। इस निगम का उद्देश्य रोजी-रोजगार के लिए कम ब्याज पर कर्ज मुहैया कराना। "निगम में एक अध्यक्ष का पद होता है जिसकी नियुक्ति राज्य सरकार करती है, जिसका दर्जा राज्य मंत्री का होता है। निगम में पहले एक सचिव का पद होता था, जिसे अब एम.डी. के पद में बदल दिया गया है। अभी तक तीन व्यक्ति इसके अध्यक्ष हो चुके हैं, जिसमें एक को दो टर्म मौका मिला है। इन तीनों में से दो फारवर्ड और एक पिछड़ी जाति के मुसलमान रहे।"[75]

मदरसा बोर्ड, बिहार राज्य में मदरसा शिक्षा बोर्ड का गठन 12 अप्रैल 1978 को किया गया। अध्यक्ष को मिलाकर कुल तेरह सदस्य होते हैं। इस बोर्ड में एक पद सचिव का भी होता है, जो प्रमुखत: शिक्षा सेवा के अधिकारी होते हैं। "मदरसा शिक्षा बोर्ड में से 1978 लेकर 1997 तक कुल नौ अध्यक्ष हो चुके हैं। इनमें से एक व्यक्ति को दो टर्म अध्यक्ष रहने का मौका मिला है। इनमें से नूरुल्लाह रहमानी एम.एल.सी. ऐसे खुश किस्मत हैं जिन्हें1978 से पूर्व भी लम्बे समय तक इस पद पर रहने का मौका मिला। 78 के बाद जो लोग अध्यक्ष हुए उनमें से दो व्यक्ति को छोड़ सभी अशराफ ही थे।"[76]

निष्कर्ष:

स्पष्टतः कहा जा सकता है कि आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी मुस्लिम समुदाय में कुछ लोग हाशिये की ज़िन्दगी जीते हैं। इनके हाशिये पर जाने का सबसे बड़ा कारण है- आर्थिक स्थिति का अच्छा न होना और

धर्मान्धता। सरकार द्वारा जो भी योजनाएँ चलाई जाती हैं, वह कुछ ही लोगों तक सीमित रह जाती हैं। निचले तबके के लोगों तक नहीं पहुँच पातीं। मुस्लिम समुदाय में 'पसमांदा समाज' के लोग हाशिये का जीवन अधिक जीते हैं। इनमें सामाजिक, राजनीतिक चेतना नहीं पहुँच पाती, दूसरा शिक्षा का भी अभाव पाया जाता है। यह समाज किसी तरह अपना पेट पालता है।

भारत एक लोकतान्त्रिक देश है, लेकिन पूरे देश में एक कौम का दूसरे कौम से मतभेद आज भी है। धर्म, मजहब को लेकर एक कौम दूसरे कौम से झगड़ती रहती है। आम तौर पर यह धारणा है कि मुस्लिम समुदाय में लोगों के बीच एकता अधिक है, लेकिन यह धारणा गलत है। सच्चाई ये है कि इस समुदाय में बहुत अधिक असमानताएँ व्याप्त हैं। अशरफ और अरजाल जाति के लोगों में बहुत ही मतभेद रहता है। मुस्लिम समुदाय में 'अरजाल' जाति के लोगों का जमकर शोषण किया जाता है। शोषित होने के कारण ये हाशिये पर जीवन यापन करते हैं।

सन्दर्भ

1. हरिकृष्ण रावत-उच्चतर समाजशास्त्र विश्वकोश, पृ. 282

2. नरेन्द्र सिंह-दलितों के रूपान्तरण की प्रक्रिया, पृ. 102

3. अरविन्द कुमार एवं कुसुम कुमार-समांतर कोश हिंदी थिसारस-सन्दर्भ खण्ड, पृ. 547

4. सं.कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय एवं मुकुन्दी लाल श्रीवास्तव-वृहत हिंदी कोश, पृ. 1358

5. देवेन्द्र चौबे-समकालीन कहानी का समाजशास्त्र, भूमिका, पृ. 3

6. सं. श्वेता उप्पल, रेखा अग्रवाल-भारतीय समाज, पृ. 95

7. वही, पृ. 98

8. के. एल. शर्मा-भारतीय समाज, पृ. 93

9. पी.सी. जैन-सामाजिक आन्दोलन का समाजशास्त्र, पृ. 81

10. के. एल. शर्मा-भारतीय समाज, पृ. 99

11. देवेन्द्र चौबे-समकालीन कहानी का समाजशास्त्र, पृ. 10

12. देवेन्द्र चौबे-समकालीन कहानी का समाजशास्त्र, पृ. 11

13. महाश्वेता देवी और निर्मल घोष-भारत में बंधुआ मजदूर, पृ. 56

14. देवेन्द्र चौबे-समकालीन कहानी का समाजशास्त्र, पृ. 9

15. देवेन्द्र चौबे-समकालीन कहानी का समाजशास्त्र, पृ. 9

16. के. एल. शर्मा-भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन, पृ. 194

17. वही, पृ. 194

18. वही, पृ. 195

19. सिमोन द बोउवार-स्त्री उपेक्षिता, पृ. 274

20. www.bbc.com/hindi/international

21.वही

22. न्युगीवा थ्योंगी-औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्ति, पृ. 108

23. वही, पृ. 108

24. वही, पृ. 112

25. रामविलास शर्मा-मार्क्स और पिछड़े हुए लोग, पृ. 86

26. नरेन्द्र सिंह-दलितों के रूपान्तरण की प्रक्रिया, पृ. 116

27. रघुनाथ राय-विश्व इतिहास के प्रसंग, पृ. 47

28. वही, पृ. 47

29. वही, पृ. 48

30. वही, पृ. 48

31. वही पृ. 48

32. रामशरण जोशी-मुख्यधारा की अवधारणा, हंस, फरवरी 1992, पृ. 33

33. मैनेजर पाण्डेय-क्या आपने 'वज्र सूची' का नाम सुना है, हंस, अगस्त, 1993, पृ. 17

34. देवेन्द्र चौबे-समकालीन कहानी का समाजशास्त्र, पृ. 43

35. श्यामाचरण दुबे-मानव और संस्कृति, पृ. 271

36. रामचन्द्र तिवारी-हिंदी का गद्य-साहित्य, पृ. 160

37. वही, पृ. 182

38. वही, पृ. 186

39. शानी-काला जल, पृ. 266

40. वही, पृ. 266

41. नामदेव-भारतीय मुसलमान:हिंदी उपन्यासों के आईने में, पृ. 83

42. शानी-काला जल, पृ. 48

43. वही, पृ. 48

44. रामचन्द्र तिवारी-हिंदी का गद्य-साहित्य-पृ. 190

45. वही, पृ. 244

46. अब्दुल बिस्मिल्लाह-झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृ. 30

47. सं. एम. फीरोज अहमद-वांङ्मय, अक्टूबर-दिसम्बर, पृ. 38

48. वही, पृ. 43

49. रामचन्द्र तिवारी-हिंदी का गद्य-साहित्य, पृ. 246

50. सं. एम. फीरोज अहमद-वांङ्मय, अक्टूबर-दिसम्बर, पृ. 49

51. रामचन्द्र तिवारी-हिंदी का गद्य-साहित्य. पृ. 269

52. मो. रफ़ीक चौहान-क्या बदलेगा मुस्लिम समाज ?,www.aftabfazi1.blogspot.in,25 अक्तूबर,

2011

53. सं. उमाशंकर चौधरी-हाशिये की वैचारिकी, पृ. 289

54. वही, पृ. 289

55. वही, पृ. 289

56. वही, पृ. 291

57. अली अनवर-मसावात की जंग, पसेमंजर:बिहार के पसमांदा मुसलमान, पृ. 43

58. वही, पृ. 44

59. वही, पृ. 46

60. वही, पृ. 48

61. वही, पृ. 51

62. वही, पृ. 57

63. वही, पृ. 64

64. खालिद अनीस अंसारी-पसमांदा राजनीति की रूपरेखा,www.khalidanisansari.blogspot.in,13 दिसंबर, 2010

65. वही, पृ. 2

66. वही, पृ. 3

67. वही, पृ. 3

68. अली अनवर-मसावत की जंग, पसेमंजर: बिहार के पसमांदा मुसलमान, पृ. 86

69. वही, पृ. 87

70. वही, पृ. 87

71. वही, पृ. 145

72. वही, पृ. 146

73. वही, पृ. 147

74. वही, पृ. 147

75. वही, पृ. 149

76. वही, पृ. 149-150

द्वितीय अध्याय

हिन्दी में मुस्लिम जीवन केन्द्रित कहानियों का कथ्य

भारतीय मुस्लिम समाज देश की आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा है। उसकी पारिवारिक, सामाजिक संरचना का प्रगतिशील होना आवश्यक है। भारत की जो आर्थिक व्यवस्था या कहें संरचना है, उसमें मुस्लिम समुदाय का बहुत बड़ा योगदान निहित है। उनकी दस्तकारी, कारखानदारी और कुटीर उद्योग-धंधे, देश के विकास में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मुस्लिम समाज में कुटीर उद्योग-धंधे बहुतायत में किए जाते हैं। प्रत्येक समाज की रीढ़ मध्यवर्ग होता है, उसी के इर्द-गिर्द समाज का विकास निहित रहता है। आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी मुस्लिम समाज की स्थिति में सुधार दिखाई नहीं पड़ता है, इसकी तह में जायें तो, "आज सवाल उठ सकता है कि अशिक्षा, बेकारी, पर्दा, पिछड़ापन, बहुत-सी कमियाँ भारतीय मुस्लिम समाज से पिछले पचास वर्षों में काफ़ी सीमा तक दूर हो चुकी हैं, तो औरत की स्थिति प्रश्न क्यों बनी हुई है ? इसका जवाब यह हो सकता है कि सियासी नेताओं ने अशिक्षित मौलवियों से हाथ मिला लिया है। बँटवारे के बाद बड़ी संख्या में पढ़ा-लिखा वर्ग पाकिस्तान गमन कर गया था, जिसके कारण मध्यवर्ग एकाएक भारतीय मुस्लिम समाज से गायब हो गया। उसकी खाली जगह को भरने का विकल्प न निम्न वर्ग हो सकता था, न उच्चवर्ग, जो केवल दो प्रतिशत भी नहीं था।"[1]

भारत-विभाजन के बाद मुस्लिम बौद्धिक वर्ग में अबुल कलाम आजाद, रफ़ी अहमद किदवई, डॉ. जाकिर हुसैन आदि थे जिनकी विरासत को आगे बढ़ाने वाला कोई नहीं था। मुस्लिम समुदाय के कुछ लोगों ने मौलवी वर्ग से सलाह लेकर समाज को बेहतर बनाने के प्रयत्न में जुटे। यह मौलवी वर्ग अवसर का लाभ उठाते हुए मुस्लिम कौम के प्रवक्ता बन बैठे। मुस्लिम समाज में मज़हब को ज़्यादा तवज्जो दी जाती है। एक बात और देखने को मिलती है, मौलवी वर्ग जो कहते हैं वही आम जनता करती है, आमतौर पर इनकी दृष्टि सामाजिक और सियासी मुद्दों पर स्पष्ट नहीं होती। बाबरी मस्जिद की घटना के बाद भारतीय मुसलमानों पर एक अलग ढंग

का प्रभाव दिखाई दिया, "मगर इस प्रक्रिया में एक और चीज जुड़ गई, वह थी अपनी पहचान के प्रति सजगता। उस पहचान की खोज ने जहाँ उन्हें दो कदम आगे चलाया, वहीं दो कदम पीछे धकेला। वे धर्म और धर्म को दिखाना एक जरूरी क्रिया के रूप में ले बैठे। इस तरह से जो मुसलमान परिवार धर्म और धर्म के अनुष्ठानों को घर तक सीमित रखता था, वह बाहर भी दिखाने लगा, जिसमें जुम्मे की सामूहिक नमाज़ पढ़ना उसका एक उदाहरण है।"[2]

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक तक आते-आते मुस्लिम समाज की स्थिति में कुछ सुधार दिखाई पड़ता है । औरतें बाहर निकलकर शिक्षा, नौकरी आदि चीजों में शिरकत करने लगीं, पुरुष भी रूढ़िगत मानसिकता से बाहर निकले। समाज में मुसलमानों की दिनोंदिन बदतर होती जा रही आर्थिक स्थिति के कारण हिन्दुओं एवं अन्य भारतीयों की तर्ज पर मुसलमानों में भी अपनी स्त्रियों को शिक्षित करने की बात सामने आने लगी। स्त्रियों के शिक्षित होते ही वे रोजगार के अवसरों की तलाश भी करने लगीं। कम पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ लेकिन हस्तकला और दस्तकारी इत्यादि के क्षेत्र में बेहतर करने लगीं, जिसके कारण स्त्रियाँ कढ़ाई-बुनाई, सिलाई इत्यादि क्षेत्रों में लघु उद्योगों के एक बड़े भाग को अपने नियंत्रण में लेने लगीं। घर में बैठकर काम करने वाली इन स्त्रियों के काम को बाज़ार में लाने का काम पुरुषों का था और पुरुषों की इच्छा और नियंत्रण के दायरे से निकलना इन लघु उद्योग वाली स्त्रियों के लिए भी असम्भव था। धर्म और शरियत के कानून की आड़ में एक ऐसा वर्ग सामने आया जो किसी भी तरह स्त्रियों पर अपना वर्चस्व कायम रखना चाहता था। लेकिन इस बदलाव से मुस्लिम समाज में रूढ़ि का दामन थामे बैठे मौलवियों में ख़लबली मची। मुस्लिम समाज में दो विचारधारा के लोग सामने आए, "पहला वह जो इस्लाम की प्राचीन परन्तु सही परम्परा अर्थात प्रगतिशील विचार, जो इस समाज में पहले से मौजूद था, उस पर चल पड़ा, जिसमें औरत को बराबरी का दर्जा दिया और इंसान समझा और दूसरा वह जो रूढ़िगत इस्लाम के पहले के जाहिल मूल्यों से जुड़ गया, जो सदा से औरत को दोयम दर्जा देता रहा था, अशिक्षित होने के कारण, अपने ऊपर भरोसा न होने के चलते मौलवियों से संग मिल औरतों को घर तक सीमित रखने के पक्ष में हो गया और उग्रता से यह तक कहने में नहीं झिझकता कि प्रगतिशील विचार रखने वाले मुसलमान वास्तव में मुसलमान ही नहीं हैं।"[3]

भारतीय मुस्लिम समाज के अंतर्विरोधों पर विचार करें डालें तो हम पायेंगे कि इस समाज के विकास की बाधा के बहुत से करक हैं। भारत एक लोकतान्त्रिक देश है। अपनी लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के फलस्वरूप समाज में हाशिए की जिन्दगी जो लोग जी रहे हैं, उनके लिए लोकतंत्र में बहुत से कार्य कागजों पर किये गए हैं । हाशिए से तात्पर्य- दलित, पिछड़ावर्ग, आदिवासी समाज, घरेलू नौकर, बंधुआ मजदूर, विवश लोग, आर्थिक तौर पर कमजोर, स्त्री-समाज आदि हैं। देखा जाए तो मुस्लिम समाज में जो लोग हाशिए पर जीवन-यापन कर रहे हैं, उन तक लोकतंत्र की ये कार्यवाइयाँ नहीं पहुँची हैं ,इस समूह की यथार्थ स्थिति अब भी हीनावस्था में है । मुस्लिम समाज की मौजूदा स्थिति पर नज़र दौड़ाने पर यह बात सामने आती है कि यह समाज आज भी सामन्ती सामाजिक मूल्यों में जकड़ा हुआ है। हीनता-बोध और दकियानूसी से भरे गिरोह वाली मानसिकता इनके ज़ेहन में कूट-कूटकर भरी दिखाई पड़ती है और आधुनिकता की चुनौती का सामना करने में सक्षम दिखाई नहीं देते। अब भी धर्म की जकड़न से हाशिये के समूहों की मुक्ति नहीं है। जब भी आधुनिक विचारधारा की बात की जाती है तो मौलवी वर्ग यह कहकर नजरअंदाज कर देते हैं कि यह विचारधारा हमारे इस्लाम के विरोध में हैं। अल्पसंख्यक समुदाय के प्रति बहुसंख्यक समाज का यह दावा रहता है कि अल्पसंख्यक समाज ख़ास तौर से मुस्लिम समाज एक ही मानसिकता से काम करता है और लोगों में एकता है, लेकिन यथार्थ इसके विपरीत है। अल्पसंख्यक समूहों में अशिक्षा ,निर्धनता और अन्धविश्वास के कारण ये लोग विकास की धारा से विच्छिन्न ही रह जाते हैं। जिसके कारण यह लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया में नहीं आ पाता है। मुस्लिम समाज में अभिजात वर्ग(अशरफ) और निम्न वर्ग (अरजाल) में बहुत अन्तराल है खास तौर से जीवन यापन, आर्थिक स्थिति और सामाजिक स्थिति के सन्दर्भ में। आज भी मुस्लिम समाज में निम्नजाति के लोगों की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थिति बहुत खराब है, जिसके कारण यह वर्ग हाशिये की ज़िन्दगी जी रहा है। आज भी इस वर्ग में गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, स्वास्थ्य, महिलाओं की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ है।

भारत में स्थिति यह है कि 'पसमांदा समाज' की यथार्थ दशा का विश्लेषण करने कोई वाला नहीं है या यह कह सकते हैं इसके दर्द को कोई समझना नहीं चाहता। इतिहास की तह में जाए तो हम पाते हैं कि जब भारत में इस्लामी हुकूमत कायम हुई तो कुछ लोग जबरन मुसलमान बनाए गए तो कुछ ने अपनी स्वेच्छा से

इस्लाम धर्म कबूल कर लिया। स्वेच्छा से इस्लाम धर्म कबूल करने वालों में हिन्दू धर्म की दलित पिछड़ी जातियाँ थीं, जिनके साथ इन्सान तो क्या जानवर जैसा सलूक किया जाता था। इन जातियों ने बेहतर स्थिति पाने के लिए इस्लाम को तो कबूल किया लेकिन इन्हें क्या मालूम था कि यहाँ भी उनको शोषित होना पड़ेगा।

धर्म परिवर्तित करने के बाद इनका मज़हब तो बदल गया परन्तु उनके पेशे में कोई बदलाव नहीं आया। उदाहरण के तौर पर हिन्दू जुलाहा अंसारी बनने के बाद भी कपड़े धोने का कार्य करता रहा, लोहार सैफी बनकर भी हथौड़ा पीटता रहा, हिन्दू धुनिया को मंसूरी बनने के बाद भी रुई के धंधे में लगा रहना पड़ा, इसी प्रकार तेली आदि जातियों का धर्म तो परिवर्तन हो गया परन्तु उनके स्वाभिमान, हैसियत में कोई परिवर्तन नहीं आया। इन्हीं जातियों को 'पसमांदा' और 'अरजाल' आदि नामों से जाना जाता है या पुकारा जाता है।

एक बात और देखने को मिलती है कि जब हिन्दू सवर्णों ने इस्लाम कबूल किया तो उन्होंने बादशाहों और अलिमों के सामने पहले ही शर्त पेश कर दी कि हम इस्लाम धर्म को कबूल तो करेंगे लेकिन हमारी आन-बान में कोई गिरावट नहीं होनी चाहिए। बादशाहों ने एक कूटनीति के तहत इनकों वचन दे दिया, क्योंकि उनको सबका समर्थन प्राप्त करना था। "बादशाह अकबर के सामने 1605 में तो कुछ ब्राह्मणों ने बाकायदा एक दरख्वास्त दी कि हम इस्लाम कबूल करने को तैयार हैं, बशर्ते हमें वहाँ शेख लिखने की इज़ाज़त दी जाए, बादशाह की तरफ़ से बाकायदा उनको ये इज़ाज़त दी भी गई। इस प्रकार हमारे यहाँ शेख-सैयद धर्म परिवर्तित सवर्ण हैं। इस प्रकार जो विशेषाधिकार इनको यहाँ हासिल थे, वही इनको इस्लाम में भी मिले और देखते ही देखते ये बादशाहों के सिपहसालार बन गए, जैसे यहाँ वेदवाक्य बोलते थे वैसे ही वहाँ जाकर फतवे देने लगे।"[4]

इस सच्चाई से भी मुँह नहीं मोड़ा जा सकता है कि पसमांदा मुसलामनों ने भारत की आज़ादी में भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था। जिसका उन्हें कोई प्रतिदान नहीं मिला या यह भी कह सकते हैं कि नहीं दिया गया। पसमांदा मुसलमानों ने मुस्लिम लीग का भी विरोध किया। उनका मानना था कि लीग जमींदारों और राजे-रजवाड़े की पार्टी है और यह पार्टी कहीं से भी पिछड़े मुसलमानों के हित की बात नहीं करती। लीग के खिलाफ़ मोमिन संगठन को खड़ा करके पसमांदा मुसलामनों ने जोरदार आंदोलन चलाया। अब्दुल कयूम

अंसारी इस तंजीम के बड़े नेता थे। उनका कहना था कि पसमांदा मुसलमान भारत के मूल निवासी ही हैं, न कि गोरी और गज़नवी की औलाद। हमें देश का बँटवारा मंज़ूर नहीं है।

आजकल पसमांदा मुसलमानों में अस्मिता के सवाल उठ रहे हैं। शायद उनको इस बात का एहसास हो गया है कि उनकी मौज़ूदा अपमानजनक स्थिति के लिए उनके समाज का वर्चस्ववादी तबका ही कसूरवार है। भारतीय समाज की बुनावट पर बारीकी तौर से नज़र दौड़ाएँ तो हम पाते हैं कि, "यह वर्चस्ववादी तबका कोई और नहीं बल्कि जातिवादी तबका है। यह तथाकथित ऊँची जात वाले तबके ने ईश्वर और अल्लाह के नाम पर अपनी सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक हैसियत बहुत ऊँची बना ली है। कहने की ज़रूरत नहीं कि यह ऊँची हैसियत समाज के बहुजन यानी तथाकथित नीची जाति की शोषण-उत्पीड़न व अरमानों की लाशों के ढेर से पायदान वहाँ तक पहुँची है, जहाँ वह आज हमें दिखलाई पड़ती है।"[5] वैसे देखा जाए तो वर्चस्ववादी सत्ता को मजबूत रूप से चुनौती बाबा साहेब अम्बेडकर ने दी और उसके बाद मंडल कमीशन ने। मंडल कमीशन का प्रभाव पिछड़े हिन्दुओं ही नहीं बल्कि 'पसमांदा मुस्लिम समाज' पर भी पड़ा, जिसने 'पसमांदा मुसलमानों' के दिमाग में एक चिंगारी भरने का काम किया।

"वर्चस्ववादी जातियाँ चाहे हिन्दू हों या मुस्लिम, दोनों का चरित्र कमोबेश एक जैसा ही रहता है। जिस प्रकार वर्चस्ववादी हिन्दू जातियाँ दलित-शोषित लोगों के घरों को जलाकर अपने जातिवादी वर्चस्व का परचम लहराती हैं, ठीक उसी प्रकार अशराफ मुसलमान भी अपनी जातीय श्रेष्ठता के लिए कमजोर वर्ग के मुसलमानों के घर जलाते हैं। वास्तव में यह घर जलाना कोई साधारण घटना नहीं होती है। इसके पीछे कमज़ोर वर्ग के अन्दर पैदा हो रही समानता की भावना को दफ़न करना होता है और उसे उनकी दयनीय यथास्थिति बनाए रखने के लिए विवश करना भी होता है।"[6] उदाहरण के लिए "6 दिसम्बर 2007 को जब पूरे देश में मुसलमान संगठन बाबरी मस्जिद के विध्वंस की वर्षगांठ पर शोक और आक्रोश व्यक्त कर रहे थे, बिहार के चम्पारण जिले के एक छोटे से गाँव रामपुर बैरिया में उसी रात मुसलमानों की वर्चस्वशाली जाति अशराफ ने अपने ही मज़हब की कमजोर जातियों के 6 घरों को आग लगाकर जला डाला। यह विवाद कुछ महीने पहले इबादत के हक़ को

लेकर तब शुरू हुआ जब गाँव की मस्जिद में नमाज़ के दौरान कुछ सैयद और पठान तबके के लोगों ने कोहनी मारकर अंसारी(बुनकर, जुलाहे) और मंसूरी (धुनिया) जैसी कमज़ोर बिरादरियों के लोगों को पीछे की कतारों में नमाज़ पढ़ने को कहा।"[7]

अस्मिता के संदर्भ में एक बात यह भी देखने को मिलती है कि अशरफ जाति के लोग राजनीतिक तौर पर दलित व पिछड़े अल्पसंख्यकों के पिछड़ने के कारणों को सामने नहीं लाते बल्कि ऐसे मुद्दे सामने लाते हैं जिनसे इनके वोट बैंक में वृद्धि हो सके। इस भावना के पीछे कहीं न कहीं असमानता की भावना भी छुपी रहती है। विचारक ईश कुमार गंगानिया के शब्दों में- "लेकिन मजे की बात यह है कि यह नेतृत्व सभी मुस्लिमों के लिए आरक्षण की बात करता है। कितनी अजीब बात है कि एक ओर अशराफ जमात अपने आपको श्रेष्ठ जताने का कोई मौका नहीं गँवाता लेकिन वहीं दूसरी ओर आरक्षण के नाम पर दलित व पिछड़े मुस्लिमों के साथ खड़े होने में इन्हें कोई परहेज नहीं है। दलित-पिछड़े मुस्लिमों के लिए जाति के आधार पर आरक्षण का सवाल एक प्रकार से मुस्लिम शीर्ष राजनीति व धार्मिक नेतृत्व के लिए गले की हड्डी जैसा बनकर रह गया है, जिसे न निगलते बनता है न उगलते।"[8] अब पसमांदा समाज सभी चीजों को समझ रहा है। वह अपने लिए एक अलग संगठन चाहता है जो उनके हित की बात करे।

मुस्लिम जीवन की समस्याओं को केंद्र में रखकर जिन रचनाकारों ने कहानियाँ लिखी हैं, उनका विवरण निम्नलिखित है- अब्दुल बिस्मिल्लाह, असगर वजाहत, इंतिजार हुसैन, अनवर सुहैल, शमोएल अहमद, नासिरा शर्मा, मंजूर एहतेशाम, मो. आरिफ, नीलाक्षी सिंह, कुर्रतुल ऐन हैदर, गीतांजलि श्री, इस्मत चुगताई, नसरीन बानो, बदीउज्ज्माँ, मेहरुनिस्सा परवेज, जाकिर अली 'रजनीश', फहीम आजमी, मुनीर अहमद, रशीज जहाँ, शानी, सज्जाद जहीर, हयातुल्ला अंसारी, हुस्न तबस्सुम निहाँ, एम.हनीफ मदार, जेब अख्तर, जकिया जुबैरी, निजाम शाह, शकील सिद्दकी, हसन जमाल, फहमीदा रियाज, जाबिर हुसेन, इकबाल रिजवी, अहमद निस्सार, शाजी जमां, शमीम उद्दीन अहमद, गुलजार, फजल इमाम मल्लिक, अलिफा रियात, वाहिद काजमी, महमूद अय्यूबी, हबीब कैफ़ी, शाहिद अख्तर, तबस्सुम फातिमा, नूर जहीर, अहमद निसार, जेबा रशीद, नीला

प्रसाद, अकील कैस, शकील, गजाल जैगम, एखलाक अहमद जई, सलाम बिन रज्ज्क, सआदत हसन मंटो, राही मासूम रजा, इब्राहीम शरीफ, लतीफ़ घोंघी, आलमशाह खान, रंजन जैदी, महरूदीन खां, विजय, रणेंद्र, हरिओम, अनुज एवं ऋषिकेश सुलभ आदि।

2.1 मुस्लिम जीवन पर आधारित कहानियों की क्रमवार सूची

मुस्लिम जीवन पर आधारित कहानियों की क्रमवार सूची इस प्रकार है-(सन् 2000 से 2010 तक)

1. सन् 2000 में प्रकाशित कहानियाँ -

तहारत(शकील), पर्सनल एकाउंट(फहमीदा रियाज़, अनु.हैदर जाफ़री सैयद), नुक्ताचीं है गमे-दिल(हसन जमाल)।

2. सन् 2001 में प्रकाशित कहानियाँ -

अलविदा बीसवीं सदी(शाजी जमा), कुलदीप नैयर और पीर साहब (गुलज़ार), खुला(हृषीकेश सुलभ), मिश्री की डली(शमोएल अहमद), एक बिन लिखी रज्मिया(इंतजार हुसैन), विरासत में मिली मुस्कराहट(फ़ज़ल इमाम मल्लिक), रात(शमीम उद्दीन अहमद), जिहाद(सरोज खान 'बतिश'), तमाशा तथा अन्य कहानियाँ (कहानी-संग्रह)(मंजूर एहतेशाम)।

3. सन् 2002 में प्रकाशित कहानियाँ -

चिराग तले(स्वामी वाहिद काज़मी), आरसी(जाबिर हुसैन), मीनार के परिदृश्य में(अलीफा रिफात (अनु.इन्द्रमणि उपाध्याय), कागज़ी बादाम(नासिरा शर्मा), वस्ताद जमूरा बदकही(असगर वजाहत)।

4. सन् 2003 में प्रकाशित कहानियाँ -

ज़ोहरा (मोहसिन खान), आतंक(महमूद अय्यूबी), पीरू हज्जाम उर्फ़ हजरत अली(अनवर सुहैल)

5. सन् 2004 में प्रकाशित कहानियाँ -

एल.ओ.सी.(गुलज़ार), अंधी सीढ़ियाँ(साजिद रशीद), तपती रेत(जेबा रशीद), नेक परवीन(गज़ाल ज़ैगम), उजबक(अकिल कैस), पतझड़ की आवाज(रज़ा जाफ़री), लैंडस्केप के घोड़े(मुशर्रफ आलम जौकी)।

6. सन् 2005 में प्रकाशित कहानियाँ -

लालटेन गंज(एखलाक अहमद जई), परिंदे के इन्तजार-सा कुछ (कहानी-संग्रह)(नीलाक्षी सिंह), अजान की आवाज (कहानी-संग्रह)(मेराज अहमद)।

7. सन् 2006 में प्रकाशित कहानियाँ -

एक मस्जिद समानांतर(नीला प्रसाद), शेर खां(विजय), चादर(सलाम बिन रज्ज़ाक) मियां(हरिओम), अनवर भाई नहीं रहे!(अनुज), ग्यारह सितम्बर के बाद(कहानी-संग्रह)(अनवर सुहैल), मैं हिन्दू हूँ (कहानी-संग्रह)(असगर वजाहत)।

8. सन् 2007 में प्रकाशित कहानियाँ -

मैनेजर जावेद हसन(इक़बाल रिज़वी), सत्यमेव जयते(मो.आरिफ), मार-मारकर(हबीब कैफ़ी), ज़िन्दगी(शाहिद अख्तर), रफ़ीक भाई को समझाइये(रणेंद्र), खबीस(अकील कैस)।

9. सन् 2008 में प्रकाशित कहानियाँ -

तुम चुनाव लड़ोगे!(एम.हनीफ मदार), मॉमु(हसन जमाल), पत्थर के बीच दूब(साबिर हुसैन), फूलों का बाड़ा (कहानी-संग्रह) (मो. आरिफ़)।

10. सन् 2009 में प्रकाशित कहानियाँ -

ट्राजिंट की ज़िन्दगी(नूर ज़हीर), जय श्री बाबर(हबीब कैफ़ी), चहल्लुम(कहानी-संग्रह)(अनवर सुहैल), छाँव की धूप(कहानी-संग्रह)(नसरीन बानो), धरती माँ का जख्म (कहानी-संग्रह) (नसरीन बानो), इक्कीस श्रेष्ठ कहानियाँ (शमोएल अहमद)।

11. सन् 2010 में प्रकाशित कहानियाँ -

चाँद अभी ढला नहीं(अहमद निसा), प्रतिनिधि कहानियाँ(गीतांजली श्री)।

मुस्लिम जीवन को केंद्र बनाकर लिखी गई कहानियों के कथ्य (सन् 2000 से 2010 तक) के विवेचन से पहले यह देख लेना शोध की दृष्टि से समीचीन होगा कि हिंदी कहानी के उद्भव से लेकर सन् 2000 तक वे कौन कहानीकार रहे हैं, जिनकी कहानियों के केंद्र में मुस्लिम जीवन रहा है।

2.2 हिन्दू कहानीकार

हिंदी साहित्य में कहानी विधा का उद्भव प्रमुख रूप से 1900 में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'इंदुमती' (किशोरीलाल गोस्वामी) से माना जाता है। बीसवीं सदी के प्रारम्भिक दो दशकों की कहानियाँ मनोरंजन परक, अनूदित, घटना-प्रधान, नीतिपरक हैं। मनोरंजन से यथार्थ के धरातल पर लाने का श्रेय मुंशी प्रेमचंद को है। इनकी कुछ कहानियों में मुस्लिम जीवन का चित्रण मिलता है। हिन्दुओं और मुस्लिमों के बीच जो दंगे हुए प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में बखूबी चित्रण किया है -"असहयोग आन्दोलन की समाप्ति के बाद 1924 में दिल्ली, गुलबर्गा, नागपुर, लखनऊ, शाहजहाँपुर, इलहाबाद, जबलपुर, और कोहट में, और उसके एक वर्ष बाद दिल्ली, कलकत्ता, इलहाबाद और अन्य स्थानों में सांप्रदायिक दंगे हुए। उसके बाद के वर्षों में भी छिटपुट रूप से दंगे होते रहे। प्रेमचंद इस मानवीय मूर्खता के भयंकर परिणामों से भलीभांति परिचित थे और अपनी कहानियों में उन्होंने इसका अंकन गहरी संवेदनशीलता के साथ किया।"[9] सन् 1924 में प्रकाशित उनकी

कहानी 'मुक्ति धन' में हिन्दू-मुस्लिम सद्भाव का चित्रण किया गया है। इसी ढब की कहानी -'मंदिर मस्जिद' भी है।

प्रेमचन्द की 'हिंसा परमो धर्म' कहानी साम्प्रदायिक दरिंदगी का पर्दाफाश करती है। इस कहानी का केन्द्रीय पात्र एक सीधा-साधा मुसलमान है, जो 'सेवाधर्म' में विश्वास करता है। हिन्दू हो या मुसलमान सबको एक समान समझता है। इस व्यवहार के कारण कट्टर मुसलमान उसको पीड़ा देते हैं। इसी प्रकार 'शुद्धि', 'जिहाद', 'क्षमा', 'न्याय', 'परीक्षा', 'मंत्र', 'ईदगाह' जैसी कहानियाँ मुस्लिम जीवन पर आधारित हैं।

औपनिवेशिक शासन की एक उल्लेखनीय घटना है, हिन्दू मुस्लिम सम्बन्धों में निरंतर विद्वेष की भावना को बढ़ावा देना। ब्रिटिश शासन का मूल मंत्र था-'फूट डालो और शासन करो'। सत्याग्रह आन्दोलन के समय हिन्दू-मुस्लिम में बहुत दंगा हुआ। 1922 ई. में चौरा-चौरी की घटना के बाद आन्दोलन के स्थगित कर देने से और भी दंगे भड़क गये। इन सब परिस्थितियों का लेखा-जोखा पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने अपनी कहानियों में समावेश किया है। 'दोजख नरक !', 'दिल्ली की बात', 'ईश्वर द्रोही', 'खुदा के सामने', 'खुदाराम', 'शाप', 'दोजख की आग' जैसी कहानियों में मुस्लिम जीवन की अभिव्यक्ति 'उग्र' जी ने किया है। 'ईश्वर द्रोही' शीर्षक कहानी में "इस विचार का प्रतिपादन किया गया है कि धर्म के नाम पर एक दूसरे की हत्या करने वाले न हिन्दू होते हैं, न मुसलमान ; वे शैतान होते हैं और शैतान ही उनका ईश्वर या खुदा होता है।"[10]

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' खास तौर से हिन्दू-मुस्लिम के सौहार्द के पक्ष में थे। मुस्लिम जीवन पर इनकी दो ही कहानियाँ मिलती हैं -'कर्तव्य पालन' और 'हिन्दुस्तानी'। 'कर्तव्य पालन' कहानी में हिन्दू-मुस्लिम एकता का अंकन किया गया है। 'हिन्दुस्तानी' भी इसी तरह की कहानी है।

प्रगतिवादी दृष्टि से कहानियाँ लिखने वाले यशपाल ने भी अपनी कहानियों में मुस्लिम पात्रों को जगह दी है। प्रमुख रूप से 'परदा', 'खुदा और खुदा की लड़ाई', 'लखनऊ वाले', 'मंगला' ऐसी कहानियाँ हैं जो मुस्लिम जीवन को केंद्र में रखकर लिखी गई हैं। इन कहानियों में कहीं हिन्दू-मुसलमानों में दंगा, मुस्लिम समाज में व्याप्त अशिक्षा, बेरोजगारी अथवा रूढ़िवादिता का चित्रण किया गया है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने भी अपनी कहानियों में मुस्लिम जीवन की समस्याओं को स्थान दिया है। 'काकड़ों का तेली' कहानी हिन्दू-मुस्लिम सद्भाव पर आधारित है।

सौनरेक्सा की कहानियों में सिर्फ़ हिन्दू स्त्रियों की व्यथा ही नहीं मिलती, बल्कि मुस्लिम स्त्रियों की व्यथा भी मिलती है। मुस्लिम समाज में पर्दे की आड़ में रहने वाली स्त्रियों का जमकर शोषण किया जाता है। इनकी चर्चित कहानी है 'अकीला'। यह कहानी विवाहित मुसलमान स्त्री पर आधारित है। जिसका पति परदेश रहता है। जिसके कारण अकीला को बहुत सारी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। 'ममता' कहानी में मुस्लिम स्त्री की पीड़ा को उकेरा गया है। इसी ढब की कहानियाँ 'ज़िन्दगी की माँग', 'हिरनी' भी हैं।

कथ्य की दृष्टि से विष्णु प्रभाकर की कहानियाँ अद्वितीय हैं। जो हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों को उजागर करती हैं। 'अंत भला तो सब भला', 'असम्भव', 'आज होली है', 'काफिर', 'उसने मुझे भाई कहा था', 'फूल और कांटे', 'परदेश' आदि ऐसी कहानियाँ हैं, जो मुस्लिम जीवन को केंद्र में रखकर लिखी गई हैं। 'काफिर' और 'उसने मुझे भाई कहा था' कहानी में प्रमुख रूप से धार्मिक कट्टरपन को उद्घाटित किया गया है। 'एक पिता की संतान', 'रहमान का बेटा', 'अधूरी कहानी', 'तांगेवाला' 'उस दिन', 'देशद्रोही कौन', 'अगम अथाह' जैसी कहानियों का कथ्य मुस्लिम परिवेश है।

1940 ई. के आस-पास कहानी के क्षेत्र में पदार्पण करने वाले द्विजेन्द्र नाथ मिश्र 'निर्गुण' ने मुस्लिम परिवेश को केंद्र में रखकर कहानियाँ लिखी हैं। 'एक सवाल' और 'रावण' खास तौर से मुस्लिम विमर्श की कहानियाँ हैं। 'एक सवाल' कहानी में आज़ादी के समय मुस्लिमों में बलिदान की भावना का आना, देश भक्ति का जुनून आदि कर्तव्यों का चित्रण है।

1946-1948 का समय भारत में साम्प्रदायिक उन्माद का समय था। इस समय हिन्दू और मुसलमान जमकर लड़े। भारी मात्रा में दंगे हुए। 'निर्गुण' जी ने तत्कालीन समाज में व्याप्त संघर्षों को अपनी कहानियों में समेटकर समाज की सच्चाइयों को सामने रखा। प्रमुख रूप से 'शैतान', 'समांतर रेखाएँ' कहानियाँ साम्प्रदायिक उन्माद पर आधारित हैं। जिनमें मुस्लिम जीवन की झाँकी मिलती है।

अज्ञेय ने भी अपनी कहानियों में मुस्लिम जीवन की घटनाओं का समावेश किया है। इनकी 'लेटर बाक्स', 'शरणदाता', 'मुस्लिम-मुस्लिम भाई-भाई', 'रमन्ते तत्र देवता', 'बदला' कहानियाँ हिन्दू-मुस्लिम दंगों की शिनाख्त में लिखी गई हैं। 'बदला' कहानी में इस बात का उल्लेख किया गया है कि मनुष्य दंगे में सब कुछ खोकर भी अपने मानवीय विवेक की रक्षा कैसे करता है, इसका सटीक ब्यौरा यह कहानी प्रस्तुत करती है। इस कहानी में एक बूढ़े व्यक्ति का दंगे में सब कुछ लुट जाता है, लेकिन वह दूसरे मजहब के लोगों की सुरक्षा करना अपना कर्तव्य समझता है, "हर आने-जाने वाली गाड़ी में वह दिल्ली के लोगों को अलीगढ़ पहुंचाता है और अलीगढ़ के लोगों को दिल्ली। उसके अपने साथ शेखपूरे में जो कुछ गुजरा है उसका सबसे बड़ा बदला यही हो सकता है कि और किसी के साथ वह कुछ न हो। औरत का अपमान सिर्फ़ हिन्दू और मुसलमान के बीच का सवाल नहीं है। वह इन्सान की माँ की बेइज्जती है और चूँकि उसके अंदर की इंसानियत इस सबके बावजूद मरी नहीं है, वह जुनून की हद तक जाकर वह सब करता है जो उसके वश में है।"[11]

प्रेमचन्द और यशपाल के बाद मुस्लिम पात्रों को केंन्द्र में रखकर कहानियाँ लिखने में अमृतलाल नागर का नाम अग्रणी है। 'मोती की सात चलनियां', 'शकीला की माँ', 'एक दिल हजार', 'दास्ताँ', 'सुखी नदियाँ' आदि कहानियाँ मुस्लिम समाज की विसंगतियों को उद्घाटित करती हैं।

रांगेय राघव की भी कुछ कहानियाँ मुस्लिम जीवन पर आधारित हैं। 'मृगतृष्णा' कहानी में मुसलमान द्वारा मुसलमान का और हिन्दू द्वारा हिन्दू व्यक्ति के शोषण का चित्रण है। देश विभाजन की विभीषिका को ज़ेहन में रखकर कृष्णा सोबती जी ने भी बहुत ही मार्मिक कहानियाँ लिखी हैं। 'सिक्का बदल गया' कहानी खास तौर से भारत-विभाजन पर आधारित है। इस कहानी में विभाजन रेखा के दोनों तरफ के लोगों की पीड़ा का अंकन किया गया है। "मजहबी जुनून और सियासी महत्वाकांक्षा ने लोगों की मानवीय संवेदना को कुचल दिया था। इसके बावजूद मानवीय सम्वेदना कहीं न कहीं कोनों अंतरों में जीवित बच गई थी। कृष्णा सोबती ने उसी जीवित बच रही सम्वेदना को इन कहानियों में सम्प्रेषित किया है। 'सिक्का बदल गया' में यदि वतन को छोड़ने की पीड़ा अभिव्यक्ति हुई है तो 'मेरी माँ कहाँ है' में मजहबी सियासी जुनून में मनुष्य के बहसी हो जाने और

उसके बीच मानवीय संवेदना के छटपटाने का अंकन किया गया है।"[12] नई कहानी आंदोलन में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले मोहन राकेश ने भी मुस्लिम-जीवन से सम्बन्धित कहानियाँ लिखी हैं -'मलबों का मालिक', 'कादिर मियाँ की भौजी', 'जाख्ते की कार्यवाही', 'सोलह छतों का घर', 'धूल उड़ जाती है', 'मुरदों की दुनिया' आदि । देश विभाजन की विभीषिका का चित्रण गिरिश अस्थाना ने अपनी कुछ कहानियों में किया है -'धर्म के नाम पर', 'अग्नि परीक्षा' । इन कहानियों में समकालीन यथार्थ की पूरी झाँकी मिलती है । शिवप्रसाद सिंह की कहानी 'आखिरी बात' हिन्दू-मुस्लिम के टकराहट को सम्प्रेषित करती है।

शैलेश मटियानी की कहानियाँ खास तौर से कुमायूँ अंचल पर केन्द्रित हैं । लेकिन 'हक़- हलाल' कहानी मुस्लिम जीवन पर आधारित है । भीष्म साहनी की कहानी 'अमृतसर आ गया है' देश विभाजन की त्रासदी पर आधारित है। इसमें देश विभाजन के दौरान मुस्लिमों की स्थितियों पर दृष्टिपात किया गया है- "देश विभाजन के समय पाकिस्तान से हिन्दुस्तान की ओर आने वाली ट्रेनों की दहशत, अविश्वास और अनिश्चय से भरे यात्रियों की मानसिकता की कहानी है। इस मानसिकता में आदमी कितना हैवान और कमीना बन जाता है, इसी का चित्रण करना कहानीकार का उद्देश्य है। लेखक ने सामूहिक मानस का ऐसा भयावह चित्र प्रस्तुत किया है कि पाठक की चेतना पर भय का एक वितान-सा तन जाता है। हल्का सूक्ष्म व्यंग्य कहानी के प्रभाव को और भी तीव्र बनाता है।"[13]

महीप सिंह की 'पहले जैसे दिन' कहानी प्रमुख रूप से हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध को रेखांकित करती है। रामदरश मिश्र की कहानी 'चेक' बाबरी मस्जिद की घटना पर आधारित है। इस कहानी का केन्द्रीय बिंदु यह है कि हिन्दू मुहल्लों में मुसलमान अपने आपको कितना असुरक्षित महसूस कर रहे थे।

समकालीन कहानीकार रवीन्द्र कालिया की कुछ कहानियों में मुस्लिम जीवन की अभिव्यक्ति मिलती है- 'नया कुरता' 'टाट के किवाड़ों वाले घर' और 'सुन्दरी' । चन्द्रकान्ता की कहानियाँ 'नवशीन मुबारक', 'काली बर्फ़', 'शरणागत दीनार्त', 'बदलते हालात में', 'फाँस', 'पार्वती की आवाज' ख़ास तौर से सांप्रदायिक सोच को उद्घाटित करती हैं । बदलते हालात कहानी में "मुस्लिम आतंकवादियों के अत्याचार के कारण

कश्मीरी पंडितों के शरणार्थी-जीवन व्यतीत करने की यातना और वहाँ से पलायन कर भारत या विदेशों में बसने का चित्रण किया गया है।"[14]

चर्चित कहानीकार स्वयं प्रकाश ने भी अपनी कहानियों में मुस्लिम पात्रों का चित्रण किया है। 'रशीद का पजामा' शीर्षक कहानी में बहुसंख्यक हिन्दुओं द्वारा मुसलमानों के प्रति घिनौने व्यवहार का चित्रण किया गया है। "इस कहानी में छात्रों की एक टोली नैनीताल में आयोजित एक कैम्प में जाती है, जहाँ बहुसंख्यक हिन्दू लड़के रशीद नाम के एक निर्धन परिवार के प्रतिभाशाली और हरफनमौला लड़के के विरोधी हो जाते हैं और उससे बोलना-बतियाना बंद कर देते हैं। इतना ही नहीं, वे उसे एक असुविधाजनक स्थिति में डालकर 'कटुआ' कहकर उसका अपमान करते हैं।"[15] 'हमला' कहानी में विभाजन के बाद भारत में रह रहे मुसलमानों की दयनीय स्थिति का चित्रण है। 'पार्टीशन' कहानी हिन्दुओं और मुसलमानों के वैचारिक संघर्ष को उकेरती है। इस कहानी में साम्प्रदायिकता के कारण हुए विस्थापन की समस्या को भी चित्रित किया गया है। विस्थापन केवल आर्थिक कारण से ही नहीं होता, बल्कि राजनीतिक कारणों से भी होता है। राजनीति का रुख़ जब साम्प्रदायिक हो जाता है तो अक्सर बड़े पैमाने पर विस्थापन का कारण बनती है। साम्प्रदायिक आधार ही था जब भारत विभाजन ने दुनिया के इतिहास में सबसे बड़े विस्थापन को जन्म दिया था। विभाजन के बाद भी वोट बैंक बनाने के लिए जनता को क्षेत्र, धर्म, भाषा और जाति के आधार पर बाँटने का प्रयास किया गया। स्वयं प्रकाश की यह कहानी इस पूरी परिघटना को पाठक के सामने रखती है।

कहानीकार विजय की अनेक कहानियाँ साम्प्रदायिक उन्माद में आम-आदमी की पीड़ा को उद्घाटित करती हैं। 'टूटे दरवाजे का घर' शीर्षक कहानी हिन्दू-मुस्लिम दंगों पर आधारित है। इस कहानी में अधिकतर पात्र मुस्लिम हैं। नवें दशक में कहानी लेखन में पदार्पण करने वाले जयनंदन ने अपनी कहानी 'छठ तलैया' में मुस्लिम-जीवन की विडम्बनाओं का चित्रण किया है। 'मिट्ठू मियाँ का राम-राम' हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द के पक्ष को उजागर करती है। 'मकतल' गाँव की एक मुस्लिम बुढ़िया का चरित्र पेश करती है। 'पाकस्तानी एजेंट' में "हर एक मुसलमान को पाकिस्तानी ऐजेंट मानने वाले कट्टरपंथी हिन्दुओं की मानसिक संकीर्णता का चित्रण

किया गया है। इस कहानी में लेखक का गैर साम्प्रदायिक दृष्टिकोण सामने आता है। इसमें सांप्रदायिक दृष्टि की घिनौनी क्रूरता का दृश्य प्रस्तुत किया गया है।"[16] शरद सिंह की कहानी 'मेहरबानू' मुस्लिम जीवन को केंद्र में रखकर लिखी गई है।

भगवानदास मोरवाल ने मुस्लिम पात्रों को केंद्र में रखकर बहुत सारी कहानियाँ लिखी हैं। इनकी 'अप्रवासी', 'पहली हत्या' आदि कहनियाँ सांप्रदायिक मनोभाव से जुड़ी कहानियाँ हैं। 'लेकिन' कहानी में इस विचार का प्रतिपादन किया गया है कि औरत चाहे किसी भी मजहब, समाज की हो उसे पति का अत्याचार सहना पड़ता है। यह कहानी स्त्री-विमर्श को उजागर करती है। इनकी कहानियों के बारे में नित्यानंद तिवारी ने इस प्रकार टिप्पणी की है -"इनकी ज्यादातर कहानियों के मुख्य पात्र मुसलमान यानी मेव हैं, लेकिन इस बात पर ध्यान नहीं जाता। सदियों से दोनों धर्मावलम्बियों के साथ-साथ रहने, एक ही तरह के पेड़ पौधे, नदी-पर्वत, मेले, व्रत त्योहार, रीति-रिवाज और भाषा बोली ने उन्हें ऐसी लय दे दी है, जो धर्म का अतिक्रमण कर मनुष्य भाव के साथ उन्हें धारण करने में सर्वथा समर्थ है। मोरवाल की सृजन चेतना में वह लय सहज और गहरी है। ...जीवन के उन पहलुओं और स्रोतों को देख लेना जहाँ भाषा, धर्म, जाति के भेद गल जाते हैं और स्थानीय लोकाचार, भिन्न जीवन-परम्परा बना लेते हैं, साहित्य-रचना की एक आवश्यक शर्त है।"[17]

2.3 मुस्लिम कहानीकार

कहानी विधा के आरम्भ से ही मुस्लिम कहानीकारों की कहानियों में मुस्लिम-जीवन की अभिव्यक्ति मिलती है। रशीद जहाँ ने अपनी कहानियों का कथ्य खास तौर से मुस्लिम स्त्री-पीड़ा, स्त्री शोषण बनाया है। यह स्त्री होने के साथ मार्क्सवादी विचारधारा से भी जुड़ी थीं। इनके लेखन के ऊपर मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव देखा जा सकता है। 'अंगारे'(1932) कहानी- संग्रह में संकलित कहानी 'दिल्ली की सैर' चर्चित कहानी है। इस कहानी में पुरुषों के रवैये और पति के उपेक्षापूर्ण व्यवहार की आलोचना की गई है। सन्1932-1952

के बीच लगभग इनकी 30 कहानियाँ प्रकाशित हुईं। 'अंधे की लाठी', 'इफ्तारी', 'आसिफ़ जहाँ की बहू', 'इंसाफ़', 'चोर', 'छद्दा की माँ', 'बेजबान', 'मर्द व औरत', 'मुजरिम कौन', 'वह जल गई', 'सलमा', 'सास और बहू', 'सिफर आयी' श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। "रशीद जहाँ उर्दू की पहली कहानीकार हैं जिन्होंने नारी की स्वतंत्रता का प्रश्न उठाया है। वह पहली कलमकार हैं जिन्होंने एक बाग़ी दिलो-दिमाग रखने वाली औरत की तसवीर पेश की है। ...जिसकी आत्मा और संघर्ष आखिरदम तक शिकस्त मानने को तैयार नहीं। उनकी कहानियों ने पर्दे में रहने वाली औरत को पर्दे के बाहर लाकर खड़ा कर दिया है ताकि इस समाज में औरत पर होते हुए अत्याचार की असली सूरत दिखाई दे। औरत की मानसिक हीनता, पराजय और बेबसी के एहसास को उन्होंने हर कहानी में प्रस्तुत किया है।"[18]

रशीद जहाँ की कहानियों में पहली बार पितृ-सत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह का बिम्ब दिखाई पड़ता है। 'मर्द और औरत', 'इफ्तारी', 'आसिफ़ जहाँ की बहू', 'सास और बहू', 'बेजबान', 'इस्तिखारा', 'वह जल गई', 'छद्दा की माँ' जैसी कहानियों का कथ्य विशेष रूप से मुस्लिम मध्यवर्ग की स्त्रियों का जीवन-संघर्ष है। "मुस्लिम परिवारों की विश्वसनीय छवियाँ उभारते हुए उन्होंने इन परिवारों में परम्परा से आधुनिकता के तेज हो रहे संघर्ष पर विशेष ध्यान दिया है। वे आधुनिकता, वैज्ञानिक विवेक तथा प्रतिरोध के पक्ष में खड़ी होती हैं।"[19] 'इफ्तारी' शीर्षक कहानी में झूठी धार्मिकता की पोल खोलती नसीमा धरती पर बनाए गए 'दोजखों' को मिटाने का प्रयत्न करती हुई हार जाती है। 'इस्तिखारा' कहानी में प्रसव-पीड़ा से एक स्त्री इसलिए मर जाती है कि पति धार्मिक रूढ़ियों में पड़कर डॉक्टर को नहीं बुलाता। 'वह' कहानी ख़ास तौर से वेश्या जीवन पर आधारित है। बाज़ार जीवन से ठुकराई हुई या कहें धोखा खाई हुई, यौन रोग से ग्रस्त एक बदसूरत वेश्या की वेदना और प्रतिरोध की कहानी है। रशीद जहाँ ने इस कहानी में वेश्या के प्रति जो वेदना प्रकट की है, आगे चलकर मंटो की कहानियों में परिलक्षित होती है। इनकी कहानियों के कथ्य पर शकील सिद्दकी ने इस प्रकार टिप्पणी की है -"रशीद जहाँ का छोटा सा कथा संसार विविधता से भरा हुआ है, जो उनकी वेदना और दृष्टि के विस्तार के साथ ही इस तथ्य को भी रेखांकित करता है कि उनके भीतर का जागरूक

प्रतिबद्ध रचनाकार किस गहरे रचनात्मक आवेग से अपने समय के तकरीबन सभी चुभने वाले सवालों से जुड़ा रहा था। अवश्य ही स्त्री उनकी चिंता के केंद्र में थी।"[20]

इस्मत चुग़ताई साहित्य लेखन के क्षेत्र में चौथे दशक के अंत में आईं। 'कलियाँ', 'एक बात', 'दो हाथ', 'चिड़ी की दुक्की', 'शैतान' आदि उनकी उल्लेखनीय कहानियाँ हैं। इनकी कहानियों का विषय प्रमुख रूप से मुस्लिम समाज में व्याप्त स्त्री पीड़ा, बेबसी है। रोहिणी अग्रवाल के शब्दों में -"पर्दे के उस पार की दबी-ढकी-घुटी ज़िन्दगी की बेबसी और धड़कनों को बखानने और सुनने का वरदान है, जिसके चलते पोशीदा औरताना सच्चाइयों पर से परदा उठाकर वे मर्दों की दुनिया में रक्कासा से अलग इंसानी पहचान के साथ दाखिल होती औरत का इस्तकबाल कर सकीं।"[21] ख़ासकर 'तिल', 'गेंद', 'लिहाफ़', 'भूल-भूलैया', 'दोज़ख' जैसी कहानियों से इस्मत चुग़ताई कहानी के क्षेत्र में चर्चित हुईं। इनका लेखन स्त्री विमर्श को उभारने में हद तक सफल रहा। इनकी कहानियों में आदमी द्वारा आदमी पर होने वाले जुल्म, समाज के यथार्थ की गहरी पकड़, व्यंग्यात्मक लहजा, चरित्रों का स्वाभाविक विकास, शब्दों का सटीक प्रयोग आदि को देखा जा सकता है।

मुस्लिम जीवन पर केन्द्रित कहानी 'बिछछे फूफी' परिवार में नजायज सम्बन्धों को उद्घाटित करती है- "फूफी बादशाही हमेशा सफ़ेद कपड़े पहना करती थीं। जिस दिन फूफ़ा मंसूर अली ने मेहतरानी के साथ कुबैलें करनी शुरू कीं फूफी ने बट्टे से सारी चूड़ियाँ छनाछन तोड़ डालीं। रंगा हुआ दोपट्टा उतार दिया, उस दिन से वह उन्हें मरहूम कहा करतीं ...।"[22] किसी भी परिवार में सम्बन्ध तब खराब होते हैं, जब कोई व्यक्ति गलत कार्य में रुचि लेने लगता है -"तीन भाई थे मगर तीनों से लड़ाई हो चुकी थी और वह गुस्सा होती तो तीनों की धज्जियाँ बिखेर देतीं। बड़े भाई अल्ला वाले थे उन्हें हिकास से फ़कीर और भिकमंगा कहतीं। हमारे अब्बा गौरमेंट सर्विस में थे उन्हें गद्दार और अंग्रेजों का गुलाम कहतीं। क्योंकि मुग़ल शाही अंग्रेजों ने खत्म कर डाली थी वरना आज मरहूम पतली दाल खाने वाले जुलाहे यानी मेरे फूफा के बजाय लाल किले में किसी मुल्क के शहंशाह की मलका बनी बैठी होती। तीसरे यानी बड़े चचा दस नम्बर के बदमाशों में थे और सिपाही डरता मजिस्ट्रेट भाई के घर उनकी हाजिरी लेने आया करता था। उन्होंने कई क़त्ल किए थे। डाके डाले थे।"[23] इस परिवार में फूफी

ऐसी स्त्री थीं, जो सत्य की राह पर चलती थीं। पारिवारिक उलझनों को भी इस कहानी में रेखांकित किया गया है। कहानी का एक प्रसंग है -"हाँ-हाँ बुला अपनी अम्मा को आ जाय ख़म ठोंक कर अरे उल्लू न बना दूँ तो मिरज़ा करीम बेग की औलाद नहीं बाप का नुत्फ़ा है तो बुला-बुला मालज़ादी को ...।"[24]

इस कहानी में बिछ्छो फूफी के माध्यम से तत्कालीन समय में जमाने की चाल-चलन, मर्द की अय्यासी, औरत का शोषण, कुंठा, असंतोष आदि का अंकन किया गया है। कहानी में गुस्सैल फूफी के अन्दर जब औरत जागती है तो कुछ अलग ही रूप देखने को मिलता है, कहानी का एक प्रसंग है -"या अल्लाह या अल्लाह ...मेरी उम्र मेरे भाई को दे दे।" "या मौला ...अपने रसूल का सदका ..।"[25]

इस्मत चुग़ताई की कहानियों में 'लिहाफ़' और 'चौथी का जोड़ा' को अश्लीलता से जोड़ा जाता है, परन्तु ऐसा है नहीं, यथार्थ यह है कि "समाज की अधकचरी बीमार ज़ेहनियत का फनकाराना इजहार मिलता है। जिसके कारण जिन्स (सेक्स) की पेचीदगी और तरक्कीपसंद ज़ेहन की मुश्किल को इस्मत ने अपने मासूम और बेबाक अंदाज से न केवल पापुलर किया बल्कि आसान भी कर दिया।"[26]

मुस्लिम समुदाय में शोषित स्त्रियों की पूरी पड़ताल इस्मत चुग़ताई की कहानियों में परिलक्षित होता है। रोहिणी अग्रवाल के शब्दों में -"इस्मत चुग़ताई कहानी में घुसपैठ कर अपनी पात्र के हाथ में विद्रोह का झंडा नहीं थमातीं। न ही उसकी पैरवी करने के लिए तजुर्बेकार वकील की तरह कटखनीं होती हैं। वे सिर्फ़ घर दालान में रोज़-रोज़ घटने वाली चिर-परिचित घटनावलियाँ सादगी के साथ प्रस्तुत करती हैं।"[27]

सआदत हसन मंटो की कहानियों का कथ्य प्रमुखत: विभाजन की त्रासदी पर आधारित है। लेकिन कुछ कहानियाँ मुस्लिम परिवेश पर भी केन्द्रित हैं। जैसे-'नंगी आवाजें', 'गुरुमुख सिंह की वसीयत', 'शरीफन', 'खोल दो' आदि।

शानी हिंदी के महत्वपूर्ण कथाकार हैं। जिन्होंने हिंदी कहानियों के माध्यम से मुस्लिम विमर्श को उद्घाटित किया। शानी की ख्याति प्रमुख रूप से 'काला जल' उपन्यास से है। लेकिन उन्होंने कई चर्चित

कहानियाँ भी लिखी हैं। जिसमें मुस्लिम जीवन का नग्न चेहरा दिखाई पड़ता है। शानी की कहानियों का कथ्य ख़ास तौर से मध्यवर्गीय अथवा निम्नवर्गीय जीवन की जटिलताओं पर आधारित है। इनका कहानी-संग्रह 'सब एक जगह' की कहानियां मुस्लिम समाज में व्याप्त यातना, भय, शोषण, संशय, आदमी का असली चेहरा, स्त्री व्यथा आदि को उजागर या कहें सम्प्रेषित करती हैं। कहानी का एक प्रसंग है -"हम तीनों बच्चों का एक यातनामय संसार था, जिसमें हमारे अब्बा कभी नहीं आते थे और कभी आते तो भी तो सिर्फ़ दहलीज़ तक। मैं ज्यादा सहमा हुआ रहता था। हर पल चौकन्ना, कुछ न कुछ सूँघता और टटोलता हुआ जैसे किसी ना मालूम सी तलाश में रत होऊं।"[28] उनकी कहानी 'आईना' में पिता और पुत्र की दुखद वेदना का चित्रण किया गया है। पिता अपने बेटे को बेहतर ज़िन्दगी देना चाहता है। परन्तु आर्थिक स्थिति सही न होने की वजह से विफल हो जाता है। 'जली हुई रस्सी' कहानी एक नौकरीपेशा आदमी के अन्दर कुटिलताओं को कथ्य बनाकर लिखी गई है। 'हाशिये' कहानी मुस्लिम समाज में व्याप्त आर्थिक तंगी की ओर संकेत करती है। 'नंगा' शीर्षक कहानी भी मुस्लिम समाज में अर्थाभाव के कारणों पर प्रकाश डालती है। जहाँ रूबीना आर्थिक कारण से ईद का त्योहार नहीं मना पाती है, कहानी का एक प्रसंग है -"भाभी चलो हमारी ईदी लाओ। लेकिन मैं बाहर नहीं निकला और रूबीना ने बड़ी कठिनाई से हँसकर टाला-देखो तुम्हारे भैया अभी सो रहे हैं। वह उठें तो उनसे इकट्ठे ले लेना।"[29]

'आँच' कहानी मुस्लिम समाज में व्याप्त अवैध सम्बन्धों पर प्रकाश डालती है। 'मरे हुए चेहरे', 'मासूम बाबा' जैसी कहानियाँ मुस्लिम समाज की मानवीय विवशता, कुंठा, आर्थिक तंगी को उकेरती हैं। "शानी अपनी कहानियों में भावों, विचारों जैसी सूक्ष्म अभिव्यक्ति और स्थितियों, बाह्य आकृतियों, चरित्रों की स्थूलताओं को कहानी की पृष्ठभूमि के परिवेश से उठाये गये बिम्बों और प्रतीकों द्वारा इस प्रकार पेश करते हैं कि कभी-कभी उनकी कहानियाँ कविता के निकट जाती दिखाई देती हैं। शब्दों की कारीगरी शानी की ऐसी विशेषता है जो उन्हें अपने समय के कहानीकारों में एक ख़ास मुकाम देती है।"[30] मुस्लिम कथाकारों में शानी एक ऐसे कहानीकार रहे हैं, जिनकी रचनाओं में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, आंचलिक, मानवीय संवेदनाएँ और मानवीय सम्बन्धों का ताना-बाना का परिचय विस्तारपूर्वक दिखाई पड़ता है। 'युद्ध' कहानी प्रमुख रूप से दंगे की शिनाख्त में लिखी गई है। इस कहानी में शानी ने मुसलमानों की स्थिति का बहुत ही सजीव वर्णन किया

है -"दफ़्तर में मुसलमानों की संख्या कुल मिलाकर चार थी और उस पर भी नोटिस लिए जाने वाले तीन थे। युद्ध छिड़ते ही शहर के मुसलमानों में जो आतंक और भय समा गया था, उसका आभास दफ़्तरों में पालना सबसे ज्यादा आसान था। दो-एक दिन हर क्षण यह लगता रहता था कि अब कोई दंगा छिड़ा, अब कोई फ़साद हुआ। ...लोग दरवाजे-खिड़कियाँ बंद करके धीमी आवाज़ में रेडियो पाकिस्तान की न्यूज़ सुनते और जब भी दो या चार आपस में मिलते खरगोश के अंदाज में बातें करते।"[31]

'डाली नहीं फूलती' कहानी में मुस्लिम समाज में कुँवारी लड़कियों की शादी न होने के कारण उत्पन्न उनकी विवशता और मानसिकता का अंकन है। 'दोजखी' कहानी विभाजन पर आधारित है। विभाजन के बाद दोनों पक्षों अर्थात हिन्दू और मुस्लिम दोनों डरे हुए थे। लोग अपने ही मुल्क में सुरक्षित महसूस नहीं कर रहे थे, चारों तरफ भय का आलम था। कहानी का एक प्रसंग है -"यह वह दौर था जब मुल्क में फ़साद की फ़सल आई थी और एक के बाद कई शहरों में दंगे हो रहे थे ...हम जैसे लोग भोपाल जैसे शहरों में रह रहे थे, जिसमें दंगे का कोई इतिहास नहीं था, फिर भी डरे हुए थे, क्योंकि शहर में तनाव था। सरकार सतर्क हो गई थी। जगह-बेजगह पुलिस और होमगार्ड के जवान तैनात थे। रात अफवाहें उड़ती थीं और बाहर से रोज ख़बरें आती थीं-हैबतनाक ख़बरें। बरसों से एक साथ रहते आए हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे को संदेह और डर से देखने लगे थे और छोटे-छोटे समूहों में बंट गए थे।"[32] शानी की कहानियों को विश्लेषित करने के बाद कहा जा सकता है कि इनकी कहानियों में मुस्लिम जीवन के सभी पक्षों की पड़ताल हुई है। " निष्कर्षतः शानी का कथा साहित्य हिन्दू और मुस्लिम जीवन दोनों की सामाजिक समस्याओं से जुड़ा हुआ है जो उन सबके जीवन का सच्चा ख़ाका पेश करता है।"[33]

बदीउज़्ज़मा ने लगभग सातवें दशक के अंत में कहानी लिखना आरम्भ किया था। उनके रचना-संसार में दस कहानियाँ ऐसी हैं, जिसमें मुस्लिम जीवन के यथार्थ का बहुत ही सूक्ष्म अंकन मिलता है। 'मिटते साये' कहानी में मौलवी वर्ग के छलावे को दिखाया गया है। 'घर और मकबरे का आदमी' में मुस्लिम जमींदारों के टूटन और उनकी आर्थिक बदहाली का चित्रण किया गया है। 'परदेशी' और 'अंतिम इच्छा' पाकिस्तान बनने

के बाद भारतीय मुसलमानों द्वारा पाकिस्तान में रह रहे पाकिस्तानी मुसलमानों से मोहभंग की कहानियाँ हैं। 'रावण' कहानी का कथ्य धर्म के नाम पर हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष है -"इस कहानी का जो हिन्दू बच्चा बचपन में एक मुस्लिम बच्चे की दंगे में रक्षा करता है, वही बड़े होने पर दंगे में उसकी हत्या कर देता है। सांप्रदायिक वातावरण किस प्रकार इन्सान की इंसानियत छीन लेता है, यही इस कहानी का केन्द्रीय कथ्य है।"[34] 'प्रतिक्रिया' शीर्षक कहानी एक मुस्लिम बच्चे की संवेदना पर आधारित है।

1970 के आस-पास से कहानी लिखने वाली मेहरुनिस्सा परवेज की कहानियों में मुस्लिम जीवन की अभिव्यक्ति मिलती है। इनकी कहानियों में मुस्लिम मध्यवर्गीय परिवारों की आर्थिक तंगी और उससे उपजी विवशता का प्रामाणिक और संवेदना से भरा अंकन मिलता है। 'आकृतियाँ और दीवारें' कहानी में एक मुस्लिम परिवार के टूटन की पीड़ा का चित्रण है। 'अकेले गुलमुहर' में मध्यवर्गीय परिवारों की बर्बादी और खोखले सम्बन्धों का चित्रण किया गया है। 'जाने कब' में एक मुस्लिम स्त्री की शादी इसलिए नहीं हो पाती है कि परिवार आर्थिक तंगी से बदहाल है। 'त्योहार', 'बंजर', 'दुपहर' और 'भोगे हुए दिन' कहानियों में "निम्नवर्गीय मुस्लिम परिवार की आर्थिक बदहाली, विवशता, हताशा, पति-पत्नी के बीच बढ़ती अजनबीयत, असंतोष, ऊब आदि का चित्रण किया गया है।"[35] 'सीढ़ियों का ठेका' जुम्मे की नमाज़ के बाद गरीब और असहाय औरतों को मिलने वाली खैरात पर आधारित कहानी है।

समकालीन कहानीकारों में अब्दुल बिस्मिल्लाह का नाम प्रमुख है। इनकी कहानियों में मुस्लिम जीवन के यथार्थ को देखा जा सकता है। 'टुटा हुआ पंख'(1981), 'कितने-कितने सवाल'(1984), 'रैन-बसेरा'(1989),'अतिथि देवो भव'(1990) आदि कहानी-संग्रह की अधिकतर कहानियाँ मुस्लिम समाज, परिवार की समस्याओं पर केन्द्रित हैं। इनकी कहानियाँ अधिकतर गाँव, निम्नवर्ग और मुस्लिम परिवार की बदहाली से जुड़ी हुई हैं। 'जन्मदिन', 'नन्ही-नन्ही आँखें' ,'शत्रु', 'क्षयी', 'तीर्थ यात्रा', 'सीला', 'शीरमाल का टुकड़ा' आदि कहानियों में मुस्लिम समाज में व्याप्त वर्ग-भेद, धार्मिक पाखण्ड, रूढ़िवादिता, राजनीतिक छलावा, उच्च वर्ग की शोषण नीति को उजागर किया गया है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह एक ऐसे रचनाकार हैं जो मुस्लिम समुदाय के जनजीवन का बहुत ही सूक्ष्म ढंग से चित्र प्रस्तुत किया है। उनका कहानी-संग्रह 'अतिथि देवो भव' उपर्युक्त बात को प्रमाणित करता है। इस कहानी-संग्रह में मुस्लिमों की आंतरिक समस्याओं के साथ-साथ, हिन्दू-मुस्लिम के सम्बन्धों पर भी चित्रण किया गया है। 'अलिया धोबी और पाव-भर गोश्त', 'सिद्दीकी साहब', 'पूँजी माल और मुनाफा', 'अभिनेता' और 'पुण्यभोज' आदि कहानियों में मुस्लिम मानस की पूरी झलक मिलती है। सामाजिक समानता प्राप्त करने के लिए जो दलित, मुस्लिम धर्म कबूल किए उनके साथ मुस्लिमों ने अच्छा सुलूक नहीं किया, इस बात की ओर भी इस कहानी-संग्रह में संकेत किया गया है। जातिवाद भारत को सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर खोखला करता चला जा रहा है। ब्राह्मण धर्म ने समाज की संरचना इस प्रकार की जिसका आधार जातिवाद है, कई क्रांतियों और विदेशी आक्रमणों के बाद सब कुछ नष्ट हो गया परन्तु जातिवाद का जहर नहीं गया। भारतीय समाज में जाति का प्रश्न आज भी मौजूद है।

इस्लाम के आने से वर्ण-व्यवस्था कुछ मात्रा में जरूर कम हुए थे और बड़ी संख्या में समाज में समानता प्राप्त करने के लिए बहुत से दलितों ने इस्लाम धर्म भी स्वीकार किया था। लेकिन इस्लाम समुदाय में भी कुछ ऐसी जातियाँ थीं जो अपने निचले जातियों का जमकर शोषण करती थीं। इसी अभिजात्य वर्ग के विरुद्ध क्रांति का नायक है- अली अहमद उर्फ़ आलिया धोबी।

आज भारतीय समाज में मुस्लिम समुदाय की सामाजिक संरचना कुछ अलग ही दिखाई पड़ती है। आज मुसलमानों में तीन वर्ग मिलते हैं- अशराफ, अजलाफ़ और अरजाल। इनके मध्य समाज में जो सम्बन्ध हैं, अब्दुल बिस्मिल्लाह ने उसका चित्रण इस प्रकार किया है, कहानी का एक प्रंसग है -"जो शेख हैं, जो सैयद और जो सिद्दीकी और खान हैं, वे नाइयों, धोबियों और जुलाहों, धुनियों से नफ़रत करते हैं। जैसे किसी जमाने में ब्राहमण और क्षत्रिय शूद्रों से नफरत करते थे। दोस्तो ! इस मुल्क के शूद्रों ने इसीलिए तो इस्लाम को कबूल किया था कि उन्हें यहाँ बराबरी का दर्जा मिलेगा, पर वह नहीं हुआ। बराबरी सिर्फ़ मस्जिद तक महदूद है।

बाहर, समाजी ज़िन्दगी में वही ऊँच-नीच आज तक मौजूद है। हमारे गाँव में तो धोबी बहुत हैं। इनमें शक नहीं कि ये मुसलमान हैं, कलमागो हैं। लेकिन यह हमारी चारपाइयों पर नहीं बैठ सकते।"[36]

'अलिया धोबी और पाव-भर गोश्त' कहानी में जातिगत सम्बन्धों के यथार्थ को भी उकेरा गया है। शेख और पठान जाति के लोग आम तौर पर धोबी या कहें निम्न जाति के लोगों के यहाँ भोजन नहीं करते। कहानी में अलिया धोबी के बहन की शादी पड़ती है, उस दौरान शेख-पठानों के यहाँ निमंत्रण भेजा जाता है। निमंत्रण के मिलते ही वे कहते हैं हम दावत तो स्वीकार करते हैं परन्तु धोबी के घर हम दावत खाने नहीं जाएँगे, वह चाहे तो पाव-भर गोश्त मेरे घर भेजवा सकता है। अलिया धोबी के पिता को यह बात स्वीकार करनी पड़ती है। इस बात को अलिया भूलता नहीं है, वह अपने वर्ग के लोगों को इकट्ठा कर क्रांति का आह्वान करता है। गाँव के सम्मानित व्यक्ति लईक आलम खां के यहाँ दावत मिलती है तो वह दावत को स्वीकार करते हुए कहता है -"खां साहब से एक बात जरूर कह देना कि हम लोग, यानी धोबियाने के लोग, वहाँ खाना खाने न आ सकेंगे। हमारे लिए मेहरबानी करके पाव-पाव भर गोश्त भिजवा देंगे। चाहें तो पाव-पाव भर आटा और पाव-पाव भर चावल भी भिजवा सकते हैं।"[37]

'सिद्दीकी साहब' शीर्षक कहानी हिन्दू समाज पर मुसलमानों के प्रभाव को व्यंजित करती है। "मैं एक बार का वाकिया सुनाऊँ आपको। हमारे यहाँ आर्म्स क्लर्क की जगह खाली हुई तो मैंने चाहा कि मैं उस पोस्ट पर कर दिया जाऊं। लेकिन साहब, एक मुसलमान भला आर्म्स क्लर्क कैसे हो सकता था ? एक डर कि अगर यह आर्म्स कलर्क हो गया तो जिले के तमाम मुसलमानों को लाइसेंस दिलवा देगा और वे हिन्दुओं का जीना हराम कर देंगे।"[38] इस कहानी में सलामतुल्ला साहब के माध्यम से समाज के नैतिक पतन का चित्रण भी किया गया है। एक और बात भी देखने को मिलती है कि समाज में कुछ ऐसे व्यक्ति भी रहते हैं जो किसी भी प्रकार का श्रम किए बिना ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसे व्यक्ति जरूरतमंद लोगों को ठग कर पैसा कमाते हैं और आलीशान ज़िन्दगी जीते हैं।

'अभिनेता' शीर्षक कहानी प्रमुख रूप से मुस्लिम समाज में नारी शोषण पर आधारित है। मुस्लिम समाज में कुछ ऐसे खंडित व्यक्तित्व वाले पुरुष होते हैं जो स्वार्थी, शोषक और नारी उत्पीड़न को अपना शौक मानते हैं। इस कहानी में रहमान नामक पात्र जो तीन शादियाँ करता है। नारी उत्पीड़न के लिए ऐसे ही व्यक्ति जिम्मेदार होते हैं जो नारी को सिर्फ़ भोग की वस्तु समझते हैं। मुस्लिम समाज में आम तौर ऐसी कई घटनाएँ सुनने को मिलती हैं जिनमें पुरुष बिना कारण के कई शादियाँ करता है, क्योंकि इस्लाम में पुरुष तलाक देकर कई शादियाँ कर सकता है इस तरह का प्रावधान किया गया है, जो की सही नहीं है फिर भी इसका कुछ व्यक्ति निर्वाहन करते हैं या यह भी कह सकते हैं कि दुरुपयोग करते हैं। इस्लाम में एक से अधिक शादी का प्रावधान किया गया है यह बात सही है लेकिन किन हालातों में इसका प्रावधान है इसको भुला दिया जाता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने इस कहानी में अमानवीय पात्रों का चित्रण इस प्रकार किया है, कहानी का एक प्रसंग है -"वह पेट थपथपाता हुआ बाथरूम से निकलकर कमरे में आया तो लगा कि कोई दैत्य आ गया है। उसने अपना बनियान नल के पास ही छोड़ दिया था और उस वक्त वह सिर्फ अंडरवीयर पहने हुए था। उसके काले जिस्म पर लम्बे-लम्बे बाल उगे हुए थे और मुहासों से भरा, मोटी जिल्द वाला उसका चेहरा जानवर की भांति दिखाई दे रहा था।"[39]

अब्दुल बिस्मिल्लाह का कहानी-संग्रह 'अतिथि देवो भव' में भारतीय मुस्लिम समाज की सामाजिक और आर्थिक स्थिति का पूरा ब्यौरा प्रस्तुत किया गया गया है। विचारक इकरार अहमद के शब्दों में -"अधिकांश कहानियों की पृष्ठभूमि पूर्वी उत्तर-प्रदेश के ग्रामीण और कस्बाई जनजीवन है, इसका प्रभाव भाषा और शिल्प पर दृष्टिगत होता है। कहीं-कहीं पात्रों द्वारा पूरे-पूरे वाक्य भोजपुरी में कहे गये हैं। इसके अतिरिक्त कस्बाई व शहरी पृष्ठभूमि की कहानियों में अंग्रेजी के शब्द पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किए गए हैं। निष्कर्ष 'अतिथि देवो भव' कहानी-संग्रह सम्पूर्ण भारत का चित्र प्रस्तुत करते हुए भारतीयता का तलाश करता है। साम्प्रदायिकता, जातिवाद, पूंजीवाद, दलित व नारी विमर्श इत्यादी ज्वलंत मुद्दों को रेखांकित करते हुए उनके समाधान का मार्ग भी प्रस्तुत करता है।"[40]

'जीनिया के फूल' कथाकार अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानियों का एक महत्वपूर्ण संग्रह है। इस संग्रह में कुल सत्ताइस कहानियाँ संकलित हैं। इस संग्रह की कुछ कहानियाँ मुस्लिम जीवन को केंद्र बनाकर लिखी गई हैं। संग्रह की कहानी 'साल भर का त्यौहार' एक मास्टर की कहानी है। मास्टर का छोटा सा परिवार है- बीवी और एक बच्ची। शादी के बाद मास्टर का भाई उसे अपने से अलग कर देता है। ईद का त्यौहार आता है। परिवार में किसी के पास नए कपड़े नहीं हैं। बस दस रुपये का नोट बचा रहता है। उसी दस रुपये के नोट से ईद मनाई जाती है। 'बाजीगर' कहानी एक ऐसे परिवार की कहानी है, जिसमें सब लोग किसी-न-किसी कारण से अपने ही जीवन में नाचते नजर आते हैं, किसी व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से मिलने का अवसर नहीं मिल पाता । इस कहानी में असगर मजार पर मुजाविरी करता है दूसरे शब्दों में कहें तो वह अंधविश्वास परोसता है। उसकी बीवी उसे समझाती है, कहानी का एक प्रसंग है -"बाबा तुम्हे खाने को देंगे क्या ? आखिर क्या मिलता है मुजाविरी में ? हफ़्ते में रुपये आठ आना चिरागी और कभी-कभी छटांक भर मलीदा, साल में चार गज मलमल। यही न ! समझते हो इतने में ज़िन्दगी कट जाएगी। मैं फिर समझाती हूँ कि मुजाविरी छोड़ो और मेहनत-मजदूरी करो। मौलवियाई करने से काम नहीं चलेगा।"[41] असगर अपनी बीवी की बात को काटते हुए कहता है- "तुम नहीं मानती तो मत मानो, मगर मजहब के मामले में टांग मत अड़ाया करो। तुम्हारे पेट के लिए मैं बाबा को छोड़ दूँ ? यह नहीं हो सकता।"[42] एक दिन असगर की बीवी बीमार पड़ जाती है और बाबा का नुस्खा काम नहीं आता है तो वह बाबा का साथ छोड़ देता है। उसी दौरान असगर की बेटी भी बीमार पड़ जाती है, वह रोजगार की तलाश में भटकता रहता है। एक दिन फिर उसी चंगुल में फँस जाता है एक बाबा से पीछा छूटा तो दूसरा मिल जाता है। असगर एक साइकिल की जादूगरी सिखाने वाले के पास काम करने लगता है। "लेकिन लगभग दो महीने तक कमाल सीखने के बाद जब गुरु-दक्षिणा के रूप में ...अपना पीतल वाला बधना देकर वह लौटा तो आयशा की अम्मा का वजूद मिट चुका था। कोठारी में आयशा अस्त-व्यस्त पड़ी थी और बुखार में तड़प रही थी।"[43] असगर की बीवी अंत में मर जाती है। असगर अपनी बच्ची को पालने के लिए साइकिल की जादूगरी का काम करने लगा, एक बार उसे बहत्तर घंटे साइकिल चलाने का कार्यक्रम मिला। उसने कार्यक्रम पूरा किया परन्तु -"और असगर का प्रोग्राम जब खतम हुआ, वह साइकिल के नीचे गिर चुका था। भीड़ में से

फेंके गए कुछ पैसे उसके शरीर के इर्द-गिर्द बिखरे पड़े थे और लोग उसकी तारीफ में पुल बाँधने में व्यस्त थे।"[44] भीड़ की बाजीगरी ऐसी थी कि इस व्यस्तता में किसी को असगर के शरीर की सुध देखने का मौका ही नहीं मिला।

मंजूर एहतेशाम ने भी अपनी कहानियों में मुस्लिम समाज की रूढ़िवादिता, धर्मान्धता, अशिक्षा, गरीबी, आर्थिक तंगी आदि को कथ्य बनाया है। 'रमजान में एक मौत(1982)ई.', 'तसहीब (1998)ई.' आदि उनकी चर्चित कहानी-संग्रह हैं।

सातवें दशक से कहानी लेखन में सक्रिय होने वाले असग़र वजाहत की कहानियों में भी मुस्लिम समाज का यथार्थ चित्रण मिलता है, वैसे तो इनकी कहानियाँ प्रमुख रूप से राजनीतिक सच्चाइयों पर आधारित होती हैं, लेकिन कुछ कहानियाँ मुस्लिम जीवन पर भी हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता है- विशिष्ट शैली का प्रयोग। एक अलग शैली के माध्यम से समाज की समस्याओं को अपनी कहानियों में पिरोते हैं। 'मुर्दाबाद', 'सारी तालीमात', 'उनका', 'चन्द्रमा के देश' में आदि चर्चित कहानियाँ हैं, जिनमें मुस्लिम समाज में व्याप्त शोषण प्रवृत्ति को देखा जा सकता है।

नासिरा शर्मा ने मुस्लिम समाज में उपेक्षित, प्रताड़ित, शोषित स्त्री का अंकन अपनी कहानियों में प्रमुख रूप से किया है। 'शामी कागज़(1980)', 'पत्थर गली(1986)', 'संगसार(1993)', 'इब्ने मरियम(1994)', 'सबीना के चालीस चोर(1997)', 'खुदा की वापसी(1998)' आदि ऐसे कहानी-संग्रह हैं, जिनमें मुस्लिम जीवन के नग्न यथार्थ का चित्रण हुआ है। 'चार बहने शीश महल की' कहानी में चार मुस्लिम लड़कियों के घुटन, बदहाली, बहादुरी का चित्रण किया गया है। 'दहलीज' में स्त्री पीड़ा को कथ्य बानाया गया है। 'बचाव', 'आबे-तौबा', 'सहरा नवरद', 'इमाम साहब', 'सबीना के चालीस चोर', 'आया बसंत सखी' आदि नासिरा शर्मा की ऐसी कहानियाँ हैं, जिनमें मुस्लिम समाज की सच्चाइयों को उकेरा गया है। नासिरा शर्मा की कहानियाँ प्रमुख रूप से मुस्लिम समाज में शोषित स्त्री और पुरुष के इर्द-गिर्द विचरण करती हैं। इनके कहानी-संग्रह 'पत्थर गली' की अधिकांश कहानियाँ नारी त्रासदी पर केन्द्रित हैं। नासिरा शर्मा के शब्दों में -"मेरी कहानियाँ मुहाजरत

के दुःख और मुजरों के सुख का मोहभंग करती हुई एक ऐसी गली की सैर कराती हैं जो 'पत्थर गली' है। इस पत्थर गली के रहने वाले अपने विकास के लिए जद्दोजहद के लिए छटपटाते नजर आते हैं। अपनी पहचान के लिए जद्दोजहद के समुन्दर में गोते लगाते हैं। रूढ़िवादिता की बेड़ियों को तोड़कर खुले आसमान में उड़ना चाहते हैं, पंखों को पसारकर उसमें सूरज की गर्मी और रोशनी भरने के लिए तड़पते हैं, कशमकश में पत्थर से टकराहट लहूलुहान हो उठते हैं।"[45] इस कहानी में चारदीवारी में कैद मुस्लिम महिलाओं की घुटन को नासिरा शर्मा ने बहुत बेजोड़ ढंग से प्रस्तुत किया है -"तकिया भीग चुका है, सिसकियाँ रुकने का नाम नहीं ले रही हैं, आखिर अपने ही घर में इतना क्यों घुटती है ? क्यों उलझती है ? यहीं पली, बढ़ी फिर क्यों ? उसे कुछ पता नहीं है, बस, उसे महसूस होता है कि उसे बचपन से ऐसा लगता रहा है कि वह इस वातारवरण में जीने के लिए पैदा नहीं हुई है।"[46] मुस्लिम समाज में जन्म लेकर पली-बढ़ी आधुनिक नारी की मान्यताओं, भावनाओं के वेग में जकड़ी चारदीवारी में अपना सीना पीटती, अपनी सोच को सीधी गाय की तरह जेहन में दबाए हुए नारी की आवाज को नासिरा शर्मा ने इस कहानी-संग्रह की कहानियों में बहुत ही सूक्ष्म ढंग से पिरोया है।

इन कहानियों में अधिकतर नारियाँ अपनी ख्वाहिशों का गला घोंट देती हैं। कहानी का एक प्रसंग है -"शबाना के दिल में एक ख्वाहिश बार-बार दस्तक दे रही थी कि शहर जाने से पहले वह एक नज़र उन्हें देख ले, अब ज़िन्दगी का भरोसा नहीं रह गया है कि कब उसकी डोली इस घर से रुखसत हो जाए। किसको भेजे वह उनके पास ? अम्मा भी जाने कैसे अनजान बन गई हैं।"[47] घर-परिवार के उदास और बोझिल वातावरण ने मुस्लिम महिलाओं की ज़िंदगी से उनकी ख़ुशी ही छीन ली है। मुस्लिम महिलाएँ अपने ही घर में घुटन महसूस करती हैं। प्रेम और स्नेह का सुखद एहसास उनके आँखों से झलकते नज़र आते हैं लेकिन पारिवारिक दबाव के चलते ऐसा हो नहीं पाता। 'बंद दरवाजा' कहानी का एक प्रसंग है -"गुजरें कल की वह औरतें क्या थीं ? बलिदान की मूर्तियाँ या फिर बलि की वेदी पर चढ़ाई गई बकरियाँ ?...ऐसे हालात में उसे भी जलते-जलते पिघलना है। मर्यादा की लौ को सर पर उठाए दम तोड़ना है। घूँट-घूँट इस दर्द के समुंदर को पीना है। बड़े घरों की कहानियाँ उनके आंगन में दम तोड़ती हैं। ऊँचा खानदान मान-मर्यादा का क़ब्रिस्तान होता है, जहाँ हर रोज एक नई कब्र खुदती है और बुजुर्गों की ख्वाहिशों के कफ़न में लिपटी लाश दफ़न कर दी जाती है।"[48]

नासिरा शर्मा की कहानियों में हम एक खुशबू देख सकते हैं, यादें देख सकते हैं, सहमी हुई ख़ामोशी भी है, सिमटे हुए सपने हैं, चाँदनी बिखेरती आँखों में अफसुरदा नींदें भी हैं और प्रेम की बगिया में पुष्पों की महक और काँटों की चुभन भी है, ऐसे अनेक प्रसंगों को देख सकते हैं। 'सिक्का' कहानी का एक प्रंसग है -"जब गम अपनी हदें तोड़ बैठता है, तो उसकी अभिव्यक्ति आंसू नहीं, हँसी बन जाती है। हँसी के इन्हीं मद्धिम चिरागों की लौ में मुझे 'जश्न गम' मनाने का सलीका आ गया है। मैं इश्क की नाव पर तन्हा बैठी नफे-नुकसान के हिसाबी दरिया को कब का पार कर चुकी हूँ। उसके घावों को सहलाती हुई खुद से पूछती थी कि क्या इंसानों के बीच इंसानियत खुद में एक अटूट बंधन नहीं ?"[49]

नासिरा शर्मा के कहानी संसार में स्त्री भावनाओं का बहुत ही मार्मिक चित्रण देखने को मिलता है। मुस्लिम समाज में उत्पन्न नारी अस्मिता के सवाल पर इन्होंने बेजोड़ लेखनी की है। इनकी कहानियों का जो महत्वपूर्ण पहलू है, वह है मध्यवर्गीय मुस्लिम महिलाओं की घुटन और माहौल को इतना सूक्ष्म ढंग से व्यंजित करती हैं कि पाठक पूरे यथार्थ जीवन से रूबरू हो जाता है।

नासिरा शर्मा का कहानी-संग्रह 'सबीना के चालीस चोर' में आज़ादी के पचास वर्षों बाद मुस्लिम समाज की जो स्थिति है उसका पूरा ब्यौरा मिलता है। इस संग्रह के कहानियों के पात्र मेहनतकश तबके के लोग हैं। इस संग्रह की एक कहानी है -'इमाम साहब'। इस कहानी में मानवीय पीड़ा को उद्घाटित किया गया है। मुस्लिम समाज में भुखमरी किस तरह व्याप्त है उसकी ओर भी संकेत किया गया है। इमाम शकील उद्दीन की आँतें अल्लाह को याद कर रही हैं, परन्तु खाने-पीने के लिए कोई उपाय नहीं है। इस कहानी में इमाम को खाने-पीने के लिए बासी रोटी और चींटियों से भरी दाल आती है। कुछ इस तरह की हालत इमाम की होती है जिस पर कम कहानीकार की नज़र पड़ती है। "इस कहानी को मानवीय संवेदना के गहरे स्तर पर देखा जाना चाहिए। जिस-धर्म मजहब का लोग डंका पीटते हैं, उसकी अंदरूनी हालत यह है, इसके बारे में कौन लिखता है? 'इमाम साहब' नासिरा की बेहतरीन कहानियों में से एक है।"[50] इसी संग्रह में एक और कहानी है 'ततइया', इस कहानी में भी मुस्लिम समाज में व्याप्त भुखमरी की समस्या को उकेरा गया है।

'सबीना के चालीस चोर' कहानी-संग्रह की अन्य कहानियाँ जैसे-'गूंगी गवाही', 'विरासत', 'चाँद तारों की शतरंज' और 'नौतपा' आदि को बेहतरीन रचना मान सकते हैं। 'चाँद तारों की शतरंज' एक बेहद गरीब मुसलमान की कहानी है। झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाला एक गरीब आदमी किसी तरह पतंग बेचकर अपनी रोजी-रोटी चलाता है। कहानी में पूरा परिवार पतंग बेचकर अपनी जीविका को आगे बढ़ाता है। नासिरा शर्मा की कहानियों में एक और बात पर गौर किया जा सकता है, वह है- फसाद, सियासत और मजहब पर ज्यादा न लिखकर गरीबों की हालत पर कहानियाँ लिखना। प्रमुख रूप से इस कहानी-संग्रह के बारे में तो पूरा सच है। "यूँ तो उनकी कहानियों की संरचना और अनुभव का संसार बेहद व्यापक है, लेकिन उनके लेखकीय साहस और सच को उजागर करने का हौसला भी आश्वस्त करता है कि कहानियाँ आज भी लिखी जा रही हैं। आज के कार्पोरेट सांस्कृतिक के दौर में गाँव, कस्बों की ज़िन्दगी का बयान इधर की कहानियों में नहीं है। इसलिए नासिरा शर्मा की लिखी इस कहानियों का आज खास मतलब है। वास्तव में कहानियों का सार्वत्रिक सत्य उनके यहाँ मौजूद है।"[51]

नासिरा शर्मा उन चंद लेखिकाओं में से हैं, जिनके साहित्यिक योगदान को साहित्यिक राजनीति के चलते प्रायः नजरअंदाज भी किया जाता रहा है। मगर उनकी कलम इतनी मजबूत है कि वे डटी रहीं और लिखती रहीं हैं और निरंतर लिख रही हैं। नासिरा जी का अनुभव क्षेत्र बहुत व्यापक रहा है, वे पूरी दुनिया घूमी हैं। मुस्लिम देशों ख़ास तौर पर ईरान, अफगानिस्तान आदि देशों का इन्हें पूरा ज्ञान है। इन देशों की सामाजिक स्थिति, राजनीतिक स्थिति और कला व संस्कृति का अच्छा ज्ञान उनके पास मौजूद है। कहानी-संग्रह 'खुदा की वापसी' में कुल नौ कहानियाँ संग्रहित हैं। लगभग सारी कहानियाँ मुस्लिम परिवेश के इर्द-गिर्द घूमती हुई प्रतीत होती हैं। मुस्लिम औरतों के मनोविज्ञान को नासिरा शर्मा के अलावा शायद ही कोई कहानीकार खंगाल सकता है। एक बात और देखने को मिलती है कि आज़ादी के बाद हिंदी कथा-साहित्य में मुस्लिम किरदार लगभग गायब दिखाई पड़ते हैं। दूसरी तरफ मुस्लिम समाज के प्रामाणिक चित्रण व समस्याओं को लगभग अनदेखा किया जा रहा है। इस संग्रह की सबसे लम्बी कहानी है 'खुदा की वापसी'। यह कहानी मुख्य पात्र फरजाना के मेहर पर आधारित है। फरजाना एक शिक्षित लड़की है, वह अपनी शिक्षा जारी रखना चाहती है परन्तु घर वाले

उसकी शादी जुबैर से कर देते हैं। जुबैर एक संपन्न घराने से ताल्लुक रखता है। अपने दोस्तों से मिली कुछ जानकारी के आधार पर वह पहली रात फरजाना से मेहर माफ़ करवा लेता है। बाद में जब फरजाना को अपने भाई के दोस्त व शरियत के जानकार अली इमाम और मौलाना वहीदुद्दीन खां के जरिए सच का पता चलता है तो वह पगला जाती है। फरजाना अपने शौहर से लड़ती है। अपने शौहर से नाराज होकर फरजाना मायके चली जाती है। इस तरह उसका घर बसने से पहले ही उजड़ जाता है। "लेखिका बेशक मेहर के बहाने मुस्लिम विवाह से सम्बन्धित भ्रांतियों को अली इमाम व मौलाना वहीदुद्दीन के इल्म की रौशनी में निवारण करने की कोशिश करती हैं और मुस्लिम स्त्री की अस्मिता के पक्ष में खड़ी नजर आती हैं, मगर एक आधुनिक पाठक ये सोचने पर मजबूर हो सकता है कि इक जरा सी बात पर अपना वैवाहिक जीवन दांव पर लगाना फरजाना जैसी तालीमयाफ़्ता तथा आधुनिक सोचवाली लड़की क्यों कबूल कर लेती है। ये अटल सच्चाई है कि दुनिया में स्त्री को ही नहीं, पुरुष को भी प्राय: समझौते करने पड़ते हैं।"[52]

इस कहानी में जुबैर फरजाना से तंग आकर, अपने व्यवसाय को छोड़कर खाने-कमाने के लिए सऊदी-अरब चला जाता है। तब फरजाना एक ख़्वाब देखती है जिसमें दुनियावी खुदा की वापसी का ख्वाब, जिसमें जुबैर का पश्चाताप और फरजाना का अफ़सोस शामिल है। इसमें नासिरा शर्मा चाहतीं तो कहानी का क्लाइमेक्स दूसरा होता। फरजाना और जुबैर मिलते जिस तरह बाद में चलकर फरजाना ख्वाब देखती है, लेकिन औरत का दर्द औरत ही जानती है।

इस संग्रह की अधिकतर कहानियों में यह देखने को मिलता है कि नायिकाएँ विभिन्न कारणों से अपने पति का घर त्यागती हुई नजर आती हैं। बाद में चलकर भाई, माँ या पिता के घर का आश्रय लेना उनकी मज़बूरी हो जाती है। शायद नासिरा जी ने अक्सर घरों में ऐसा देखा हो। इस संग्रह की एक बेहतरीन कहानी है -'चार बहनें शीशमहल की'। यह एक चूड़ीहार परिवार की बड़ी दर्दनाक कहानी है। इस कहानी में निम्न मध्यवर्गीय परिवार की बेबसी को भी उद्घाटित किया गया है।

इस संग्रह की कहानियों पर हसन जमाल ने इस प्रकार टिप्पणी की है -"खुदा की वापसी, की अधिकांश कहानियाँ एक समुदाय विशेष की होकर भी विभिन्न वर्गों की स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। स्त्री के बुनियादी अधिकारों व सरोकारों को उजागर करने में इस संग्रह की कहानियाँ सक्षम हैं। कहानी 'मेरा घर कहाँ'में लाली धोबन की बेटी सोना हो या 'नई हुकूमत' की हाजरा या 'बचाव' की नायिका रेहाना, हर स्त्री पात्र नारी संघर्ष और उत्पीड़न का जीता-जागता नमूना है।"[53] इस कहानी-संग्रह में मुस्लिम किरदारों के विविध पक्षों को देखा जा सकता है। यह भी कहा जा सकता है कि जो पाठक मुस्लिम समाज, मुस्लिम साइकी और मुस्लिम शरीअत से वाकिफ नहीं हैं, उनके लिए इस संग्रह की सारी कहानियाँ महत्वपूर्ण हैं।

27 जून, 2008 को लन्दन हाउस ऑफ लार्ड्स में 14 वें अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान से सम्मानित नासिरा शर्मा की वैचारिक पुस्तक 'राष्ट्र और मुसलमान' एक ऐसी पुस्तक है, जो मुस्लिम समाज को ठीक तरीके से समझने के लिए अद्वितीय है। इस पुस्तक में धर्म, राजनीति, समाज, संस्कृति और साहित्य इत्यादि विषयों पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। भारत में राष्ट्रीय एकता एक बहुत बड़ी समस्या के रूप में उभरी है, ख़ास तौर पर आर्थिक और सामाजिक समानता के स्तर पर। आज स्थिति यह है कि आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में मनुष्य इतना अंधा हो गया है कि दूसरे मनुष्य के आगे से निवाला छीनने से परहेज नहीं करता, इस स्थिति में या कहें इस मानसिकता में जीवन यापन करते हुए राष्ट्रीय एकता जैसी बात करना सबसे बड़ा गुनाह है। इस समस्या पर नासिरा शर्मा ने लिखा है कि -"सामूहिक पहचान की बातें हम तिरंगा फहराते हुए कहते हैं। भारत की प्रशंसा करते हुए अनेकता में एकता का राग अलापते हैं, मगर जब बात अपनी जगह में दूसरे को थोड़ी सी जमीन, अपनी रोटी से आधी रोटी दूसरे को देने की आती है, तो हम कड़ा रुख अपना लेते हैं और अखंडता भूल खंड-खंड के स्वामी बनना चाहते हैं।"[54]

साम्प्रदायिकता का जिन्न फैलाना बहुत आसान है परन्तु उसे रोकना बहुत कठिन है। भारत में जब भी साम्प्रदायिकता की बात उभरती है तो सबके जुबान पर दो ही शब्द आता है- हिन्दू और मुस्लिम। इन दोनों समुदायों में जो दूरियाँ हैं उसका सबसे बड़ा कारण है, दोनों का (हिन्दू और मुसलमान) एक दूसरे को सही तरीके

से न समझ पाना। उदाहरण के तौर पर साबरमती ट्रेन को जलाने की जो घटना है उसमें अधिकांश हिन्दू वर्ग यही समझता है कि उसमें केवल मुसलमानों ने ही शिरकत किया था, यह बहुत ही बड़ा भ्रम है। उसी प्रकार एक मुसलान संस्कृत की पुस्तक को देखकर यह अंदाजा लगा लेता है कि अगर इस पुस्तक को वह पढ़ेगा तो उसका इमान फिर जाएगा, लेकिन वह इस बात को भूल जाता है कि 11 वीं-12 वीं शताब्दी में बड़े पैमाने पर संस्कृत की बहुत सी रचनाओं का अनुवाद अरबी एवं फारसी भाषा में हुआ था। आज भी इस प्रकार की नासमझी भारतीय समाज में मौजूद है। शिक्षित वर्ग की हालत यह है तो अशिक्षित वर्ग के बारे में अंदेशा लगाया जा सकता है -"हम किसी भी समाज के दायरे में रहकर बोल रहे होते हैं कि हिन्दू नहाते तो रोज हैं, मगर दो लोटे से, बदन पूरा भीगता भी नहीं है। उधर से जुमला फेंका जाता है कि ये तो म्लेच्छ हैं। गंदे ऐसे कि ईद के ईद नहाते हैं। यह मुसलमान के घर पानी पीकर आया है, जनेऊ बदलो, इसकी पूरी शुद्दि करो। तौबा है, उसके घर खाना खाते घिन आती है, हींग और गोमूत्र तो जरूर छिड़कते हैं। इनको कपड़ा पहनना क्या आए ? बस तेल चुपड़ते हैं, फिर धोती-कुर्ता पहन माथे पर टीका लगा लेते हैं। कभी डाकू लगते हैं, कभी खूनी।"[55]

अल्पसंख्यक होने के नाते भारतीय मुसलमानों को सामान्य जनता से कुछ अधिक पीड़ा उठानी पड़ती है। आर्थिक समस्याएँ तो इस समुदाय में हैं ही, इसके अलावा इन्हें देश भक्ति का प्रमाण हर समय देना पड़ता है। मुस्लिम समुदाय में मध्यवर्ग बहुत ही कम है, जो हैं भी वह उच्च वर्ग के समकक्ष आने का पूरा प्रयत्न करते रहते हैं, लेकिन इसके लिए उन्हें उचित शिक्षा और जगह की जरूरत पड़ती है। एक बात और देखने को मिलती है कि जब कोई मुस्लिम व्यक्ति हिन्दू घरानों में जाकर एक मकान लेकर अपनी शिक्षा को पूरी करने की कोशिश करता है तो उसे बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। आम तौर पर कॉलोनी मालिक का जवाब आता है कि इसमें मैं किसी दलित या मुस्लिम को नहीं बसाऊंगा। इस स्थिति पर नासिरा शर्मा ने लिखा है -"सरहद पर रहने के कारण आपका रिसीविंग इंस्ट्रूमेंट कुछ ज्यादा ही प्रखर और संवेदनशील हो उठता है, क्योंकि दोनों तरफ़ की विपरीत हवाओं को झेलते हुए आपको सचेत खड़े रहने का अभ्यास करना पड़ता है। अपने अस्तित्व को बचाए रखने के सिलसिले में कोशिश तो यही होता है कि कोई एक पक्ष आपको धराशायी करके अपनी विजय

का बिगुल न बजा सके, मगर यह मौका जब किसी को नहीं मिल पाता है, तो वे स्वयं समर्पण कर आपको उसी तरह देखने की कोशिश करने लगते हैं।"[56]

जब यही मुस्लिम शिक्षित वर्ग अपनी ही कौम में रहने के लिए जाता है तो उसे अपनी ही कौम से लड़ना पड़ता है, इस स्थिति में मुस्लिम समुदाय अपने को लाचार और बेबस पाता है। अशिक्षित वर्ग को तो छोड़ दीजिए शिक्षित वर्ग भी अंधविश्वास में पड़कर उचित क्या है ? और अनुचित क्या है ? इसके भेद को भूल जाता है। इस वर्ग के लिए भी मस्जिद के इमाम साहब के वचन ही उसके लिए इस्लाम है। इस्लाम के नाम पर इमाम द्वारा जो भी कुछ बताया जाता है वही इनके लिए सत्य है। "इन इमामों ने भी मुस्लिम समाज को शिया-सुन्नी, देवबंदी-बरेलवी, अहले हदीस इत्यादि सम्प्रदायों में बाँट दिया है। यह विभाजन यहाँ तक है कि प्रत्येक सम्प्रदाय श्रेष्ठता के अहंकार में दूसरे को इस्लाम का अनुयायी भी नहीं मानता है।"[57]

मुस्लिम समाज में मौलवी वर्ग के कार्यान्वयन की वजह से भी इस समुदाय में आर्थिक असमानता आ जाती है। इस्लाम में जकात देने की व्यवस्था है। जकात में जितने भी धन मिलते हैं उस पर या तो मौलवी वर्ग का या मदरसों का वर्चस्व रहता है। जकात द्वारा मिली धनराशि का मदरसों की शिक्षा-व्यवस्था में कितना लगाया जाता है यह बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है ? सच्चाई यह है कि शिक्षा व्यवस्था पर ध्यान ही नहीं दिया जाता है। मौलवी वर्ग की विडम्बनात्मक स्थिति पर नासिरा शर्मा ने इस प्रकार टिप्पणी की है- "मेहनतकश समुदाय भारतवर्ष का एक बहुसंख्यक समुदाय है, जिसके अस्सी प्रतिशत लोग खेती, दस्तकारी, कारखानादारी, मजदूरी इत्यादि करते हैं और यही अस्सी फीसदी लोग उस समुदाय का प्रतिनिधित्व करते नज़र आते हैं, जिसके स्पोक्समैन मौलवी बना दिए गए हैं। नेताओं के लिए ये वोट बैंक, साहूकारों के लिए आमदनी और व्यापारियों के लिए तिजोरी हैं। देश की सियासी व्यवस्था ने इनको असुरक्षित बना दिया है। इसलिए थोड़े से लाभ के लिए भुन जाना इनकी कमजोरी बन गई है और इनको हर समय धर्म के बिना जान-पहचान के खत्म हो जाने का खतरा लगा रहता है।"[58]

आज आवश्यकता आन पड़ी है कि भारत में शिक्षा का बहुतायत मामले में प्रचार-प्रसार हो तभी जाकर आर्थिक एवं सामाजिक समानता के लक्ष्य को पाया जा सकता है। गरीबी, अशिक्षा एवं सामाजिक शोषण झेल रहे समुदायों को राष्ट्र की मुख्यधारा में लाया जा सके। आम तौर पर यह मान्यता है कि सुख और समृद्धि के लिए शांति आवश्यक है, इस शांति का मार्ग नासिरा शर्मा ने इस प्रकार व्यक्त किया है -"यह जिम्मेदारी देश के जवान माँ-बाप पर है कि वे अपने नए जन्मे बच्चे को ऐसा संस्कार दें, जो वह पहले हिन्दुस्तानी बने, बाद में हिन्दू-मुसलमान। इससे दंगे फसाद खत्म होंगे, मगर हां, एक वर्ग को भारी हानि उठानी पड़ेगी। जो 'बांटो और राज करो' की नीति अपनाकर दूसरों की सुरक्षा, शांति जान-माल की कीमत पर अपनी जेबें भरते हैं, उनके लिए जरूरी है कि वे अब नया काम-धंधा तलाश करें और मेहनत की रोटी कमाने पर विश्वास करें और दूसरों का गला काटना और कटवाना बंद करें। बस, अब बहुत हो चुका।"[59]

नासिरा शर्मा के लेखन पर ज्योति सिंह ने इस प्रकार टिप्पणी की है- "लेखक को विशिष्ट बनाती है उसकी दृष्टि, जीवन को देखने का उसका अपना नजरिया। यह दृष्टि जब इन्सान और उसकी इंसानियत को किसी भी जाति, धर्म, मज़हब, सम्प्रदाय, देश, प्रान्त, सरहद तथा विचारधारा से ऊपर मानकर 'विश्वमानवतावाद' की पैरवी करते हुए भाई चारे का पैगाम देती है तो रचनाकार को महान बना देती है। नासिरा शर्मा के पास यही दृष्टि है, जो आधुनिक कथा लेखन में उनकी विशिष्ट उपस्थिति का अहसास कराती है।"[60]

2.4 मुस्लिम जीवन को केंद्र बनाकर लिखी गई कहानियों का कथ्य (सन् 2000 से 2010 तक)

इक्कीसवीं सदी के पहले दशक की कहानियों के कथ्य पर बात करें तो प्रमुख रूप से दंगे का भयावह रूप, मुस्लिम समाज में फैली रूढ़िवादिता, गरीबी, शिक्षा की समस्या, स्त्री-शोषण, बाबरी की घटना, गोधरा कांड एवं दम्पति टूटन आदि को कथ्य बनाकर कहानियाँ लिखी गई हैं।

भारत विविध धर्मों और सम्प्रदायों वाला देश है, जिसके कारण यहाँ पर आए दिन दंगे फसाद होते रहते हैं। एक बात और भी देखने को मिलती है कि जिस देश में एक धर्म वाले निवास करते हैं, वहाँ भी दंगे होते हैं। पाकिस्तान के सन्दर्भ में यह बात सटीक बैठती है। पाकिस्तान मुल्क जो इस्लामिक देश है। जहाँ पर शिया, सुन्नी, अहमदिया आदि जातियाँ निवास करती हैं, जिनमें परस्पर दंगे होते रहते हैं।

भारत में दंगे के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो, भारत में मुसलमानों के आगमन के पूर्व शैव, वैष्णव, शाक्त आदि सम्प्रदायों में टकराहट देखने को मिलती है। यही हाल हिन्दू और बौद्ध, जैन धर्म में भी रहा -"हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म का टकराव तो इतना व्यापक था कि बौद्ध धर्म का भारत से नामोनिशान ही मिट गया और उसकी अथाह सांस्कृतिक सम्पत्ति भी नष्ट हो गयी। जैनियों को भी अपनी धार्मिक विरासत की रक्षा के लिए वन-कंदराओं और निर्जन प्रदेशों की शरण लेनी पड़ी। आज भी जैनियों को कुछ स्थानों पर (जैसे-महाराष्ट्र में) धार्मिक उत्पीड़न सहना पड़ता है।"[61]

मुग़ल काल की सुदृढ़ राज्य व्यवस्था के बाद भारत देश में जो अराजकता फैली उसे ब्रिटिश राज ने अपने शासन द्वारा काबू में किया, जिससे प्रभावित होकर भारतेंदु काल के कवियों ने भी ब्रिटिश शासन की प्रशंसा की। ब्रिटिश राज में कानून के मजबूत शासन के चलते गिने-चुने दंगे के उदाहरण मिलते हैं। परन्तु 19 वीं सदी के अंतिम दशक में सांप्रदायिकता का रूप बदला-"उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में हिन्दुओं और मुसलमानों में चले सुधारवादी उदार आंदोलनों की प्रतिक्रिया में दोनों सम्प्रदायों में कट्टरवादी तत्व उभरने लगे थे। स्मरणीय है कि उन्हीं दिनों तिलक के नेतृत्व में हिन्दुओं की कट्टरवादी तत्व कांग्रेस पर हावी होने लगे थे और अंग्रेजों ने मुसलमानों को उकसाना शुरू किया था। हिन्दू पुनरुत्थानवाद की लहर में शुरू किए गए गणेशोत्स, शिवाजी उत्सव और दूर्गा पूजा उत्सव सांप्रदायिक तनाव का बहाना बनते थे।"[62] इसके बाद असहयोग आन्दोलन खत्म होने के बाद दंगे का भयानक रूप देखने को मिलता है। 1940 ई. के बाद मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान की माँग बढ़ने लगी, जिसका भरपूर समर्थन भारत के कम्युनिस्टों, राजगोपालचारी जैसे कांग्रेसी नेताओं तथा ब्रिटिश नौकरशाहों द्वारा था। दो आंदोलनों या कहें विद्रोहों खास तौर से भूमिगत और नौसेना

विद्रोह के कारण अंग्रजों को आभास होने लगा कि भारत देश से उनकी पकड़ ढीली पड़ रही है तो, मौके का लाभ उठाते हुए मुस्लिमों को भड़काना शुरू कर दिया और हड़बड़ी में आकर आज़ादी की घोषणा कर दी। जिसके कारण बँटवारे में बड़े पैमाने पर दंगे हुए-"दंगों की आग में 5 लाख के करीब जानें गईं और कई करोड़ लोग विस्थापित हुए।"[63] विभाजन के बाद साम्प्रदायिकता का नया रूप देखने को मिलता है। भारत में देश की कुल आबादी का 12 % आबादी मुस्लिम समुदाय की है। मुसलमानों को वोट बैंक के लिए कांग्रेस ने हद तक इस्तेमाल किया। खिलाफ़त आन्दोलन से ही कांग्रेस ने मुसलमानों के धार्मिक नेताओं, मुल्ला-मौलवियों से निकट सम्बन्ध बनाए रखे थे- "मुस्लिम सम्प्रदाय के प्रति कांग्रेस की नीतियों के फलस्वरूप इस सम्प्रदाय में आत्मविश्वास का निर्माण नहीं हुआ और वे धार्मिक मामलों में इतने संवेदनशील हो गए कि मामूली उकसाव मिलने पर भी उन्हें अस्तित्व का खतरा हो जाता था और उनकी भावनाएँ भड़क उठती थीं।"[64] विभाजन के बाद से अप्रैल 1979 में जमशेदपुर में हुए दंगे तक बड़े पैमाने पर दंगे नहीं हुए। मुहर्रम, होली, दूर्गा पूजा, गणेश पूजा आदि अवसरों पर जुलूसों और शोभा यात्राओं के मार्ग को लेकर छोटे-मोटे झड़पें होती रहीं, लेकिन उन पर जल्दी ही काबू पा लिया जाता था।

1980 के चुनावों के बाद इंदिरा गाँधी के नेतृत्व में जो सरकार बनी बहुत ही सुदृढ़ थी, इस सरकार में अपराधी तत्वों को फलने-फूलने का मौका मिला, "अगस्त 1980 में मुरादाबाद में बरतन उद्योग से फलते-फूलते मुस्लिम परिवारों पर दंगे का कहर बरसा। ईद की नमाज के समय ईदगाह में एक सूअर के घुस आने से दंगा शुरू हुआ। सूअर को न रोकने का आरोप लगाकर मुसलमानों ने पुलिस पर अपना गुस्सा उतारना शुरू किया और जवाब में पुलिस ने नमाज के लिए एकत्रित बच्चों, बूढ़ों जवानों की भीड़ पर अंधाधुंध गोलियाँ चला दीं। प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी को भी स्वीकार करना पड़ा कि प्रशासन तंत्र की हालत बिल्कुल खस्ता हो गयी है।"[65] इस दंगे के कारण तत्कालीन सरकार की जमकर आलोचना हुई। इसके बाद 1991 ई. में बाबरी कांड, 2002 ई. में गोधरा कांड, 2008 ई. में कंधमाल की घटना आदि सांप्रदायिक दंगे देखने को मिलते हैं।

दंगे को केंद्र में रखकर या कहें कथ्य बनाकर बहुत सारी कहानियाँ लिखी गई हैं- जिहाद (सरोज खान 'बातिश')2001, अलविदा बीसवीं सदी (शाज़ी जमां)2001, एक बिन लिखी रज्मिया (इंतजार हुसैन)2001, अँधेरे में (मंजूर एहतेशाम) 2001, आरसी (जाबीर हुसैन)2002, आतंक (महमूद अय्युबी)2003, परिंदे का इन्तजार-सा कुछ (नीलाक्षी सिंह)2005, चादर (सलाम बिन रज्ज़ाक)2006, जख्म, मुश्किल काम, मैं हिन्दू हूँ, शाह आलम कैम्प की रुहें (असग़र वजाहत)2006, मार-मारकर (हबीब कैफ़ी)2007, ज़िन्दगी (शाहिद अख्तर)2007, बदलते रंग (शमोएल अहमद)2009, ट्रांजिंट की ज़िन्दगी (नूर जहीर)2009, दहशत गर्द (अनवर सुहैल)2009, नजरबंद (नसरीन बानो)2009, बहराम का घर (शमोएल अहमद)2009, चाँद अभी ढला नहीं (अहमद निसा)2010, आजकल (गीतांजलि श्री)2010 इत्यादि ।

मुस्लिम समाज में धर्म का प्रभाव बहुत ही जोरों पर दिखाई पड़ता है। रूढ़िवादिता मुस्लिम समाज को दिन-प्रतिदिन खोखला करती चली जा रही है। आम-आदमी के ज़ेहन में मुल्ला-मौलवियों द्वारा यह बात भर दी जाती है कि सब अल्ला की मेहरबानी है- लोग अमीर और गरीब अपने भाग्य से होते हैं। यहाँ पर कर्म को झुठला दिया जाता है। इस कथ्य की कहानियाँ कुलदीप नैयर और पीर साहब (गुलजार)2001, अनवर भाई नहीं रहे (अनुज)2001, तमाशा (मंजूर एहतेशाम)2005, मियाँ (हरिओम)2006, शेर खां (विजय)2006, खबीस (अकिल कैस)2007, मार-मारकर (हबीब कैफ़ी)2007, जय श्री बाबर (हबीब कैफ़ी)2009, दहशत गर्द (अनवर सुहैल)2009 आदि हैं।

मुस्लिम समाज में गरीबी का सबसे बड़ा कारण है- युवाओं का बेरोजगार होना। इस समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार से इन युवाओं की स्थिति अच्छी नहीं हो पाती। वर्तमान जीवन की सबसे बड़ी विसंगति है- बेरोजगारी। पुष्पपाल सिंह के शब्दों में- "बेरोजगारी का एक पक्ष यह भी है कि उचित व्यक्ति को समुचित रोजगार नहीं मिलता है। किसी पद के लिए प्रत्याशी की योग्यता, शिक्षा और प्रतिभा को न देखकर सिफारिश की शक्ति को देखा जाता है। कदाचित इससे पहले इस देश में योग्यता, शिक्षा और प्रतिभा की ऐसी दारुण अवमानना कभी नहीं हुई थी। अवसर की समानता का मूलाधिकार संविधान की पोथियों में कैद होकर रह गया है। इन स्थितियों

ने युवा मन में एक गहरी निराशा और आक्रोश को जन्म दिया।"[66] तलाफ़ी, तमाशा बशीर खां, मालिक माडर्न केनिंग आर्ट (मंजूर एहतेशाम)2001, मैनेजर जावेद हसन (इक़बाल रिज़वी)2007, मौसम (मो.आरिफ)2008, जय श्री बाबर (हबीब कैफ़ी)2009, चहल्लुम (अनवर सुहैल)2009 आदि कहानियाँ मुस्लिम समाज में व्याप्त गरीबी, बेरोजगारी को कथ्य बनाकर लिखी गई हैं।

मुस्लिम समाज में शिक्षा की समस्या को भी देखा जा सकता है। इस समाज में आज भी शिक्षा की कमी है। बच्चों को शिक्षा अच्छे ढंग से नहीं दी जाती है, बल्कि जल्दी ही काम पर लगा दिया जाता है। जिससे इनका जीवन खराब हो जाता है। इस कथ्य की कहानियाँ हैं- तहारत (शकील)2000, तरक्की (मेराज अहमद), एवं 2005 मॉमु (हसन जमाल)2008 आदि।

आज भी मुस्लिम स्त्रियों की स्थिति दयनीय है। मुस्लिम स्त्रियाँ आंतरिक और बाह्य दोनों ओर से दमन का शिकार होती हैं। पुरुष वर्ग इस्लाम के नाम पर अपनी स्त्रियों को गुमराह या कहें दबाते हैं। यही कारण है कि मुस्लिम स्त्रियाँ इस्लाम की चहारदीवारी में स्वतंत्र महसूस नहीं करतीं। इनकी समस्याओं के लिए कई कारण जिम्मेदार हैं। अधिकांश मुसलमान अपने छोटे-छोटे रोजगार चलाते हैं। फिर वे मुसलमान जो ग्रामीण क्षेत्रों में खेतिहर मजदूर हैं, वे अधिक परम्परावादी हैं। इन्हें कुरान और हदीश के बारे में लगभग जानकारी शून्य के बराबर होती है। इनके लिए स्थानीय मस्जिद के इमाम के शब्द अल्लाह के हुक्म के बराबर है, जिसका पालन न करना जहन्नुम में जाने के बराबर है। इस धारणा को जेहन में रखकर अपना जीवन-यापन करते हैं और अपनी स्त्रियों को इसका पालन करने के लिए विवश करते हैं। एक बात और देखने को मिलती है कि मस्जिद का इमाम भी ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं होता है और गरीब परिवार से भी होता है। इस्लाम शरियत के बारे में उसकी जानकारी सीमित होती है। "उसके फतवे अज्ञानता पर आधारित रहते हैं। इमराना के मामले में उसके गाँव के इमाम ने फतवा जारी कर यह कहा था कि उसे अपना बलात्कार करने वाले ससुर से ही शादी करनी चाहिए। इस तरह का फतवा शरियत के खिलाफ है। मीडिया भी इस तरह के मसलों को बहुत अधिक प्रचार देता है।"[67]

मुस्लिम स्त्रियों की खराब स्थिति के लिए उलेमा भी जिज्म्मेदार होते हैं। असग़र अली इंजीनियर के शब्दों में- "दुनिया में सभी जगह ये उलेमा कुरआन के मूल्यों पर, जिस भी समाज में वे रहते हैं, उसके पितृसत्तात्मक मूल्यों को अधिक तरजीह देते हैं। कुरआन में पुरुषों के कर्तव्यों और महिलाओं के अधिकारों की बात कही गई है परन्तु उलेमा इसके ठीक उलट, पुरुषों के अधिकारों और महिलाओं के कर्तव्यों की चर्चा करते हैं। यह तो उनकी कुरआन के प्रति निष्ठा का आलम है।"[68] ग्रामीण इलाकों में मुस्लिम स्त्रियों की स्थिति और बदतर होती है। उनको यह अधिकार नहीं दिया गया है कि वे शोषण के विरुद्ध कुछ बोल सकें- "ग्रामीण इलाकों में कोई महिला फतवे का उल्लंघन करने का साहस नहीं कर सकती, भले ही वह फतवा कितना भी अनुचित क्यों न हो। उसे समाज में रहना होता है और उसके अपने बाल बच्चों के शादी ब्याह करने होते हैं। जिन लोगों ने सामाजिक बहिष्कार का सामना किया है वे ही समझ सकते हैं कि वह कितना कठिन काम है। हमारे उलेमा परिस्थितियों और समस्याओं पर विचार किए बगैर यांत्रिक ढंग से फतवे जारी करते रहते हैं।"[69]

शरियत में बहुत सारे ऐसे प्रावधान किए गए हैं, जिनसे स्त्रियों की स्थिति को सुदृढ़ किया जा सकता है। लेकिन समाज की व्यवस्था जिन उलेमाओं के हाथों में होती है, वे इसका एक बार भी जिक्र नहीं करते- "तीन बार तलाक कहकर विवाह विच्छेद करने की व्यवस्था अहल्-ए-हदीथ शाखा में नहीं है परन्तु हनीफी और शकील शाखाओं में है। इस तरह, अहल्-ए-हदीथ के इस प्रावधान का इस्तेमाल मुँह जबानी तलाक की व्यवस्था को समाप्त करने के लिए किया जा सकता है। शरियत के विभिन्न शाखाओं के महिला हितैषी प्रावधानों का यदि संकलन कर उन्हें लागू किया जावे तो इससे मुस्लिम महिलाओं की स्थिति में बहुत सुधार आवेगा।"[70]

असग़र अली इंजीनियर ने उलेमाओं के बारे में यहाँ तक कह दिया है कि, "अगर उलेमा दूसरों की परेशानियों का ख्याल नहीं रखेंगे और अपनी लकीर पीटते रहेंगे तो वे न तो इस्लाम का भला करेंगे और न ही महिलाओं का।"[71]

स्त्री शोषण को आधार बनाकर बहुत सारी कहानियाँ लिखी गई हैं जिनमें प्रमुख हैं- पर्सनल एकाउंट (फहमीदा रियाज़)2000, नुक्ताचीं है गमे-दिल (हसन जमाल)2000, घेरा (मंजूर एहतेशाम)2001, तपती रेत (जेबा रशीद)2004, नेक परवीन (गज़ाल ज़ैगम)2004, उजबक (अकिल कैस)2004, पीरू हज्नाम उर्फ़ हजरत जी (अनवर सुहैल)2006, उठो सहेली उठो, जीव हत्या, नसीबन और एक थी कम्मो (अनवर सुहैल)2006, बाबुल का द्वार (नसरीन बानो)2009, ऊँट (शमोएल अहमद)2009, कागज़ी बादाम (नासिरा शर्मा)2010, मोमजामा (नासिरा शर्मा) 2010 इत्यादि।

बाबरी मस्जिद की घटना, 1984 का दंगा और गोधरा कांड को कथ्य बनाकर भी कहानियाँ लिखी गई हैं- परिंदे का इन्तजार सा-कुछ (नीलाक्षी सिंह)2005, बुढ़वा मंगल, नहीं मानेंगे वहीं रहेंगे अब्बा (अनवर सुहैल)2006, एक मस्जिद समानांतर (नीला प्रसाद)2006, मेरे मौला (असग़र वजाहत)2006, ग्यारह सितम्बर के बाद (अनवर सुहैल)2006, ट्रॅाजिंट की ज़िन्दगी (नूर जहीर)2009, दहशत गर्द (अनवर सुहैल)2009।

मुस्लिम समाज में दाम्पत्य सम्बन्धों में टूटन को कथ्य बनाकर भी कहानियाँ लिखी गई हैं। आधुनिक जीवन-शैली की बहुत बड़ी बिडम्बना यह है कि पति-पत्नी के बीच के सम्बन्धों में दरकन, टूटन अथवा अलगाव-सा है। आज विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक कारणों से दाम्पत्य सम्बन्ध अत्यंत सरल और तनाव पूर्ण परिस्थितियों में है- "दाम्पत्य गत दूरियों, अपूर्णता, रिक्तता-बांध और एकाकीपन के दंश ने अनेक वैवाहिक सम्बन्धों को खोखला और मात्र जीने की मजबूरी का रूप दे दिया है, दम्पति चुपचाप इस विष को पीने के लिए जीने को अभिशप्त हैं।"[72] दाम्पत्य सम्बन्धों में तुर्शी का एक बहुत बड़ा कारण है- पति-पत्नी का एक दूसरे पर शक करना अर्थात किसी तीसरे की उपस्थिति का वहम। नेक परवीन (गज़ाल ज़ैगम) इसी ढब की कहानी है। दाम्पत्य सम्बन्धों के टूटन का कारण यह भी है कि घर में आर्थिक समृद्धि और भौतिक सुख के बावजूद जब नारी पति को सम्पूर्ण रूप से प्राप्त कर नहीं पाती। "जब नारी घर में आर्थिक समृद्धि और भौतिक सुख सुविधाओं के चरम रूप को भी आयत्त करके पति को सम्पूर्ण रूप में नहीं पाती है तो उसे अपना दाम्पत्य बहुत छूंछा, रीता और व्यर्थ लगता है। उसे अपनी नौकरानी या सड़क पर काम करती अथवा फुटपाथ पर सोती

नारी अपने से अधिक सुखी गृहस्थिन लगती है । अपनी आर्थिक सुख-सुविधाओं को छोड़ वह एक उस सामान्य नारी का जीवन जीना चाहती है, जो पति के सुख को पूरी तरह पाए हुए है ।"[73] घेरा (मंजूर एहतेशाम)2001, अँधेरे में, रमजान में मौत, खेल (मंजूर एहतेशाम)2001, मिश्री की डली (शमोएल अहमद)2009, बेलपत्र (गीतांजलि श्री)2010 इसी तरह की कहानियाँ हैं।

निष्कर्ष:

उपर्युक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि हिंदी कहानी में मुस्लिम जीवन की अभिव्यक्ति कहानी विधा के प्रारम्भ से ही मिलती है । चाहे हिन्दू कहानीकार हों या मुस्लिम कहानीकार दोनों की कहानियों में मुस्लिम समुदाय की पूरी झाँकी मिलती है। मुस्लिम समुदाय की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति का पूरा व्यौरा हिंदी कहानी में मौजूद है।

सन्दर्भ

1. नासिरा शर्मा-राष्ट्र और मुसलमान, पृ. 68

2. नासिरा शर्मा-राष्ट्र और मुसलमान, पृ. 70

3. नासिरा शर्मा-राष्ट्र और मुसलमान, पृ. 71

4. सं. रमणिका गुप्ता-युद्धरत आम आदमी, पिछड़ा वर्ग विशेषांक, 2015, वही, पृ. 84

5. वही, पृ. 86

6. वही, पृ. 88

7. वही, पृ. 88

8. वही, पृ. 90

9. गोपाल राय-हिंदी कहानी का इतिहास, भाग-1, पृ. 139-140

10. वही पृ. 152

11. मधुरेश-हिंदी कहानी का विकास, पृ. 45

12. गोपाल राय-हिंदी कहानी का इतिहास, भाग-1, पृ. 442

13. गोपाल राय-हिंदी कहानी का इतिहास, भाग-2, पृ. 216

14. गोपाल राय-हिंदी कहानी का इतिहास, भाग-3, पृ. 340

15. वही, पृ. 341

16. वही, पृ. 403

17. वही, पृ. 418

18. सं. वकार नासिरी-संवेद, वर्ष-3, अंक-9, विशेषांक-2006, पृ. 82

19. वही, पृ. 256

20. वही, पृ. 256

21. सं. रवीन्द्र कालिया-वागर्थ, मई 2004, पृ. 17

22. इस्मत चुगताई-प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ. 18

23. वही, पृ. 22

24. वही, पृ. 21

25. वही, पृ. 25

26. सं. विभूति नारायण राय-वर्तमान साहित्य, अगस्त 2015, पृ. 32

27. सं. रवीन्द्र कालिया-वागर्थ, मई 2004, पृ. 17

28. सं. एम. फीरोज खान-हिंदी के मुस्लिम कथाकार: शानी, पृ. 232

29. वही, पृ. 233

30. वही, पृ. 230

31. वही, पृ. 241

32. वही, पृ. 242

33. वही, पृ. 245

34. गोपाल राय-हिंदी कहानी का इतिहास, भाग-2, पृ. 323

35. वही, पृ. 495

36. अब्दुल बिस्मिल्लाह-अतिथि देवो भव, पृ. 11

37. वही, पृ. 18

38. वही, पृ. 19

39. वही, पृ. 41

40. सं. एम. फीरोज अहमद-वांग्मय त्रैमासिक-अक्टूबर-दिसंबर,2015, पृ. 107

41. अब्दुल बिस्मिल्लाह-जीनिया के फूल, पृ. 363

42. वही, पृ. 363

43. वही, पृ. 364

44. वही, पृ. 365

45. नासिरा शर्मा-पत्थर गली, पृ. 7

46. वही, पृ. 145

47. वही, पृ. 41

48. वही, पृ. 48

49. वही, पृ. 164

50. सं. एम. फीरोज अहमद-नासिरा शर्मा: एक मूल्याकन, पृ. 226

51. वही, पृ. 231

52. वही, पृ. 236

53. वही, पृ. 238

54. नासिरा शर्मा-राष्ट्र और मुसलमान, पृ. 8

55. वही, पृ. 13

56. वही, पृ. 174

57. सं. एम. फीरोज अहमद-नासिरा शर्मा: एक मूल्याकन, पृ. 311

58. नासिरा शर्मा-राष्ट्र और मुसलमान, पृ. 62

59. वही, पृ. 17

60. सं. एम. फीरोज अहमद-नासिरा शर्मा एक मूल्यांकन, पृ. 207

61. सं. राजकिशोर-भारतीय मुसलमान मिथक और यथार्थ, पृ. 80

62. वही, पृ. 81

63. वही, पृ. 82

64. वही, पृ. 83

65. वही, पृ. 86

66. पुष्पपाल सिंह-समकालीन कहानी:नया परिप्रेक्ष्य, पृ. 161

67. असग़र अली इंजीनियर-धर्म और साम्प्रदायिकता, पृ. 221

68. वही, पृ. 257

69. वही, पृ. 258

70. वही, पृ. 259

71. वही, पृ. 260

72. पुष्पपाल सिंह-समकालीन कहानी:नया परिप्रेक्ष्य, पृ. 205

73. वही, पृ. 208

तृतीय अध्याय

मुस्लिम जीवन की कहानियों की आलोचना : वस्तु एवं शिल्प

3.1 शिल्प और वस्तु की अवधारणा

"'शिल्प' का शाब्दिक अर्थ है निर्माण अथवा गढ़न के तत्व । किसी साहित्यिक कृति के संदर्भ में 'शिल्प' की दृष्टि से मूल्यांकन का बड़ा महत्व है ।"[1] कहानी के शिल्प का विवेचन कथानक, पात्र एवं चरित्र, वातावरण, भाषा-शैली एवं उद्देश्य की दृष्टि से किया जाता है । किसी रचना को गढ़ने में जिन उपादानों की सहायता ली जाती है उसे 'शिल्प' कहते हैं । विचारक शोरर के अनुसार- "जब हम शिल्प की बात करते हैं तब हम लगभग हर चीज की बात करते हैं ; क्योंकि शिल्प ही वह साधन है जिसके माध्यम से लेखक का अनुभव, जो कि उसकी विषय-वस्तु है, उसे अपनी ओर ध्यान देने के लिए विवश करता है, शिल्प वह एक मात्र साधन है जिसके द्वारा वह अपने विषय को खोजता है, उसकी छानबीन करता है, उसका विकास करता है, जिसके माध्यम से वह उसके अर्थ को सम्प्रेषित करता है, और अंततः उसका मूल्यांकन करता है ।"[2]

शिल्प शब्द 'शिल्प' धातु और 'पक्' प्रत्यय से बना है जिसको अंग्रेजी में 'टेक्नीक' कहते हैं । दुर्गा प्रसाद मिश्र के शब्दों में- "साहित्य के प्रत्येक अंग-उपांग के कुछ निश्चित तत्व रहते हैं । और मनोवांछित अभिप्राय तक पहुँचने हेतु कलाकार की कला सृजन में जो प्रक्रिया करनी पड़ती है, उसे टेक्नीक, शिल्प विधान कहते हैं ।"[3]

'वस्तु' को साहित्य के सन्दर्भ में किसी रचना के विषय के रूप में देख सकते हैं । उदाहरण के तौर पर असगर वज़ाहत की कहानी 'मैं हिन्दू हूँ' को देख सकते हैं । इस कहानी का विषय ही 'वस्तु' है । यहाँ पर कहानी के सन्दर्भ में सम्वेदना और कथावस्तु के अंतर को समझ लेना शोध की दृष्टि से समीचीन होगा । योगेन्द्र प्रताप सिंह के शब्दों में- "कहानी का प्राण उसकी सम्वेदना है । सम्वेदना का तात्पर्य कथा का वह केन्द्रीय बिन्दु

है - जिस पर कथावस्तु का समग्र ढाँचा आधारित है। कथा की सम्वेदना को कहानीकार वस्तु विन्यास द्वारा पहले उसे आस्वादनधर्मी और पुनःमूल्यधर्मी बनाता है। कथा के आस्वादन, प्रभाव एवं मूल्य अर्थात कहानी के मन्तव्य एवं उद्देश्य का संबंध प्रकारांतर भाव से कथा की सम्वेदना से ही जुड़ा हुआ है। कवि के भोगे हुए अनुभव का निष्कर्ष जो सम्पूर्ण कथावस्तु के आवरण द्वारा पाठक के चित्त को अनुभव की सार्थकता से निरन्तर अभिभूत करता रहता है, वह सम्वेदना का अपना प्रभाव है।"[4] उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि कहानी के विषयवस्तु की मूलचेतना सम्वेदना है। रही बात कथावस्तु की तो कहानी के स्थापत्य का जो ढाँचा तैयार किया जाता है उसे कथावस्तु के अंतर्गत रखा जा सकता है। आलोचक योगेन्द्र प्रताप सिंह ने कथावस्तु को इस प्रकार विश्लेषित किया है- "यदि कहानी की सम्वेदना उसके प्राण तत्व के रूप में है तो कथावस्तु की स्थिति शरीर की भांति है। उसी के क्रोड में कहानी की प्राण सम्वेदना अपने मंतव्य को कह पाती है। इसलिए यह कहानी का सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपकरण है। सामान्यतया कथा-आलोचकों ने कथावस्तु की संक्षिप्तता, उसकी मौलिकता, रोचकता, क्रमबद्धता, निरंतर उत्सुकता को बनाए रखने के कारण इसे विशेष महत्व दिया है।"[5]

अब शिल्प और वस्तु के अन्तःसम्बन्ध पर बात करें तो शिल्प किसी विषयवस्तु को रचना के रूप में गढ़ने का तरीका है जो उस विषयवस्तु की अभिव्यक्ति को प्रभावपूर्ण बनाता है। किसी वस्तु को व्यवस्थित रूप देने में शिल्प की अहम भूमिका होती है। किसी विषयवस्तु के बिना कोई कहानीकार रचना नहीं कर सकता। कभी-कभी कहानीकार अपनी कहानी में शिल्प पर अत्यधिक ध्यान दे देता है जिससे कहानी जो कहना चाहती है वह कह नहीं पाती है, इसके ठीक विपरीत कोई कहानीकार शिल्प पर ध्यान न देकर समाज के यथार्थ को ज्यों का त्यों अपनी रचना में रख देता है, इस प्रकार की कहानियाँ कभी सफल हो जाती हैं, कभी असफल। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी भी कहानीकार के लिए वस्तु और शिल्प दोनों के सामंजस्य को समझना अनिवार्य होता है, तब जाकर एक अच्छी कहानी बनती है। अतः कहा जा सकता है कि वस्तु और शिल्प में बहुत ही घनिष्ठ संबंध है।

कहानी के परंपरागत रूप में शिल्प के अंतर्गत निम्नलिखित छः बिन्दुओं की चर्चा की जाती थी :

1. कथावस्तु

2. चरित्र-चित्रण

3. संवाद

4. देशकाल

5. भाषा-शैली

6. उद्देश्य

हिन्दी कहानी के प्रारम्भिक दौर से ही कहानी में शिल्पगत वैविध्य परिलक्षित होता है। कथा सम्राट प्रेमचन्द को आधार बनाकर स्वतंत्रता से पूर्व कहानी के विकास को तीन पक्षों में रखकर देख सकते हैं- पहला, प्रेमचन्द पूर्व युग दूसरा, प्रेमचन्द युगीन और तीसरा, प्रेमचन्दोत्तर युग। प्रेमचन्द पूर्व युग की अधिकांश कहानियाँ अनूदित हैं, इसलिए इस युग में शिल्प पर ज्यादा ध्यान कहानीकारों का नहीं गया है। ज्यादातर कहानियाँ उपदेशात्मक हैं। प्रेमचन्द युगीन कहानियों में शिल्प का आरम्भिक विकास दिखाई पड़ता है। इस युग में प्रसाद, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', वृंदावनलाल वर्मा, गुलेरी आदि कहानीकार प्रसिद्ध हैं। हिन्दी कहानी में प्रेमचन्द के आगमन से कहानी विधा का रूप-रंग ही बदल गया ख़ास तौर पर शिल्प गठन के क्षेत्र में। प्रेमचन्द के समकालीन जितने भी रचनाकार रचनाकर्म में सक्रिय रहे, उन्होंने भी कथा के महत्व, चरित्र की अनिवार्यता, भाषा की सहजता तथा जीवन को एक दृष्टि के आधार पर देखने की महत्ता को स्वीकारा, जिससे शिल्प पक्ष स्थिर हुआ।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी सिर्फ तीन कहानियाँ लिखकर कहानी विधा के क्षेत्र में चर्चित हो गए। उनकी कहानी 'उसने कहा था' का शिल्प पक्ष बहुत ही मजबूत है। इस कहानी में पात्रों के संवाद, उनका चरित्र-चित्रण, भाषा-शैली आदि का गढ़न विशिष्ट है। आलोचक मधुरेश के शब्दों में- " 'उसने कहा था' प्रथम विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखी गई कहानी है, जो सन् 1914 में उसके आरम्भ होने के बाद ही लिखी गई।...गुलेरीजी ने युद्ध

में प्रत्यक्ष रूप से भाग लिए बिना भी सैनिकों की दिनचर्या और सैनिक कार्यवाही का जैसा जीवंत वर्णन किया है, उन वर्णनों की चित्रात्मक शैली का इस कहानी की सफलता में बहुत बड़ा योगदान है।...'उसने कहा था' वस्तुतः हिन्दी की पहली कहानी है, जो शिल्प विधान की दृष्टि से हिन्दी कहानी को एक झटके में ही प्रौढ़ बना देती है।"[6]

विश्वम्भरनाथ शर्मा की कुछ कहानियों में शिल्प का गठन मजबूत दिखाई पड़ता है, उदाहरण के तौर पर 'ताई', 'माता का हृदय', 'नास्तिक प्रोफ़ेसर', 'नर-पशु', 'वह प्रतिमा', 'प्रेम का पापी', 'अंतिम भेंट', 'सुधार' एवं 'उद्धार' आदि अन्य कहानियों को देख सकते हैं ।

प्रेमचन्दोत्तर कहानीकारों में जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी और यशपाल आदि नाम चर्चित हैं जिनकी कहानियों का शिल्प पक्ष बेजोड़ है। जैनेद्र की कहानियों का मूल स्तम्भ जीवन-दर्शन और मनोविज्ञान है। इनकी कहानियों की विषयवस्तु ख़ासकर धर्म, शिक्षा नीति और आदर्श से जुड़ी हुई है, जिसके कारण कहानियों का शिल्प बहुत हद तक बदल गया है। लक्ष्मीनारायण लाल के शब्दों में- "दार्शनिक धरातल की कहानियों में कथानक-निर्माण में बहुत कम कला है, क्योंकि इनका कथा-विधान प्राचीन शैली की वार्ता, कथा दृष्टांत आदि के प्रकाश में निर्मित हुआ है। लेकिन इन कहानियों में जैनेन्द्र की कला की वास्तविकता स्पष्ट हुई है। उन्होंने यहाँ चरित्र-निर्माण, चरित्र-चित्रण और उनके व्यक्तित्व प्रतिष्ठा में आश्चर्यजनक शिल्प कौशल का परिचय दिया है। वस्तुतः यहाँ चरित्र-निर्माण में कल्पना तत्व है। फिर भी प्राचीन वार्ताओं, कथाओं और दृष्टांतों के चरित्रों की भाँति यहाँ के चरित्रों में अपना अलग-अलग आकर्षण है।"[7] इस उद्धरण से स्पष्ट है कि जैनेन्द्र व्यक्तिवादी दर्शन के हिमायती थे, इसलिए उनकी कहानियों के पात्रों के चरित्र में बहुत परिवर्तन दिखाई पड़ता है और शिल्प गठन भी नवीन लगता है।

अज्ञेय की उन कहानियों का शिल्प बहुत ही उच्चकोटि का है, जो मिश्रित शैली में लिखी गई हैं। अज्ञेय मूलतः मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के कहानीकार हैं, इसलिए उनकी कहानियों के पात्रों के चरित्रों में बहुत ही वैविध्य मौजूद है। 'छाया', 'द्रोही' आदि कहानियाँ शिल्प की दृष्टि से अपनी पूर्ववर्ती कहानियों से बहुत ही भिन्न हैं।

यशपाल समाज में व्याप्त समस्या को मार्क्सवादी दृष्टि से देखने वाले कहानीकार हैं। इसलिए उनकी कहानियों का शिल्प एक अलग रूप में नज़र आता है। उनकी कहानियों की बुनावट में प्रभाव की तीव्रता अधिक है। जहाँ तक पात्रों की बात है तो उनके पात्र सर्वसाधारण, यथार्थ और मानव संघर्षों के प्रतीक के रूप में आते हैं। उनकी कहानियों में संवाद बहुत ही कम होते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वस्तु और शिल्प में जो नए-नए प्रयोग किए गए वह नई कहानी के पूर्व अर्थात जैनेन्द्र और अज्ञेय के काल में। यह पिछली पीढ़ी इस सन्दर्भ में इतनी सशक्त और जागरूक थी कि इसके हाथों कहानी अपनी सर्वोच्च प्रयोगशीलता पर जा पहुँची। नई कहानी के दौर में कहानी में बिम्बों , प्रतीकों, अमूर्त का प्रयोग, सांकेतिकता, अनुभव की प्रामाणिकता आदि पर जोर दिया गया है। "शिल्प परिष्कार, शिल्प आग्रह से कहानीकार की दृष्टि हटकर सीधे कहानी के नए सन्दर्भ शोध, जीवन-बोध और परिवेश चेतना पर गई। फल यह हुआ कि शिल्प कहानीकार की दृष्टि का सहज अनुवर्ती सत्य बन गया। और उसकी संचालिका कहानी की आत्मा स्वयं बन गई। कहानी का विचार, उसकी अनुभूति, उसके अविच्छिन्न जीवन-सन्दर्भ। जीवन के जीवित संघर्षमय स्थितियों से सीधे लोहा लेने में प्रण।"[8] नई कहानी के शिल्प में बँधा-बँधाया शास्त्रीय रूप अपने आप महीम हो गया। कहने का तात्पर्य यह है कि शिल्प का जो पहले एक ढाँचा था वह लुप्त हो गया, अब कहानी में अनुभव की प्रामाणिकता पर जोर दिया जाने लगा। चरित्र-चित्रण, संवाद, कथावस्तु और उद्देश्य आदि में परिवर्तन आ गए।

नई कहानी में सामाजिक जीवन के बदलते स्वरूप को रचना में अभिव्यक्त करने के लिए अनेक पद्धतियाँ अपनाई गईं। नई कहानी में भाषा का जो नया संस्कार दिखाई पड़ता है, वह मूल संवेदना में बदलाव के कारण। नई कहानी में शिल्प के स्तर पर जो बदलाव आया उसे बिम्बात्मक भाषा, सांकेतिकता, मिथक एवं लोककथा, फैंटेसी आदि के रूप में देख सकते हैं। उदाहरण के लिए राजेन्द्र यादव की 'प्रतीक्षा', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की 'सूटकेस', कमलेश्वर की 'मांस का दरिया', कृष्णा सोबती की 'सिक्का बदल गया' और 'ये

लड़की', मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक' आदि कहानियों को देख सकते हैं जिनमें शिल्पगत परिवर्तन परिलक्षित होता है।

नई कहानी के बाद कहानी विधा के क्षेत्र में कई कहानी आन्दोलन सामने आए, जिनमें अकहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी, जनवादी कहानी, सक्रिय कहानी आदि। अकहानी आन्दोलन, नई कहानी के विरोध में चला, यह विरोध केवल सम्वेदना के स्तर पर ही नहीं बल्कि रचना विधान को लेकर भी था। अकहानी के प्रमुख हस्ताक्षर गंगाप्रसाद विमल, रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह, राजकमल चौधरी, जगदीश चतुर्वेदी आदि हैं। गंगाप्रसाद विमल अकहानी को आन्दोलन न मानकर एक दृष्टि मानते हैं, उन्हीं के शब्दों में -"अकहानी का सन्दर्भ इस दृष्टि से आन्दोलन नहीं है, कोई मंच नहीं है, तथा कोई विशेषण भी नहीं है। मूल्यांकन की दृष्टि से कथा के रचना विधान का पृथक्तव स्पष्ट करने के लिए ही अकहानी का नामांकन किया गया हो- यह भी पूर्ण रूप से सत्य नहीं है। वस्तुतः अकहानी कथा के स्वीकृत आधारों का निषेध तथा किसी तरह के मूल्य स्थापन का अस्वीकार है ....।"[9]

शिल्प की दृष्टि से इस आन्दोलन में कोई बड़ा बदलाव देखने को नहीं मिलता है, हाँ पात्रों के चरित्रों में बदलाव जरूर देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए 'नाटक अधूरा', 'विध्वंस', 'अभिशाप' आदि अन्य कहानियों को देख सकते हैं।

मौटे तौर पर सचेतन कहानी, समांतर कहानी, जनवादी कहानी और सक्रिय कहानी आन्दोलनों के दौर में जो कहानियाँ लिखी गईं, उनके शिल्प के बारे में हम कह सकते हैं कि शिल्प पर ध्यान न देकर कहानीकारों ने अपने-अपने दौर में घट रही घटनाओं को अंकित करने पर बहुत ही बल दिया है।

समकालीन कहानी में सपाटबयानी, किस्सागोई के माध्यम से समाज में व्याप्त समस्याओं को अंकित करते हुए नए शिल्प का विकास किया गया। समकालीन कहानीकारों में अखिलेश, हृदयेश, असगर वजाहत, संजीव, उदय प्रकाश, ममता कालिया, राजी सेठ, सूर्यबाला, गीतांजलिश्री, सारा राय आदि चर्चित हैं, जिनकी कहानियों का शिल्प विशिष्ट है। उदाहरण के लिए अखिलेश की कहानियों के शिल्प के बारे में बात करें तो

उनकी कहानियों के पात्र कई वर्गों से आते हैं। भाषा में सहजता का पुट ज्यादा दिखाई पड़ता है। आलोचक मधुरेश के के अनुसार- "अखिलेश की कहानियों की भाषा बिम्बों के सहारे चित्रों के रचाव वाली भाषा है। उसमें परिवार की छोटी-छोटी खुशियाँ गौरैयों की तरह फुदकती हैं। अखिलेश के यहाँ भी भाषा के साथ बहुत और खिलंदरेपन की प्रवृत्ति मौज़ूद है। लेकिन उनका खिलंदरापन उस रूपवादी खिलंदरेपन से अलग है जो केवल शब्दों से खेलने में सुख लेता है - बहुत कुछ बिल्ली की तरह जो अपने शिकार को खेल-खेलकर मारती है। अखिलेश के यहाँ भाषा का यह खिलंदरापन और चुहल भरा रचाव एक समूची पीढ़ी के व्यर्थता के अवसाद के विरुद्ध एक रचनात्मक हस्तक्षेप की तरह है।"[10] उनकी 'जलडमरूमध्य' कहानी चर्चित कहानी है। इसकी कथावस्तु बहुत ही विस्तृत है, लेकिन कहानी में तारतम्यता की कमी नहीं है। कहानी में सभी पात्रों का चरित्र पूरी तरह खुलकर सामने आता है, चाहे वह सहाय जी हो उनका बेटा या उनकी बहू। देशकाल की सामाजिक स्थिति का पूरा ब्यौरा इस कहानी में व्याप्त है।

आठवें दशक के प्रगतिशील और गैर प्रगतिशील दोनों प्रकार के कहानीकारों में शिल्प के स्तर पर सघन प्रतीकात्मकता का प्रयोग दिखाई पड़ता है। उदाहरण के लिए बदीउज्ज्माँ की 'दुर्ग', पंकज बिष्ट की 'खोखल', असग़र वजाहत की 'कुत्ते', 'शेर', रमेश उपाध्याय की 'नदी के साथ एक रात', मणि मधुकर की 'एकवचन बहुवचन' इत्यादि कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है। "बदीउज्ज्माँ की कहानी 'दुर्ग' में दुर्ग व्यवस्था का प्रतीक है। इस दुर्ग को नष्ट करने का प्रयत्न निरंतर किया जाता है, किन्तु यह दुर्ग कभी नष्ट नहीं होता। होता सिर्फ इतना ही कि दुर्ग को नष्ट करने का प्रयत्न करने वाला जब दुर्ग में प्रवेश पा लेता है तब वह उसका रक्षक बन बैठता है और वह दुर्ग का केवल रंग बदलता है। दुर्ग को नष्ट करने के लिए जन-समूह की सहायता ली जाती है, पर उसे जहाँ का तहाँ रहने दिया जाता है।"[11] इस कहानी में कहानीकार ने पात्रों के नाम क, ख, ग, घ, त, थ आदि जैसा रखना उचित समझा है।

पंकज बिष्ट की कहानी 'खोखल' (1975) में सघन प्रतीकात्मकता का बेजोड़ ढंग से प्रयोग किया गया है। कहानी में एक ओर आपातकाल के आतंक को मूर्त किया गया है तो वहीं दूसरी तरफ स्वतंत्रता के नाम पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का किस तरह गला घोटा जा रहा है उसको उजागर किया गया है।

"आठवें दशक में प्रगतिवादी या साम्यवादी कहानीकारों के अतिरिक्त अन्य कहानीकारों का एक बहुत बड़ा वर्ग ऐसा है, जिसे दलीय या विचारधारात्मक अनुशासन से मुक्त कहा जा सकता है। ये कहानीकार पूर्णतः आत्मकेंद्रित और आत्मलिप्त तो नहीं हैं । किन्तु व्यक्ति की उपेक्षा भी नहीं करते हैं । अधिकांश कहानी लेखिकाएँ इसी वर्ग के अंतर्गत आती हैं। इस वर्ग के अधिकांश कहानीकार अपने शिल्प के प्रति बहुत सचेत हैं । इनकी कहानियों को पढ़ने से लगता है जैसे इन्होंने अपनी कहानियों पर बहुत मेहनत की है। इनके कथा शिल्प की एक प्रमुख विशेषता है सूक्ष्म बुनावट ।"[12] आठवें दशक में ही एक प्रमुख हस्ताक्षर राजी सेठ की कहानियों में एक अलग शिल्प का प्रयोग देखने को मिलता है, विचारक हरदयाल के शब्दों में -"राजी सेठ ने अपने लिए कहानी का जो आदर्श रखा है, वह है, 'एक आइडिया जीना' । किसी रचनाकार ने जीवन जैसे जिया है उसको वैसा ही प्रस्तुत कर देने से रचना नहीं बनती, बल्कि जिए हुए जीवन को एक 'आइडिया' बनाकर प्रस्तुत करने से रचना बनती है। कहानी-रचना की एक प्रकिया यह है। कहानी-रचना की दूसरी प्रक्रिया इसकी ठीक उल्टी है। इस प्रक्रिया में पहले 'आइडिया'(प्रत्यय) आता है। इसके लिए मानसिक फुर्सत ज़रूरी है। फिर इस 'आइडिया' को यथार्थ जीवन में जीना आवश्यक है। वस्तुतः ये दोनों रचना-प्रक्रियाएँ एक ही हैं। राजी सेठ की कहानियों में ये दोनों प्रक्रियाएँ हमें देखने को मिलती हैं।"[13] इनकी कहानियों के केन्द्र में एक ऐसा प्रत्यय मिल जाता है, जो पाठक की पकड़ में तुरंत आ जाता है। उदाहरण के लिए उनकी कहानी 'समांतर चलते हुए' को देख सकते हैं। इस कहानी में एक ऐसे पुरुष का चित्रण है जिसकी पत्नी अपने पुत्र को जन्म देते ही मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। लेकिन पुरुष अपने बच्चे का पालन-पोषण तब तक करता रहता है जब तक कि उसका पुत्र बड़ा नहीं हो जाता है। इस कहानी में पुरुष अपने जीवन में एक मिशन बनाता है वह है- अपने बच्चे का पालन-पोषण करना। एक दिन अचानक पुत्र के लिए उसकी प्रेमिका का एक पत्र आता है, जिसके कारण पुरुष को यह बोध होता है कि उसका मिशन पूरा हो गया। तब वह अकेलापन अनुभव करने लगता है, कहानी का एक प्रसंग है -"लगने लगा

था, ऐसे स्थल पर खड़ा हूँ जहाँ बीहड़ विस्तृत रेगिस्तान है, अकेलापन है, अकुलाहट है, रीते दरीचों से गुज़रने वाली हवा का शोर है, और कुछ नहीं। बहुत ध्यान देने पर लगता, दूर-बहुत, दूर एक मंद-सी लौ-सा अतीत है, एक निर्वैयक्तिक वर्तमान और एक अनिश्चित भविष्य...मिलिन्द बड़ा हो चला है। सिर पर ओढ़ा हुआ मिशन जैसे पूरा हो चला है -अब?...जीवन चुपचाप खिसक चला है, कुछ बटोरने जैसा अभी बचा है क्या?...रीते हाथ खाली हाथ?...।"[14]

आठवें दशक की कुछ कहानियों में संवादों के नाटकीय शिल्प का प्रयोग दिखाई पड़ता है। उदाहरण के लिए अन्विता अब्बी की कहानी 'अवांछित' और सुरेन्द्र तिवारी की कहानी 'वार्ड नं. टू' को देख सकते हैं। 'अवांछित' कहानी का एक प्रसंग द्रष्टव्य है -"किसी को मेरी ज़रूरत नहीं है -नो बडी नीड्स मी।" "क्यों, ऐसी भी क्या मुसीबत है ?" "किसी को तुम्हारी भी ज़रूरत नहीं है।" "मैं बहुत कुछ कर सकता हूँ।" उसमें आत्मविश्वास था। "तब न तब तुमसे कोई कुछ करने को कहे।" " सो जाओ, क्यों बेकार परेशान होती हो। देखा जाएगा।"[15] इस दशक के कहानीकारों में कथावस्तु के प्रति स्पष्ट, प्रत्यक्ष और साहसिक दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। इस दशक की कहानी-लेखिकाओं ने बिना किसी हिचकिचाहट के जीवन के यथार्थ को व्यंजित किया है - "मैंने बत्ती बुझा दी। वह चौंककर उठ बैठा। ऐसा तो कभी नहीं हुआ था। शादी के बाद से उसने हमेशा उजली रौशनी से अपने को ढंके रखा। आज मैंने उसे उघाड़ दिया। तार-तार करने पर तुली हूँ। वह हतप्रभ था और मैं उकसा रही थी। कमीज के अंदर मेरे हाथ उसके सीने के बालों पर फिसल रहे थे। स्पर्श के रोमांच से वह कंटकित हो गए। मेरी हथेलियाँ ठंडी बयार-सी उन्हें सहलाने लगीं। फिर कहीं और भी सिहरन हुई।"[16]

इक्कीसवीं सदी के रचनाकारों की रचनाओं को देखने के बाद यह प्रमाणित होता है कि ये कहानियाँ समकालीन कहानी में एक अलग पहचान बनाती हैं। नई रचनाशीलता का यह आगाज़ 100 वर्षों से चली आ रही हिन्दी कहानी परम्परा में अपना बख़ूबी योगदान कर रहा है। वरिष्ठ कहानीकारों के साथ-साथ नई पीढ़ी के कहानीकार भी लगातार अपनी रचनाशीलता में सक्रिय दिखाई पड़ रहे हैं।

कहानी-निर्माण में शैलियों की बहुत अहम भूमिका होती है। यहाँ पर कहानी के सन्दर्भ में 'शैली' का उल्लेख करना शोध की दृष्टि से समीचीन होगा। विचारक आदर्श सक्सेना के अनुसार -"शैली विशिष्ट प्रणाली का, कार्य संचालन का, एक विशिष्ट ढंग या तरीका होता है, जो अपने सीमित अर्थ में शैली नाम से अभिहित किया जाता है।"[17]

हिन्दी कहानी के प्रारम्भिक दौर में निम्नलिखित शैलियाँ परिलक्षित होती हैं -

1. पत्रात्मक शैली

2. आत्मकथात्मक शैली

3. संवाद-शैली

4. स्वागत भाषण शैली

5. नाटक शैली

6. वर्णनात्मक अथवा कथात्मक शैली

हिन्दी कहानी में शैलीगत विविधता कहानी के उद्भव से लेकर अब तक की कहानियों में देखने को मिलती है। प्रेमचन्द पूर्व की कहानियों में पत्रात्मक, संवाद और नाटक शैली का अत्यधिक प्रचलन दिखलाई पड़ता है। प्रेमचन्दोत्तर कहानियों में ख़ास तौर से अज्ञेय की कहानियों में सभी शैलियों का समावेश दिखाई पड़ता है, जिन्हें छ: भागों में बाँट सकते हैं - कथात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, नाटकीय शैली, पत्रात्मक शैली, प्रतीकात्मक शैली एवं मिश्रित शैली। अज्ञेय ने जिन कहानियों में कथात्मक शैली का प्रयोग किया है, वह इस प्रकार हैं -'केसेन्ड्रा का अभिशाप', 'आदम का डायरी', 'पगोडा वृक्ष', 'शरणदाता', 'हीलीबोन की बत्तखें' आदि प्रमुख हैं। अज्ञेय ने कथात्मक शैली में भी कुछ नए प्रयोग किए हैं। लक्ष्मीनारायण लाल के शब्दों में -"अन्य पुरुष में वर्णनात्मकता प्रायः विश्लेषण के आधार से अभिव्यक्त हुई है। अन्य पुरुष में उत्तम पुरुष की

स्थापना और अन्य पुरुष में स्मृतियों, चिन्तनों द्वारा कहानी में विकास के विधान प्रस्तुत हुए हैं। जैसे, 'इन्दु की बेटी', 'वे दूसरे', 'जयदोल' और 'पठार का धीरज'। वस्तुतः कथात्मक शैली में अज्ञेय का यह तीसरा प्रयोग अपूर्व है। इसकी सफलता ने कथात्मक शैली में आश्चर्यजनक शक्ति और विकास दिया है।"[18]

आत्मकथात्मक शैली अज्ञेय की बहुत ही प्रिय शैली है, क्योंकि इस शैली के माध्यम से चरित्र-विश्लेषण में बहुत ही सुविधा प्राप्त होती है। इस शैली का प्रयोग उन्होंने 'अमर वल्लरी', 'विपथगा', 'लेटर बाक्स', 'रमन्ते तत्र देवता', 'साँप' एवं 'मेजर चौधरी की वापसी' आदि कहानियों में किया है। 'कविप्रिया' और 'बसंत' नाटकीय शैली के अंतर्गत लिखी गई हैं। पत्रात्मक शैली के अंतर्गत 'सिगनेलर' कहानी का नाम लिया जा सकता है। "प्रतीकात्मक शैली अज्ञेय की कहानी कला का एक ललित पक्ष है। जहाँ भी इन्हें मानसिक संघर्षों के अन्तस्तल में जाकर उसका अध्ययन प्रस्तुत करना पड़ा है वहाँ इन्होंने प्रायः इसी शैली को अपना साधन बनाया है। अतएव इस शैली से निर्मित इनकी कुछ कहानियाँ जैसे 'चिड़िया घर', 'पुरुष का भाग्य', 'कोठरी की बात', 'पठार का धीरज' और 'साँप' आदि शैली की दृष्टि से उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। कहानी के भावपक्ष से पूर्ण स्वाभाविकता और वैज्ञानिकता स्थापित करने के प्रयास में यहाँ प्रतीकों में पूर्ण विविधता और आकर्षण उपस्थित हुआ है।"[19] अज्ञेय ने इस शैली के माध्यम से सामाजिक जीवन के यथार्थ को बखूबी उकेरा है। मिश्रित शैली के अंतर्गत 'छाया', 'द्रोही' आदि कहानियों को देख सकते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर कहानियों और समकालीन कहानियों में मिश्रित शैली का प्रचलन बहुतायत रूप में देखने को मिलता है। वहीं इक्कीसवीं सदी के पहले दशक की बात करें तो इस दौर में आत्मकथात्मक और वर्णात्मक शैली का प्रयोग ज्यादातर कहानियों में दृष्टिगोचर होता है।

3.2 इक्कीसवीं सदी के पहले दशक की कहानियों का शिल्पगत वैशिष्ट्य

इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में कहानी विधा के शिल्प में जो परिवर्तन परिलक्षित होता है, उसका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है -

3.2.1 कहानी में शैलीगत प्रयोग

3.2.2 कहानी के शीर्षक चुनावों में नवीनता

3.2.3 कथानक के स्तर पर प्रयोग

3.2.4 पात्रों के नामकरण के चुनाव संबंधित वैविध्य

3.2.5 शिल्प के स्तर पर विधागत प्रयोग

3.2.6 लम्बी कहानी के क्षेत्र में नए प्रयोग

3.2.1 कहानी में शैलीगत प्रयोग

इस दशक के कहानीकारों ने परम्परागत लेखन से अलग हटकर अपना नया शिल्प विकसित किया है। पहले की कहानियाँ ख़ास तौर पर प्रेमचंद और उसके बाद की कहानियों में एक क्रम दिखाई पड़ता है। जैसे- कथानक में आरम्भ, विकास, चरम-बिन्दु, समाहार और वातावरण की प्रतीकात्मकता आदि । आज की कहानियों में कोई क्रम नहीं है। उदाहरण के लिए नासिरा शर्मा की कहानी 'काग़जी बादाम' को देख सकते हैं। कहानी एक सरल तरीके से चलती रहती है और अंत भी ऐसा नहीं कि कोई आश्चर्यजनक घटना हो, परंतु कहानी जो कहना चाहती है कह देती है। इसी तरह इस दशक की और भी कहानियाँ हैं, उदाहरण के तौर पर

घेरा (मंजूर एहतेशाम, 2001), बाबुल का द्वार (नसरीन बानो, 2009) एवं मिश्री की डली (शमोएल अहमद, 2009) को देख सकते हैं ।

3.2.2 कहानी के शीर्षक चुनावों में नवीनता

इस दशक की कहानियों में शीर्षक या नामकरण में भी परिवर्तन देखने को मिलता है । समकालीन कहानी अथवा इसके पीछे नई कहानी को देखें तो अधिकांश कहानियों का शीर्षक, नायक, नायिका आदि के नाम पर रखा मिलता है। परंतु आज की कहानियों का नामकरण या शीर्षक किसी भी स्तर से रखा मिलता है। जैसे- फूलों का बाड़ा (मो. आरिफ़, 2008), तमाशा (मंजूर एहतेशाम, 2001), नजरबंद (नसरीन बानो, 2009), छाँव की धूप (नसरीन बानो, 2009) एवं चहल्लुम (अनवर सुहैल, 2009) आदि।

3.2.3 कथानक के स्तर पर प्रयोग

कहानी को आरंभ करने और अंत करने की जो शैली थी उनमें अंतराल और विविधता दिखाई पड़ती है। कहानी को प्रारंभ करने की दिशा में बहुधा नए-नए प्रयोग इस दशक में दिखलाई पड़ते हैं । पहले की कहानियों का प्रारंभ कभी प्रकृति चित्रण से, कभी स्थान विशेष के सूक्ष्म विवरणों के चित्रण से, कभी कथा के परिचय से होता था, परंतु आज की कहानियों का प्रारंभ नई शैली के आधार पर किया जा रहा है। उदाहरण के लिए स्वामी वाहिद काज़मी की कहानी 'चिराग़ तले' के प्रारंभ को देखें तो कहानी का प्रारंभ एक नगर के नाम से होता है- ''उस नगर का नाम है - अब्दालगंज और अब्दालगंज का एक घना और बारौनक़ बाज़ार है - बड़ा बाजार। वहीं बारह-पन्द्रह मुसलमान रंगरेजों की बड़ी-बड़ी दुकानें हैं।''[20] हसन जमाल की कहानी 'मॉमु' का प्रारंभ पात्र के परिचय से होता है - ''एडवोकेट करीमखान के शान व गुमान में भी न था कि एक रोज अपने ही

इलाके की मस्जिद में उनको जलीलो-ख्वार होना पड़ेगा, वो भी ऐसे लोगों से जो कम इल्म हैं या बिल्कुल जाहिल हैं।''[21] इन्हीं की एक और कहानी है - 'नुक्ताचीं है ग़मे-दिल' का प्रारंभ कुछ इस तरह होता है- ''इशा की नमाज पढ़कर व मस्जिद से निकलकर जैसे ही अमजद मियाँ ने सड़क का मोड़ काटा, सामने से चंद आदमियों का एक रेला आता दिखाई दिया। सोचा, कोई रोला हो गया है।''[22]

वहीं अनवर सुहैल की कहानी 'ग्यारह सितम्बर के बाद' का प्रारम्भ तिथि से होता है- ''ग्यारह सितम्बर के बाद करीमपुरा में एक ही दिन, एक साथ दो बातें ऐसी हुई, जिससे चिपकू तिवारी जैसे लोगों को बतकही का मसाला मिल गया।''[23]

जहाँ तक कहानी के अंत की प्रवृत्ति रही है, वह है निष्कर्षात्मक और समाहारात्मक अंत की। इस शैली का परित्याग दिखाई पड़ता है, इस दशक की कहानियों में। आज की कहानियों के अंत में कोई समस्या उठाकर छोड़ दिया जाता है अथवा कहानी के अंत में बहुत कुछ पाठक पर छोड़ दिया जा रहा है।

3.2.4 पात्रों के नामकरण के चुनाव संबंधित वैविध्य

पात्रों के नामकरण की दृष्टि से भी आज की कहानियों में वैविध्य दिखाई पड़ता है। आज की कहानियों के पात्रों का नाम प्राय: संज्ञा के स्थान पर सर्वनामों की प्रवृत्ति का जोरदार ढंग से प्रयोग करने की प्रवृत्ति बढ़ी है। जैसे- मैं, हम, तुम, वह वे, आदि। मंजूर एहतेशाम की कहानी 'लौटते हुए' (2001) इसी शैली पर आधारित है। आज मैं, तुम आदि के माध्यम से पूरी कहानी रची जा रही है, जिसमें आज के दौर का सामाजिक यथार्थ पूरी तरह परिलक्षित है।

3.2.5 शिल्प के स्तर पर विधागत प्रयोग

इस दशक की कहानियों में अन्य गद्य विधाओं की शैलियों का प्रयोग दिखाई पड़ता है । जैसे- रिपोर्ताज, निबंध, नाटक, कविता, संस्मरण, यात्रा-वृतांत, व्यंग्य, आत्मकथा आदि । रिपोर्ताज शैली के प्रभाव को दहशतगर्द (अनवर सुहैल, 2009), छतरी (मंजूर एहतेशाम, 2001), जिंदगी (शाहिद अख्तर, 2007), नजरबंद (नसरीन बानो, 2009), आदि कहानियों में देख सकते हैं । 'दहशतगर्द' कहानी का एक प्रसंग है- ''पहले टीवी पर उसकी तस्वीरें दिखलाई गईं, फिर समाचार-पत्रों ने उसके बारे में लानतें-मलामतें कीं तो शहर का माथ ठनका। अरे भइया, गजब़ हो गया! ईसा मियां का बेटा मुसुआ ससुरा आतंकवादी निकल गया ।''[24] इसी प्रकार 'छतरी' कहानी का प्रसंग है- ''दिन-ब-दिन वर्षा का न होना शहर के लिए संकट बनता जा रहा था जिसका विज्ञापन वह तालाब थे जिनके तट सिमटकर नीचे चले गए थे और पानी तलछट में छूटा रह गया था । लगता किसी सुबह जब लोग जाएँगे, तालाब सूखे मिलेंगे । वह शहर में सबके लिए अंतिम दिन होगा । इधर सारे अंदेशों में घिरा जीवन था, उधर देश के जल-थल होने और जगह-जगह सैलाब की खबरें थीं। ''[25] उपर्युक्त प्रसंग को देखकर ऐसा लगता है, जैसे कहानीकार कोई रिपोर्ट दे रहा हो। इसी ढब की कहानी है- 'जिंदगी'। ''नजमा ने तो एक नींद मार भी ली! कसमसाते हुए उसने घड़ी देखी, दो बज गए थे । उसी वक्त नारे तकबीर ... अल्ला हो अकबर ... और हर.... हर महादेव जय ... श्रीराम के गगनभेदी नारे सुनाई दिए । खुदा खैर करे, लगता है यहाँ भी कुछ हो गया! वह हड़बड़ाकर उठा! नजमा की आँख भी खुल गई! आवाज़ें दूर से आ रही थीं।''[26] 'नजरबंद' कहानी का एक प्रसंग है- ''हाँ बेटा 12 अक्टूबर से कायापलट के बाद गिरफ्तारी और नजरबंद का जो सिलसिला चला तो हम उनकी आवाज़ तक को तरस गए। जाने वे जीवित भी हैं या ..... माँ ने निराशा जतायी ।''[27]

निबंध शैली के प्रभाव को तरक्की (मेराज अहमद, 2005), तहारत (शक़ील, 2000), रात (शमीमउद्दीन अहमद, 2001) आदि कहानियों में देख सकते हैं। 'तरक्की ' शीर्षक कहानी का एक प्रसंग द्रष्टव्य है- ''जब हवाएँ ऐसी हों, जैसे किसी भट्ठी से होकर आ रही हों और सिरों के ऊपर आसमान में चमकने वाले

सूरज के ताप को इमली और बरगद के पेड़ की पत्तियाँ भी रोक न पा रही हों, तो ऐसे में सहारा बस, सूरज के छुपने का होता है। लोग शाम ढलने का इंतजार करते हैं। जून के महीने की एक ऐसी ही शाम में मास्टर हफीजुल्ला साहब ने दरवाजे पर नीम के दरख्त के नीचे छिड़काव वगैरह करके भरसक गर्मी के असर को कम करने की कोशिश तो की, मगर हवा थी कि उसमें पत्ते तक को हिला पाने की ताकत नहीं थी ।''[28] नाटकीय शैली के प्रभाव को 'वापसी' (मेराज अहमद, 2005), अनवर भाई नहीं रहे (अनुज, 2006) कहानियों में देखा जा सकता है ।

संस्मरण शैली के प्रभाव को विरासत में मिली मुस्कराहट (फ़ज़ल इमाम मल्लिक, 2001), मार-मारकर (हबीब कैफ़ी, 2007), चहल्लुम (अनवर सुहैल, 2009) आदि कहानियेां में देखा जा सकता है। 'विरासत में मिली मुस्कराहट' कहानी का एक प्रसंग है- ''यह सब सोचते हुए उनकी स्मृति में वह घटना कौंध जाती है- शारज़ाह में पाकिस्तान ने भारत पर जावेद मियांदाद के छक्के से जीत हासिल की थी। दूसरे दिन रतन आया और उसके साथ वे भी खरीदारी के लिए बाज़ार निकले थे ।''[29] 'चहल्लुम' शीर्षक कहानी का प्रसंग है- ''जूही क्या जवाब देती। उसे सल्लू भाई से ऐसी उम्मीद न थी । अब्बू ने जीवन-भर बच्चों को कोई तकलीफ़ न दी। उनसे कभी खिदमत न करवाई थी । इसीलिए शायद उन्होंने मलकुल-मौत (यमदूत) से दरख्वास्त की होगी कि आकर उन्हें उठा ले जाएँ ।''[30] व्यंग्यात्मक शैली का प्रभाव ख़ास तौर पर असगर वजाहत की कहानियों में परिलक्षित होता है । उनकी कहानी है - 'वस्ताद जूमूरा बदकही'। यह कहानी पूरी व्यंग्य से भरी हुई है। कहानी का एक प्रसंग है- ''ज0- वस्ताद हमारा लोकतंत्र क्या है? व0 - अबे लोक तो जनता है न! ज0 - लोक ना, वो जिसे अंग्रेजी में 'कैच' कहते हैं? मतलब पकड़ना। व0 - हाँ बे वही । ज0 - और तंत्र। व0 - अबे तंत्र मंत्र नहीं जानता? ज0 - ओ हो वस्ताद .... वही जो पकड़ना जानता है .... लोकतांत्रिक है .... इसकी विशेषताएँ क्या हैं वस्ताद?''[31] इसी तरह 'मैं हिन्दू हूँ' (असगर वजाहत, 2005), शाह आलम कैंप की रूहें (2005) आदि कहानियों को देख सकते हैं ।

इस दशक की कुछ कहानियों में शिल्प के स्तर पर कविता के प्रयोग की प्रवृत्ति को देखा जा सकता है। कहानी में कविता के प्रयोग की बात करते ही 'तीसरी कसम उर्फ़ मारे गए गुल्फाम' (फणीश्वर नाथ रेणु) कहानी याद आती है। इस कहानी में बीच-बीच में कविता या गीत का प्रयोग किया गया है। वैसे देखा जाए तो कहानी का सम्बन्ध कविता से बहुत पुराना है। देखने वाली बात यह भी है कि जब कहानी एक विधा के रूप में विकसित नहीं हुई थी उस समय उसे कविता के रूप में ही कहा जाता था। 'तीसरी कसम उर्फ़ मारे गए गुल्फाम' कहानी में कविता या गीत के प्रयोग को देखते हुए यह सहसा प्रश्न उठता है कि क्या इन गीतों के प्रयोग न होने से कहानी प्रभावोत्पादक हो सकती थी ? इसका उत्तर शायद यही होगा नहीं। इस कहानी में कविता के प्रयोग से या कहें 'महुआ घटवारिन' के गीत से हिरामन और हिराबाई की मुख्य कहानी समानांतर रूप से चलती हुई प्रतीत होती है। उदाहरण के रूप में साठ और सत्तर के दशक में बनी फ़िल्मों को भी देख सकते हैं। इन फ़िल्मों में जब संवाद से काम नहीं चलता था तो गीतों का प्रयोग होता था। यदि किसी कारण वश फ़िल्म देखने वाला, किसी फ़िल्म में एक गीत नहीं देख पाया तो शायद ही वह फ़िल्म की कहानी को पूरी तरह समझ पाए। हिन्दी कहानी में "निर्मल वर्मा से लेकर विनोद कुमार शुक्ल और प्रियंवद से लेकर गीतांजलि श्री तक तरल काव्यात्मक भाषा और संवेदना की कहानियों की एक मजबूत और सुदीर्घ परंपरा हिंदी में पहले से मौजूद है। पिछले कुछ वर्षों में परिदृश्य पर उभर कर आए कुछ कथाकार यथा, नीलाक्षी सिंह, कुणाल सिंह, प्रत्यक्षा, जयश्री रॉय आदि ने न सिर्फ काव्यात्मक संवेदना की उस कथा परंपरा को जिंदा रखा है बल्कि यूँ कहें कि इसे आगे भी बढ़ाया है। ऐसी कहानियों का जिक्र करते हुए दो तरह की कहानियाँ रेखांकित की जा सकती हैं। एक वैसी कहानियाँ जो अपनी काव्यात्मक भाषा और संरचना के कारण कहानी के समानांतर एक खूबसूरत कविता पढ़ने का-सा सुख भी देती हैं तो दूसरी वे कहानियाँ जो अपने काव्यात्मक विन्यास में इतना ज्यादा उलझ जाती हैं कि उनके हाथ से कथा-सूत्र फिसल जाता है। उल्लेखनीय है कि पहले तरह की कहानियाँ अपने काव्यात्मक रचाव के बावजूद शुरू से अंत तक कहानी का दामन नहीं छोड़तीं, बल्कि यूँ कहें कि ऐसी कहानियों की काव्यात्मक संरचना कहानी के प्रवाह को और ज्यादा आकर्षक, प्रभावी और पैना बनाती है। इसके विपरीत दूसरी तरह की कहानियों को पढ़ते हुए कुछ कविता जैसा या कवितानुमा पढ़ने का अहसास तो होता है, लेकिन

ये कहानियाँ अपने कथा-सूत्र को कहीं बीच में ही छोड़ एक मिथ्या या छद्म काव्यानुभूति का रहस्यलोक रच कर रह जाती हैं।"[32]

इक्कीसवीं सदी की पहले दशक में कहानी में कविता या शेर के प्रयोग की दृष्टि से निम्नलिखित कहानियाँ महत्वपूर्ण हैं -'जीना तो पड़ेगा', 'लग्गी', 'गोटी', 'पेड़' (अब्दुल बिस्मिल्लाह)।

'जीना तो पड़ेगा' शीर्षक कहानी का एक शेर इस प्रकार है -

"दरो दीवार पे हसरत से नज़र रखती हूँ।

गाँव वालों ख़ुश रहो मैं तो सफ़र करती हूँ।

पैडिल पे पाँव रक्खा तो चेन उतर गई।

मैंने जो आँख मारी, तो गुड्डन की पैंट उतर गई।"[33]

'लग्गी' कहानी की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

"मैं तो जकड़ा हूँ ख़यालात की ज़ंजीरों से,

लेते देखा है रिश्वत दो रुपए फ़कीरों से।"[34]

'गोटी' शीर्षक कहानी में एक शेर इस प्रकार है -

"न पूछ राहगुजर दोस्त जिस किसी से तू,

तू तो खुद रहनुमा है तेरे पीछे हैं हम।"[35]

'पेड़' शीर्षक कहानी की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

"और...

और इस तरह बीता वह दिन।

आई काली-कलूटी चुड़ैल-जैसी रात।

दूर कहीं बोला एक घुग्घू। असगुन। और...

और कसाई ने काट डाला अपना पेड़ रातों-रात।"[36]

इस दशक में ऐसी बहुत सारी कहानियाँ लिखी गई हैं जिनमें कविता या शेर या गीत का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए - 'महानिर्वाण' (विमल चन्द्र पाण्डेय), 'कबीरा खड़ा बाज़ार में' (वंदना राग), 'मध्यवर्तीय प्रदेश' (कविता), 'भीतर का वक्त' (अल्पना मिश्र), 'फ्लैश बैक' (प्रभात रंजन), 'पिंक स्लिप डैडी', 'गोमूत्र' (गीत चतुर्वेदी), 'हमजमीन' (जयश्री राय), 'बीते शहर से फिर गुजरना' (तरुण भटनागर), 'दिलनवाज तुम बहुत अच्छी हो' (प्रत्यक्षा), 'धुआं कहाँ' (नीलाक्षी सिंह) एवं 'सनातन बाबू का दाम्पत्य' (कुणाल सिंह) आदि कहानियाँ प्रमुख हैं।

कहानी में कविता अथवा शेर के प्रयोग शिल्प के बारे में आलोचक 'राकेश बिहारी' की यह टिप्पणी महत्वपूर्ण है - "काव्यात्मक संवेदना के नाम पर आज की कहानियाँ हमारे भीतर कहानी को एक कविता की संवेदनात्मकता के साथ उतार देती हैं या तथाकथित कविताई के नाम पर भाषा की कुछ अबूझ पहेलियाँ परोस कर रह जाती हैं? नए भाषा-शिल्प की कहानियों के शोर के बीच ये सवाल निहायत ही जरूरी और प्रासंगिक हैं।"[37]

3.2.6 लम्बी कहानी के क्षेत्र में नए प्रयोग

इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में कुछ ऐसी लम्बी कहानियाँ लिखी गई हैं, जिनमें समांतर कथा शिल्प का प्रयोग किया गया है। इस शिल्प के अंतर्गत कहानीकार परंपरा में प्रचलित कोई ऐसी कथा चुनता है जिसकी

आधुनिक पात्र तथा जीवन-स्थितियों से पूर्ण संगति होती है। उदाहरण के तौर पर इंतिजार हुसैन तथा शमोएल अहमद की कहानियों को देखा जा सकता है। शमोएल अहमद की कहानी 'मिश्री की डली' का एक प्रसंग है- ''राशदा पर शुक्र का प्रभाव था ... वह उस्मान के बोसे लेती थी ... ! राशदा का हुस्न सलोना था ... होंठ मणि सरीखे.... दाँत-जड़े हमसतह .... और शुक्र मीन में उच्च का था और वह कन्या में पैदा हुई थी।''[38]

इस दशक की कहानियाँ आकार की दृष्टि से लम्बी लिखी गई हैं। जैसे- 'ऊँट', 'मृगतृष्णा', 'मिनरल वाटर' (शमोएल अहमद, 2009), 'बशीर खाँ', 'मालिक माडर्न केनिंग आर्ट', 'रमज़ान में मौत', (मंजूर एहतेशाम, 2001), 'चहल्लुम' (अनवर सुहैल, 2009), 'कागज़ी बादाम' (नासिरा शर्मा, 2002), बुढ़वा मंगल (अनवर सुहैल, 2006), रमजान में मौत (मंजूर एहतेशाम, 2001), खुला (ऋषिकेश सुलभ, 2001), शेर खाँ (विजय, 2006), दहशतगर्द (अनवर सुहैल, 2009) एवं वस्ताद जमूरा बदकही (असगर वजाहत, 2002) आदि कहानियों को देखा जा सकता है। इस दशक की लम्बी कहानियाँ पिछले दशक की कहानियों से सर्वथा भिन्न हैं। ऐसी बहुत सी कहानियाँ इस दशक में लिखी गई हैं, जिनमें यथार्थ के बहुआयामी रूप दिखाई देते हैं। इस नई पीढ़ी की रचनाओं में अपने समय की चेतना परिलक्षित होती है।

इक्कीसवीं सदी की कहानीकारों की रचनाशीलता पर यह आरोप जड़ दिया जाता है कि इनकी कहानियों में आम इंसान गायब है। लेकिन यथार्थ यह है कि इस दशक में ऐसी कई कहानियाँ लिखी गई हैं, जिनमें आम इंसान मौजूद है। "नई पीढ़ी की कहानियों में 'वस्तु प्रवेश' कहानीकार के अपने कथा-बोध पर संभव हुआ है। उनका कोई सुनिश्चित एजेंडा नहीं है- पहले जैसी राजनीतिक संलग्नता, विचारधारा और आन्दोलन धर्मिता से सर्वथा मुक्ति है। पिछली पीढ़ी में भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद, साम्प्रदायिकता, स्त्री-चेतना, दलित चेतना के साथ-साथ प्रशासनिक, राजनीतिक भ्रष्टाचार, सामाजिक जीवन में हिंसा, बलात्कार और तमाम मूल्यगत पतन को लेकर कहानियाँ लिखी जा रही थीं। नई पीढ़ी ने सुनियोजित नहीं, तो कतिपय चिंताओं से किनारा कर अपने कथा-बोध को निर्मित किया है।"[39]

इस दशक के कहानीकार फैंटेसी और यथार्थ के मेल को कथा में समेटते हुए दिखाई पड़ते हैं। यह भी देखने को मिलता है कि जितना यह पीढ़ी फैंटेसी की कथा युक्तियों का प्रयोग करती है उतना जादुई यथार्थवाद का नहीं। फैंटेसी के इस्तेमाल से व्यवस्था के चमकीले आवरण के भीतर छुपे तत्वों को निकालने में नए कहानीकारों ने ज्यादा सफलता प्राप्त की है। "फैंटेसी के जरिए कथा-स्थापत्य निर्मित करने की बानगी 'सनातन बाबू का दाम्पत्य'(कुणाल सिंह), 'परिन्दगी है कि नाकामयाब है'(चन्दन पाण्डेय) और 'क्वालिटी लाईफ' (शिल्पी) जैसी कहानियाँ हैं । हर पीढ़ी स्थापत्य में नया लाने के लिए प्रयोगधर्मिता अपनाती है। इतना होते हुए भी नई पीढ़ी ने कहानी के फार्म में कोई ऐतिहासिक बदलाव नहीं किया है। पर कथा भाषा के प्रति प्रयोगधर्मिता और रचनात्मक संभावनाओं की तलाश बढ़ी है।"[40]

इस दशक में कुछ ऐसे कहानीकार भी रहे हैं जो पहले से लिखते आ रहे हैं। वरिष्ठ कहानीकारों की श्रेणी में निम्नलिखित नाम प्रमुख हैं- असग़र वजाहत, नासिरा शर्मा, अब्दुल बिस्मिल्लाह, शमोएल अहमद, मो. आरिफ़, हबीब कैफ़ी आदि।

इस दशक के कथाकारों की सर्जनात्मकता को दो बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है। पहला, कथा संरचना का मूल प्रयोजन क्या है ? दूसरा, कथाकार का जीवन दर्शन का विस्तार किस सोच पर आधारित है। कथाकार का मूल प्रयोजन होता है मानव जीवन के यथार्थ का चित्रण करना, यही कारण है कि कोई भी कथा प्रसंग सत्य न होते हुए भी सत्य प्रतीत होते हैं, पात्र वास्तविक न होते हुए भी वास्तविक लगने लगते हैं। इस दशक में जितनी भी कहानियाँ लिखी गई हैं उनमें यथार्थ बहुत कम है यह कहना थोड़ा असंगत सा प्रतीत होता है।

इस दशक की कहानियों पर लेखकों के बदलते जीवन दर्शन का जबर्दस्त प्रभाव पड़ा है और यथार्थ यह भी है कि आज के समय में मनुष्य की जीवन-शैली भय, चिंता, मानसिक तनाव एवं पीड़ा आदि से प्रभावित है।

रचनाकर्म पर बात की जाए तो जब कोई लेखक अथवा कहानीकार कोई रचना करता है तो उस रचना में सिर्फ रचनाकार ही नहीं, इसके अलावा, ''उसके भीतर और बाहर एक और भी है, कहना चाहिए कई और

भी हैं, जो कृति का रूप-रंग निर्धारित करते हैं, द्रष्टा, पाठक, सहभोक्ता या और भी आगे जाकर कहें, युगबोध।''[41] कहानीकार जब कहानी लिखने बैठता है तो वह पहले शिल्प के बारे में नहीं विचार करता है। कहानी जब पूरी हो जाती है, तब उस कहानी में शिल्प झलकता है। पहले की कहानियों में एक परिपाटी थी कि हमें अमुक शैली के आधार पर कहानी गढ़नी है।

आम तौर पर मान्यता है कि कोई रचना तभी प्रसिद्धि प्राप्त करती है, जबकि वह अनुभव के आधार पर लिखी गई हो। लेकिन यह अनुभव रचनाकार को मिलता कैसे है? इस पर थोड़ी चर्चा करना यहाँ पर समीचीन होगा। जब कोई एजेंट अपनी वस्तु की बिक्री को बढ़ाने के लिए बाहर जाता है और महीनों घूमता रहता है, उसमें और अनुभव प्राप्त करने के लिए जब कोई लेखक बाहर जाता है तो दोनों में बड़ा फर्क होता है। लेखन एक निजी पेशा है, जिसका फील्ड वर्क निर्धारित नहीं है। लेखक को अनुभव प्राप्त करने के लिए क्या फील्ड वर्क करना चाहिए इसका निर्धारण तय नहीं है। यह भी बात स्पष्ट है कि एक का उदाहरण दूसरे के काम नहीं आता। ''कोई शोर-शराबे में बैठकर लिख लेता है और किसी को पंखे की आवाज भी विघ्न पहुँचाती है, कोई भीड़ या यात्रा से कतराता है और किसी को इसके बिना लिखने की प्रेरणा ही नहीं मिलती। किसी को पहाड़ों पर जाकर शवरों के बारे में लिखने का उत्साह होता है तो कोई कमरे में बंद ही पहाड़-नदी सबके विषय में लिख सकता है। लेकिन प्रामाणिकता के आग्रह ने यह प्रवृत्ति जरूर पैदा कर दी है कि चाहे स्थान हो या अनुभव, जब तक उसकी आधिकारिक जानकारी नहीं है, लेखक को उससे कतराना चाहिए।''[42]

एक बात तो तय है कि अच्छी रचना करने के लिए लेखक को परिवेश से ज्यादा मनुष्य को पढ़ने की आवश्यकता होती है। दूसरे शब्दों में कहें तो मनोविज्ञान का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। तभी अनुभव का विकास होता है। राजेन्द्र यादव ने लिखा है- ''अनुभव जड़ दवाओं की तरह शीशियों में बंद दिया और लिया नहीं जाता, उसे दूसरों के मनोविज्ञान से जुड़कर ही पाया जा सकता है। कम-से-कम दूसरे के साथ तादात्म्य स्थापित करके अपने अनुभव का अंश बना लेना तो आवश्यक है ही।''[43] इस तरह लेखक अपनी रचना करता है और शिल्प खुद-ब-खुद उभरकर आता है।

लेखकीय अनुभव पर राजेन्द्र यादव ने इस प्रकार टिप्पणी की है- ''यह भी सही है कि पाठक लेखक को वह छूट या सहयोग नहीं देता जो फोटोग्राफर, चित्रकार या संगीतज्ञ को देता है। चोरी या प्यार की प्रामाणिक कहानियों पर जान-न्योछावर करने वाला पाठक, किसी लेखक को चोरी या प्यार करते देखकर शायद सबसे पहले चौंकता है, भ्रम-भंग की पहली अभिव्यक्ति उसकी ओर से यही होती है, 'हम तो उन्हें ऐसा आदमी नहीं समझते थे।' प्रामाणिकता की माँग और प्रामाणिक होने के प्रति इतना विरोध शायद ही पहले कभी किसी लेखक-समाज को करना पड़ा हो। यह स्थिति लेखक को उच्छृंखल और विद्रोही होने के लिए बाध्य करती है।'[44] आज की कहानियों पर यह आक्षेप लगाया जाता है कि कहानीकार ने अनुभव के आधार पर रचना नहीं की है अथवा अमुक कहानी सामाजिक यथार्थ से बहुत दूर है। लेकिन हकीकत यह है कि आज भी ऐसी कहानियाँ गढ़ी जा रही हैं, जिनमें लेखकीय अनुभव झलकता है।

3.3 मुस्लिम जीवन केन्द्रित कहानियों की आलोचना : चयनित कहानियों के सन्दर्भ में

हिंदी में मुस्लिम जीवन केन्द्रित कहानियों (सन् 2000 से 2010 तक) के वस्तु एवं शिल्प का विश्लेषण निम्नलिखित चर्चित कहानियों के माध्यम से कर सकते हैं :

कुलदीप नैयर और पीर साहब (गुलज़ार), मियां(हरिओम), खबीस(अकील कैस), अँधेरे में (मंजूर एहतेशाम), चादर(सलाम बिन रज्ज़ाक), बुढ़वा मंगल(अनवर सुहैल), एक मस्जिद समानांतर(नीला प्रसाद), ट्राजिंट की जिन्दगी(नूर जहीर), दहशतगर्द(अनवर सुहैल), जिहाद(सरोज खान 'बातिश'), बेलपत्र(गीतांजलि श्री), जख्म(असगर वजाहत), चाँद अभी ढला नहीं(अहमद निसा), आजकल(गीतांजलि श्री), परिंदे के इन्तजार-सा कुछ(नीलाक्षी सिंह), मृगतृष्णा(शमोएल अहमद), अंधी सीढ़ियाँ(साजिद रशीद), कागज़ी बादाम(नासिरा शर्मा), अनकबूत(शमोएल अहमद), जय श्री बाबर(हबीब कैफ़ी), तहारत(शकील), चिराग तले(स्वामी वाहिद काज़मी), लंठ(अब्दुल बिस्मिल्लाह), एक बिन लिखी रज्मिया(इंतजार हुसैन), विरासत में

मिली मुस्कराहट(फ़ज़ल इमाम मल्लिक), नुक्ताचीं है गमे-दिल(हसन जमाल), पुल-पुख्ता(मंजूर एहतेशाम), वस्ताद जमूरा बदकही(असगर वजाहत), तुम चुनाव लड़ोगे!(एम.हनीफ मदार), नसीबन और एक थी कम्मो (अनवर सुहैल), नेक परवीन(गज़ाल ज़ैगम), घेरा (मंजूर एहतेशाम), तपती रेत(जेबा रशीद), उजबक(अकिल कैस), ऊँट(शमोएल अहमद), पीरू हज्जाम उर्फ़ हजरत अली(अनवर सुहैल), शेर खां(विजय), मार-मारकर(हबीब कैफ़ी), गोटी(अब्दुल बिस्मिल्लाह), मिश्री की डली(शमोएल अहमद), खुला(हृषीकेश सुलभ), मीनार के परिदृश्य में (अलीफा रिफात), इंसानी नस्ल(नासिरा शर्मा), तरक्की(मेराज अहमद), मॉमु(हसन जमाल), मौसम(मो. आरिफ़) एवं मैनेजर जावेद हसन(इक़बाल रिज़वी) आदि।

'कुलदीप नैयर और पीर साहब' गुलज़ार की चर्चित कहानी है। इस कहानी में धार्मिक रूढ़ियों और पाखंडों को उजागर किया गया है। मुस्लिम समाज में अक्सर देखा जाता है कि कोई भी मनुष्य कार्य करने से पहले मजार पर मत्था टेकता है, इस प्रचलन को आज भी लोग अपनाते हैं। कहानी का एक प्रसंग है -"इम्तहानों में याद है, कहती थीं, पीर साहब को मत्था टेक के जाना। इम्तिहान हो, त्यौहार हो, ख़ुशी हो, गम हो, कोई फाह, कोई रफड़, हर बात में पीर साहब ज़रूर शामिल होते थे।"[45] कहानीकार गुलज़ार ने इस कहानी में देशकाल का सूक्ष्म चित्रण किया है। आज देश में धर्म के नाम पर एक दूसरे के खून बहाए जा रहे हैं, एक दूसरे का गला काटा जा रहा है।

इस कहानी में कुलदीप नैयर अपनी माँ (जिनकी मृत्यु हो चुकी है) के माध्यम से अल्लाह के प्रति भक्ति रखते हैं। कहानी फ्लैशबैक शैली में लिखी गई है। कुलदीप नैयर अपने दोस्तों को पीर बाबा की कहानी सुनाते हैं और उनको पीर बाबा पर विश्वास करने की प्रेरणा देते हैं -"और वो मेरे ख़्वाब में आए- सफेद लम्बी दाढ़ी ! शरीर पर शब्ज रंग का लिबास था ! वही माँ ने बताया था। मुझे याद नहीं सर पे कुछ पहना था या नहीं ...।"[46]

कहानी के शिल्प के बारे में बात की जाए तो कहानी की कथावस्तु संक्षिप्त है और भाषा के स्तर पर वैविध्य मौज़ूद है। पंजाबी शब्दों की बहुलता है। इस कहानी में एक पात्र के माध्यम से मुस्लिम समाज में व्याप्त रूढ़ि को अंकित किया गया है।

रूढ़िवादिता को केंद्र बनाकर 'मियाँ' कहानी लिखी गई है। युवा कहानीकार हरिओम ने इस कहानी में ग्रामीण समाज में जीवन व्यतीत कर रहे रहमान की सोच, व्यवहार, कर्म को उद्घाटित किया है। आम तौर पर यह देखा जाता है कि मनुष्य समाज में प्रचलित रूढ़ि के चलते अपना विकास नहीं कर पाता और यह यथार्थ है कि जिस समाज में व्यक्ति का विकास नहीं होता, वहाँ पर उस समाज का भी विकास नहीं होता है। गाँव में रहमान को कुछ व्यक्ति डरावनी बात करके उसे सताते रहते हैं, ताकि वह अपना कार्य सुचारु रूप से ना कर पाए। कहानी का एक प्रसंग है -"बरगदवा बाबा के मरने के बाद उनकी आत्मा गाँव के बाहर उसी बरगद के पेड़ पर रहने लगी थी। मजाल है कि दस बजे रात के बाद कोई उधर से गुजर जाय। कई बार कुछ जवान पट्ठों ने एक फरलांग दूरी से बाबा की आत्मा को देर रात पेड़ से उतरते और रास्ते पर उछलते देखा था।"[47] कहानी में पात्रों के चरित्र को सूक्ष्म ढंग से उकेरा गया है । शीर्षक चुनाव की नवीनता को इस कहानी में देख सकते हैं। शिल्प के स्तर पर विधागत प्रयोग इस कहानी में व्याप्त है। कहानी को पढ़ने के बाद ऐसा पाठक महसूस कर सकता है कि कहानीकार निबन्ध शैली में लिख रहा है। कहानी में ग्रामीण शब्दों की बहुलता है।

अकील कैस की कहानी 'खबीस' भी मुस्लिम समाज में व्याप्त अन्धविश्वास, रूढ़ि, धार्मिक पाखंड आदि को सम्प्रेषित करती है -"यूँ उर्स के मौके पर या फिर बेमौके ही सही हमारे घर और रिश्ते के लोग अपनी मन्नतें साधने या सिर्फ़ हाजिरी देने मजार को जाते रहते थे। दादा जान मासूम शाह के बड़े भक्त थे और उर्स के मौके पर लगभग हर साल उनकी तरफ से चादर जरूर चढ़ती।"[48] अकील कैस ने इस कहानी में पात्रों के संवाद को धीमा किया है, एक पात्र दूसरे पात्र से आराम से वार्तालाप करता हुआ दिखाई पड़ता है, लेकिन कहानी जो कहना चाहती है वह कह देती है। यह कहानी बहुत ही लम्बी है, जिसमें कथा विस्तार और तारतम्यता दोनों है।

इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में साम्प्रदायिकता को कथ्य बनाकर बहुत सारे कहानीकारों ने कहानियाँ लिखी हैं। मंजूर एहतेशाम की कहानी 'अँधेरे में' साम्प्रदायिकता पर आधारित है। पूरी कहानी इसी शिनाख्त में लिखी गई है कि दंगे भड़कने के बाद शहर का माहौल किस प्रकार बदल जाता है। कहानी में एक प्रसंग है-"बाहर लोगों की एक भीड़ थी ! अँधेरे में चीखते-चिल्लाते, नारे लगाते, मुट्ठियाँ हवा में उछालते, हाथों

में झण्डे थामे, हज़ारों नाराज लोग चले जा रहे थे। फटेहाल कमज़ोर लोग जिनकी आँखों में भट्ठियां सुलग रही थीं। ऑखें ही आँखें, हाथ-ही-हाथ, पैर-ही-पैर थे। कुछ पल को वह पथरा गया।"[49] दंगे में आम-आदमी का एक-एक पल घुटन से व्यतीत होता है -"अगली रात वह आवाजों के इंतजार में जागता रहा। जब आवाज़ें आईं तो उसने अलविदाई नजरों से सोती हुई बिट्टू और रेहाना को देखकर दरवाज़ा खोला और नारे लगाते हुजूम में शामिल हो गया। हुजूम में उसे अजीब-अजीब लोग नज़र आए-ऐसे जो उसकी समझ में मर चुके थे। मर चुके थे या मारे जा चुके थे ?"[50]

इस कहानी में देशकाल वातावरण का बहुत ही सूक्ष्म ढंग से विवेचन किया गया है। साम्प्रदायिकता आज भारतीय समाज और राजनीति के लिए बहुत ही गंभीर खतरे के रूप में सामने आई है। भारत एक धर्म निरपेक्ष देश है, लेकिन साम्प्रदायिक ताकतें इसकी जड़ों को खोखला कर रही हैं -"साम्प्रदायिकता एक ऐसी विचारधारा है जो इस विश्वास पर आधारित है कि भारतीय समाज ऐसे धार्मिक समुदायों में बंटा हुआ है जिसके आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक हित अलग-अलग हैं और यहाँ तक कि अपने धार्मिक अंतरों के कारण एक-दूसरे के शत्रु हैं। साम्प्रदायिकता सर्वोपरि एक ऐसी विश्वास प्रणाली है जिसके माध्यम से समाज,अर्थव्यवस्था और राजनीति का अवलोकन और विश्लेषण किया जाता है और उसके इर्द-गिर्द राजनीति को संगठित करने का प्रयास किया जाता है। एक विचारधारा के रूप में यह नस्लवाद, सीमावाद-विरोधवाद और फ़ासीवाद से मिलती-जुलती है।"[51]

साम्प्रदायिकता के विकास में एक अन्य पक्ष यह भी है कि सन् 1960 के बाद से ही धर्मनिरपेक्ष पार्टियाँ, समूह और व्यक्ति साम्प्रदायिकता के प्रति राजनीतिक अवसरवाद का प्रदर्शन करते रहे हैं। इन्होंने राजनीति पर धर्म को हावी होने दिया, जिसके परिणाम स्वरूप साम्प्रदायिकता को फैलने का सुअवसर मिला -"उदाहरण के लिए, शाहबानो मुकदमे में राजीव गाँधी ने सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को संविधान संशोधन द्वारा बदलकर और फिर उसके बाद 1986 में विवादित अयोध्या मस्जिद मंदिर के दरवाजे को खोलकर ऐसा ही किया। वी.पी. सिंह ने 1990 में स्वतंत्रता दिवस पर लालकिले में दिए अपने भाषण में पैगम्बर मोहम्मद के जन्मदिन को

सार्वजनिक अवकाश के रूप में घोषित कर भी यही किया। मुस्लिम और हिन्दू साम्प्रदायिक ताकतों को दी गई इस छूट ने साम्प्रदायिक तनावों को घटाया नहीं बल्कि बढ़ा दिया।"[52]

विभाजन के बाद भारत में जो बड़े दंगे हुए उस पर दृष्टिपात करें तो -सन् 1961 (मध्य-प्रदेश,जबलपुर शहर), सन् 1969 (गुजरात), सन् 1980(मुरादाबाद), सन् 1964(जमशेदपुर,राउर केला), सन् 1967(राँची), सन् 1970(महाराष्ट्र), सन् 1979(प.बंगाल), सन् 1984(पंजाब), सन् 1987(मेरठ), सन् 1989(भागलपुर), सन् 1992(बाबरी कांड), सन् 2002(गुजरात) और सन् 2008(कंधमाल) प्रमुख हैं।

सलाम बिन रज़्ज़ाक ने अपनी कहानियों में साम्प्रदायिकता को उजागर किया है। गाँव तो गाँव, बड़े-बड़े महानगरों में आए दिन दंगे होते रहते हैं। अक्सर दंगे होने का कारण दूसरे की भावना को आहत पहुँचाना है। किसी भी महानगर की जीवन शैली को देखें तो, कोई भी मनुष्य सिर्फ़ किसी हिन्दू या मुस्लिम मनुष्य के धर्म को नगण्य बताए या उसकी भावना से खेले तो यही वह बिंदु होता है, जहाँ दंगा भड़कने का अवसर ज्यादा रहता है। "परेशान होने की बात नहीं है। मुम्बई जैसे बड़े शहरों में ऐसे छोटे-छोटे दंगे तो आए दिन होते ही रहते हैं।"[53] दंगे के समय आम-आदमी का ही जीवन प्रभावित होता है, 'चादर' कहानी का एक प्रसंग है -"कल रात धारावी में करीब सौ झोपड़े जला दिए गए। धुआँ सुबह यहाँ से भी दिखाई दे रहा था। अभी टेलीफोन पर खबर मिली है कि जोगेश्वरी में भी कई चालियों को आग लगा दी गई है।"[54] 'चादर' शीर्षक कहानी का कथ्य पूरी तरह शहर में होने वाले दंगे पर आधारित है। दंगे के माहौल में इंसान के भय को व्यंजित करती है, कहानी का एक प्रसंग द्रष्टव्य है -"भैया !हाल अच्छा नहीं है। अभी स्टेशन के बाहर किसी को छुरा मार दिया गया है। पुलिस की गाड़ियाँ गश्त कर रही हैं। स्टेशन के आस-पास कर्फ्यू लग गया है।"[55] इस कहानी में शीर्षक चुनाव की नवीनता को देख सकते हैं जो शिल्प बदलाव की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। प्रवाह शैली का उत्कृष्ट उदाहरण यह कहानी पेश करती है।

कहानी के नामकरण पर जाएँ तो, कहानीकार ने इस बात को ज़ेहन में रखकर नामकरण किया है कि दंगे में जो लोग मारे जाते हैं, उनमें सभी को चादर या कहें कफ़न कुछ ही लोगों को नसीब होता है। कहानी का एक

प्रसंग है -"एक स्त्री ने सर बाहर निकाला और उसने भी एक तह की हुई सफेद चादर सड़क की तरफ फ़ेंकी। फिर देखते ही देखते खिड़कियाँ खुलती गईं और तीन मिनट में सात सफेद दुधिया चादरें सड़क पर उछाल दी गईं। इंस्पेक्टर चिल्लाया। बस, बस, अब बस करो बहुत पुण्य हो गया।"[56]

उपनिवेशवादी भारत में सन् 1940 के दशक में मुस्लिम साम्प्रदायिकता फलने-फूलने लगी थी, जिसका मुख्य नारा था-'इस्लाम खतरे में' । परन्तु उस समय हिन्दू साम्प्रदायिक ताकतें कमजोर थीं -"हिन्दू सम्प्रदायवादियों ने हिन्दुओं और 'हिन्दुओं की संस्कृति के खतरे में होने' का शोर मचाया परन्तु वे भावनात्मक रूप से हिन्दुओं को भड़काने में उतने प्रभावशाली नहीं रहे जितना कि मुस्लिम सम्प्रदायवादी।"[57] 1980 के दशक में हिन्दू और मुस्लिम दोनों कौमों को एक मुख्य मुद्दा मिला -बाबरी मस्जिद, रामजन्मभूमि। इस मुद्दे ने हिन्दुओं को भड़काने में अहम भूमिका निभाई। जिसका भयावह रूप हमें 1992 में बाबरी मस्जिद विध्वंस के रूप में देखने को मिलता है। इस विध्वंस में दोनों कौमों का बराबर योगदान रहा। इस मुद्दे पर जमकर राजनीति हुई -"कई वर्षों के दौरान बी.जे.पी. और उसके सहयोगी संगठन विश्व हिन्दू परिषद और बजरंग दल, जिन सभी को आर.एस.एस. ने सावधानी पूर्वक पाला पोसा था, इस मुद्दे का इस्तेमाल करने और समूचे देश में हिन्दुओं की एक बड़ी संख्या को इसकी धार्मिक अपील के आधार पर अपने प्रभाव में लाने में कामयाब हो गए और साम्प्रदायिकता के प्रति इनके विरोध को कमजोर कर दिया।"[58]

बाबरी विध्वंस का प्रमुख कारण था-1992 ई. में 150000 लोगों की एक राजनीतिक रैली का दंगे में बदल जाना। जबकि प्रारम्भ में ही विवाद के बाद सर्वोच्च न्यायलय का आदेश था कि मस्जिद को कोई नुकसान न पहुँचाए। इस दंगे से मुम्बई और दिल्ली सहित कई अन्य शहरों में 2000 से अधिक लोग मारे गए। यह बताया जाता है कि भारत के प्रथम मुग़ल सम्राट बाबर के आदेश पर 1527 ई. में इस मस्जिद का निर्माण किया गया। 1940 के दशक से पहले, इस मस्जिद को मस्जिद-इ-जन्म स्थान (जन्म स्थान की मस्जिद) कहा जाता था। जब मीर बाकी नामक शासक आया तो इसका नाम 'बाबरी मस्जिद' रख दिया। बाबरी मस्जिद के इतिहास के बारे में हिन्दुओं और मुस्लिमों की अलग-अलग व्याख्या मिलती है -

हिन्दू व्याख्या के अनुसार,1527 ई. में मुस्लिम सम्राट बाबर ने सिकरी में चित्तौड़गढ़ के हिन्दू राजा राणा संग्राम सिंह को हराया। इस जीत के बाद बाबर ने अपने सेनापति मीरबाकी को वहाँ का सूबेदार बना दिया। मीरबाकी ने अयोध्या में बाबरी मस्जिद का निर्माण करवाया। परन्तु बाबर के राजनामचा बाबरनामा में वहाँ किसी नई मस्जिद का जिक्र नहीं है। हिन्दू व्याख्या के अनुसार 1992 में ध्वस्त ढाँचे मलबे से प्राचीन मंदिर के पैलियोग्राफिक (लेखन के प्राचीन कालीन रूप के अध्ययन) प्रमाण मिले हैं, विध्वंस के दिन 260 से अधिक कलाकृतियाँ और प्राचीन हिन्दू मंदिर का हिस्सा होने के तथ्य निकाले गए।

मुस्लिम व्याख्या के अनुसार, बाबरी विध्वंस के बाद पुरातत्व रिपोर्ट राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ (आर.एस.एस.), विश्व हिन्दू परिषद और हिन्दू मुन्नानी जैसे अतिवादी संगठनों द्वारा तैयार की गई हैं, जो सही नहीं है। ये सब संगठन राजनीति से प्रेरित हैं। मुसलमानों और आलोचकों का कहना है कि 'हर जगह पशु की हड्डियों के साथ-साथ सुर्खी और चूना-गारा पाया गया है' ये सभी मुसलमानों की मौजूदगी के लक्षण हैं। जो कि बाबरी मस्जिद के नीचे हिन्दू मंदिर की संभावना को ध्वस्त करते हैं।

बाबरी मस्जिद की घटना को कथ्य बनाकर बहुत कहानियाँ लिखी गई हैं। इस दशक में बहुत सारी लम्बी कहानियाँ गढ़ी गईं, जिनमें अलग-अलग पात्रों की अलग-अलग जमात चलती दिखाई देती है, इसी ढब की कहानी है 'बुढ़वा' मंगल'(अनवर सुहैल)। यह कहानी ख़ास तौर से होली पर्व पर आधारित है। इस कहानी में हिन्दू और मुस्लिम परिवार के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध को उकेरा गया है। कहानी में तब्दीली तब आती है, जब होली का त्योहार आता है। बाबरी कांड के बाद इन दोनों परिवारों के सम्बन्धों में परिवर्तन आ जाता है -"इधर बाबरी प्रकरण, ग्यारह सितम्बर का आतंकवादी हमला, संसद और अक्षर धाम मंदिर पर फिदायीन हमले और गोधरा-गुजरात के फसादान के बाद तो जैसे एक दूसरे सम्प्रदायों पर छींटाकशी और छेड़-छाड़ की घटनाओं में भरपूर इजाफ़ा हुआ है। अलगाव की ये आँधी जानें कहाँ पहुंचाएगी, कुछ कहा नहीं जा सकता। अमन शांति की वकालत करने वाली ताकतों की आवाज़ें नक्कारखाने में तूती की आवाज़ बन चुकी हैं।"[59] इस कहानी में संकेत किया गया है कि भारतीय मुसलमान बाबरी ढहने के बाद डर-डर कर जीवन यापन करने लगे हैं, कहानी

का प्रसंग है-"जानती हो पिछले माह जब मैं घर गया तो वहाँ देखा कि हमारे घर की चारदीवारी पर स्वास्तिक निशान बनाया गया है। बाबरी मस्जिद के बाद उन लोगों का मन बढ़ गया है। मैंने जब अब्बा से इस बारे में बात की तो वह जोर से हँसे और कहे कि ये सब लड़कों की शैतानी है। ऐसी-वैसी कोई बात नहीं। अब तुम्ही बताओ कि मैं चिंता क्यों न करूं ?"[60] शिल्प के स्तर पर विधागत प्रयोग को इस कहानी में देख सकते हैं।

नीला प्रसाद की कुछ कहानियाँ बाबरी प्रकरण के यथार्थ को रेखांकित करती हैं। 'एक मस्जिद समानांतर' कहानी दो विधर्मी लड़के-लड़की के प्रेम पर आधारित है। मस्जिद टूटने से दोनों के बीच वैचारिक मतभेद शुरू हो जाता है, कहानी का एक प्रसंग है- "पर लड़की के मन में टूटी मस्जिद का इलाका विवादास्पद ही बना रहा। सिर्फ़ देश में नहीं उसके अंदर भी कानूनी बहसें चलती रहीं और बयान बदलते रहे। कारगिल में युद्ध होता रहा, हर मुशर्रफ-वाजपेयी वार्ता हो जाती रही, मस्जिद के इलाके को लेकर दोनों पक्षों में लामबंदी होती रही।"[61] इस कहानी में संकेत किया गया है कि मस्जिद टूटने से मानवीय सम्बन्धों में भी टूटन आ गई है। कहानी में लड़की, लड़के के जन्मदिन पर उसके घर जाना चाहती है, परन्तु घर से बाहर का माहौल इतना ख़राब होता है कि वह घर में ही रह जाती है। कहानी का प्रसंग है -"मस्जिद टूट गई है, लड़की ने एक कार्ड पर लिखकर उसे देने के लिए रख लिया। कैसे पहुँचाऊँ ? क्या खुद देने जाऊँ ?"[62] इस कहानी में संवाद-शैली उत्कृष्ट है। भाषा में तारतम्यता व्याप्त है।

नूर जहीर की कहानी 'ट्राजिंट की ज़िन्दगी' ऑफ़िस में एक-दूसरे से बातचीत के माध्यम से बाबरी प्रकरण के यथार्थ को उद्घाटित करती है, पात्र सौम्या के शब्दों में -"सौम्या बिफर पड़ी, आप लोगों ने रामजन्मभूमि के नाम पर हिंदुत्व को उछाला, पागलपन की एक बाढ़ आई, और हिन्दू धर्म के कुछ ठेकेदारों ने, कुछ गुंडों के सहारे बाबरी मस्जिद गिरा दी। करली आपने अपनी मनमानी। इसके बाद क्या कीजिएगा।"[63]

अनवर सुहैल की अधिकांश कहानियों में शीर्षक चुनाव में नवीनता दिखाई पड़ती है।'दहशतगर्द' उनकी चर्चित कहानी है। इस कहानी में बाबरी विध्वंस के बाद भारत में हिन्दुओं और मुसलमानों के ग्राहकों के बीच मनमुटाव को सम्प्रेषित किया गया है -"बाबरी मस्जिद गिराने के बाद नगर के दुकानदार और ग्राहकों की

मानसिकता में फाँक दिखलाई देने लगी है। ऐसे समय में समझदार सयाने जाने क्यों चुप हैं? अब हिन्दू ग्राहक मुसलमान दुकानों से सामान खरीदने में परहेज करता है। तुम्हें मालूम कि पहले गोश्त की दुकानें सिर्फ मुलमानों की थीं। लेकिन उन लोगों ने हमारी दुकानों से गोश्त खरीदना बंद कर दिया है। समझे यार भाई। गली के दूसरी तरफ़ उनके आदमियों ने 'झटके' वाली गोश्त की दुकानें खोल ली हैं।"[64] 'दहशतगर्द' कहानी में प्रजातंत्र के खोखलेपन को भी उकेरा गया है-" ऐसे ही छ: दिसम्बर बानबे के दिन बाबरी मस्जिद ढहा दी गई। प्रजातंत्र का मुखिया दुखी मुद्रा में टेसुए बहाता रहा -"मेरे साथ धोखा हुआ ! मुझे राज्य सरकार ने अँधेरे में रखा !" बाबरी मस्जिद क्या ढही, मूसा उदास रहने लगा था।"[65]

सरोज खान 'बातिश' की कहानी 'जिहाद' बाबरी विध्वंस के समय हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच तनाव को व्यंजित करती है -"मन्दिर-मस्जिद मामले को लेकर मुठ्ठियाँ तन गई थीं तलवारें खिंच आई थीं। चिश्ती और राम की धरती पर साम्प्रदायिकता की आग में जलने लगे थे लोग, गाँव से कस्बा, कस्बे से नगर, नगर से राज्य, राज्य से देश इस हंगामे से प्रभावित होने लगा था। कई जगहों पर दंगे हुए न जाने कितने लोग अल्लाह और भगवान की राह में कत्ल व शहीद हुए। तनाव बढ़ता ही गया।"[66] इस कहानी में पात्रों की संवाद-शैली बेहतरीन है। एक तरफ मार्क्सवादी विचारधारा से ओत-प्रोत हरेराम और नसीरी, दूसरी तरफ रहमाना जो किसी विचारधारा में विश्वास नहीं करता, इन तीनों के संवाद द्वारा कहानीकार ने जिहाद की सच्चाइयों को उकेरा है।

साम्प्रदायिकता की समस्या को आधार बनाकर पहले दशक में बहुत सारी महत्वपूर्ण कहानियाँ लिखी गई हैं। गीतांजलि श्री की कहानी 'बेलपत्र' वहाँ से शुरू होती है -"जहाँ स्वयं प्रकाश की कहानी 'पार्टीशन' समाप्त होती है। साम्प्रदायिकता का उभार ऐसे लोगों को भी जो धार्मिक पहचान को व्यर्थ मान चुके होते हैं, दोबारा धार्मिक पहचान की ओर मुड़ने को विवश कर देता है। स्वयं प्रकाश की कहानी अगर इस परिघटना को पब्लिक डोमेन के परिप्रेक्ष्य में रचती है तो गीतांजलि श्री की कहानी प्राइवेट डोमेन के क्षेत्र में। यह कहना अनुचित न होगा कि इस दौर में हिंदी की कुछ बेहतरीन कहानियाँ साम्प्रदायिकता के इर्द-गिर्द रची गयी हैं।"[67]

यह कहानी साम्प्रदायिकता के कारण पति-पत्नी के बीच तनाव को सूक्ष्मता से अंकित करती है। लड़का हिन्दू है और लड़की मुस्लिम। समाज की परवाह न करते हुए दोनों विवाह के बंधन में बँधते हैं। दोनों धार्मिकता को व्यर्थ समझते हैं। परन्तु कभी-कभी धर्म पर बात आकर अटक जाती है, जिसके कारण दोनों में तनाव पैदा हो जाता है। कहानी का एक प्रसंग है -"सारा जग इठलाएगा कि उन्हें तो हमेशा पता था तेल और पानी का मेल कब हो पाया है। ...तुम सँभलती क्यों नहीं ...? हमने एक दूसरे से प्यार किया है। धर्म से परे। ...तुमने क्यों ठान लिया है कि दुनिया के रचे झूठे भँवर में हम फँस जाएँ ?...तुली हुई हो हमें हिन्दू-मुसलमान दिखाने में। ...फातिमा, तुम जहर को मरहम समझ रही हो। प्लीज़ फ़ातिमा प्लीज़ ...। जिसमें से लड़कर निकल आए थे उस गड्ढ़े में फिर जाना चाहती हो ?...हम तो बेइंसाफी से लड़ने वालों के लिए एक ताकत बन गए थे।"[68] गीतांजलि श्री के पात्र बहुत ही सहज होते हैं। उनकी कहानियाँ प्रमुख रूप से भाषा वैविध्य के लिए जानी जाती हैं।

अक्सर देखा जाता है कि समाज में अगर प्रेम विवाह होता है तो स्त्री को ज्यादा कीमत चुकानी पड़ती है, फिर वे चाहे एक ही धर्म क्यों न हों। परन्तु, स्त्री दूसरे धर्म से हो तो यह कीमत और भी बढ़ जाती है-"घर परिवार, रिश्ते-नातों और मित्रों से उसे बहुत सारी ऐसी बातें सुननी पड़ती हैं, जिनका सामना पुरुष को प्रायः नहीं करना पड़ता है। पुरुष की नज़र में ये छोटी-छोटी लड़ाइयाँ हैं। लेकिन स्त्री के लिए, ये छोटी-छोटी लड़ाइयाँ ही असली हैं। बड़ी लड़ाइयाँ लड़ना आसान है। ये छोटी लड़ाइयाँ कीड़े की तरह, घिनौनी दीमक की तरह लग जाती हैं, खोखला कर देती हैं। इतनी छोटी होती हैं कि बड़ी स्वाभिमानी लड़ाइयों से इन्हें जोड़ कर देखना दुर्लभ हो जाता है। ये समस्याएँ अप्रत्याशित नहीं थीं, किन्तु साम्प्रदायिक उन्माद के दौर में इन्होंने ऐसी रंगत हासिल कर ली कि परस्पर संवाद की गुंजाइश ही शेष न रही।"[69]

साम्प्रदायिकता का प्रभाव सिर्फ समाज पर ही नहीं पड़ता, बल्कि मनुष्य के अवचेतन मन को भी प्रभावित करता है -"साम्प्रदायिकता का सम्बन्ध सिर्फ़ बाहरी परिघटनाओं, सामाजिक सम्बन्धों और आचार

व्यवहार से नहीं है, उसकी जड़ें बहुत गहरी हमारे अवचेतन तक में घुसी हुई हैं। तनाव के माहौल में ये ऊपर निकल आती हैं, प्रेम की बुनियाद पर बने स्त्री-पुरुष सम्बन्ध को भी छिन्न-भिन्न कर देती है।"[70]

साम्प्रदायिकता का सम्बन्ध भले ही राजनीतिक लाभ के लिए या कहें वोट बैंक के लिए करवाया जाता है, परन्तु इसका प्रभाव गरीब, असहाय पर ज्यादा पड़ता है। जिनका इन दंगों से कोई लेना-देना नहीं होता है। शाहिद अख्तर की कहानी 'ज़िन्दगी' खास तौर से एक परिवार पर किस ढंग से दंगे का डर बैठ जाता है, उसको रेखांकित करती है, कहानी का एक प्रसंग है -"ये मालूम होते ही कि शहर के हालात एक बार फिर बिगाड़ने की कोशिश की गई है, उसकी उलझने और बढ़ गईं। बीवी बच्चों का चेहरा आँखों के सामने घूम गया।"[71]

आज मनुष्य अपनी रोजी-रोटी के लिए गाँव से शहर की ओर पलायन कर रहा है। लेकिन सच्चाई यह है कि शहर की ज़िन्दगी भी भागम-भाग हो गई है, जहाँ जीवन-यापन करना खतरे से खाली नहीं है। इस कहानी में दंगे के समय मनुष्य के भीतर के डर को उद्घाटित किया गया है -"एक-एक पल वर्षों की तरह बीत रहा था। मुश्किलें पहले भी आई लेकिन ऐसी कभी नहीं आईं! यद्दपि इस क्षेत्र में शांति थी मगर ये कायम रहेगी इसकी जिम्मेदारी लेने वाला कोई नहीं था।"[72]

दंगे का प्रभाव छोटे-छोटे बच्चों के मन-मस्तिष्क पर भी पड़ता है। इस कहानी में छोटे से परिवार में पल रहे आठ वर्षीय बच्चे की सोच को उकेरा गया है। दंगे के माहौल में यह बच्चा अपने पिता से पूछता है -"आठ वर्षीय बबलू ने अपने बाप से पूछा, अब्बू ये जो तीन लोग मरे हैं ये हिन्दू हैं या मुसलमान वह हैरत से बबलू का मुँह ताकता रह गया। वह समझ नहीं पा रहा था कि उसे क्या जवाब दे।"[73]

असगर वजाहत की कहानियाँ साम्प्रदायिकता की तह में छिपे विचारों को उकेरती हैं। 'ज़ख्म' शीर्षक कहानी इस कथ्य पर आधारित है कि शहर में दंगा सिर्फ़ कुछ ही लोगों द्वारा करवाया जाता है, वह भी सिर्फ़ तात्कालिक लाभ के लिए। दंगा होने के बाद साम्प्रदायिकता विरोधी सम्मेलन किया जाता है, सिर्फ दिखावे या प्रदर्शन के लिए। 'मुश्किल काम' कहानी का कथ्य दंगे के बाद की स्थिति पर आधारित है। कहानी में संकेत किया गया है कि दंगे में सिर्फ बेबस, गरीब लोग ही मारे जाते हैं। दंगे के बाद की स्थिति पर व्यंग्य, कहानी की

केन्द्रीय विशेषता है। 'मैं हिन्दू हूँ' कहानी दंगों को कैसे रोका जा सकता है, इस तथ्य को उकेरती है। कुछ युवक शहर में आये दिन हो रहे दंगों को रोकने की योजना बनाते हैं, परन्तु असफल हो जाते हैं।

कहानीकार अहमद निसा की कहानी 'चाँद अभी ढला नहीं' एक दफ्तर में काम करने वाले युवक की रोजमर्रा ज़िन्दगी पर केन्द्रित है। युवक नौकरी करके शहर में मकान लेता है, परन्तु जहाँ पर मकान लेता है, वहाँ आए दिन सांप्रदायिक दंगे होते रहते हैं। कहानी में इस बात की ओर संकेत किया गया है कि अब कोई भी जगह महफूज नहीं है। कहानी का प्रसंग है -"शहर की फिज़ा में आए दिन जहर घुला रहता है। ज़रा-ज़रा सी बात पर दंगे फूटते रहते हैं। ऐसे में किसी नई जगह पर जाकर रहना कहाँ की अक्लमंदी है ? अल्लाह न करे कोई मुसीबत आ जाए तो वहाँ मदद को भी कोई न खड़ा होगा।"[74] यह कहानी संवाद-शैली दृष्टि से सफल है। इस कहानी में पाठक तारतम्यता की कमी महसूस नहीं कर सकता है।

गीतांजलि श्री की कहानी 'आजकल' साम्प्रदायिक उन्माद की एक अद्भुत कहानी है। यह कहानी इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि साम्प्रदायिकता में युवक भटक जाते हैं और अपने जीवन को बेहतर नहीं बना पाते। हिन्दू-मुस्लिम दोनों अपने लड़कों को दंगों के लिए मानसिक और शारीरिक रूप से तैयार करते हैं। कहानी का एक प्रसंग है -"जो युवक निकल रहे थे, दूसरे थे। दूसरी जगहों से। लोकल नहीं, लोग कहते। वह शहर के घंटा घर पर जमा होते, फिर जत्थे बनाकर कभी इस तरफ़ कभी उस तरफ़ भालों, त्रिशूलों की नोंक पर अपने नारों को उछालते निकल रहे थे। अफ़वाह थी कि अब इधर का प्लान है।"[75] इनकी कहानियों में कथानक के स्तर पर वैविध्य मौज़ूद रहता है।

नीलाक्षी सिंह की कहानी 'परिंदे का इंतज़ार सा-कुछ' विशेष रूप से विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले लड़के-लड़कियों पर केन्द्रित है। विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले कुछ लड़के और लड़कियाँ एक दूसरे के दोस्त बन जाते हैं और एक दूसरे के सुख-दुःख में सहयोग करते हैं। "परिसर के अन्दर यह समूह ही जैसे उनके लिए परिवार का स्थानापन्न बन जाता है। हेमिंग्वे के शब्दों में कहें तो 'लिटिल सोसायटी' में ही संबंध मानवीय, घनिष्ठ और आत्मीय होते हैं। यह कहानी ऐसे ही आपसी सम्बन्धों को लेकर लिखी गयी है। इनमें से केवल

नसरीन मुस्लिम है। यह सिर्फ़ नसरीन की कहानी नहीं है। यह अवश्य है कि कहानी के उत्तरार्द्ध में नसरीन और उसके परिवार को साम्प्रदायिक उन्माद से बचाने की चिंता ही इस मित्र मण्डली की सबसे प्रमुख चिंता बन जाती है।"[76] विश्वविद्यालय की मित्र मण्डली नसरीन और उसके परिवार को सांप्रदायिक उन्माद से बचाने के लिए पूरी कोशिश करती है। लेकिन नसरीन को इस बात का आभास हो जाता है कि वह एक मुस्लिम लड़की है और उसके सारे दोस्त हिन्दू। लम्बी कहानियाँ गढ़ने में नीलाक्षी सिंह का नाम अग्रणी है। इस कहानी में उन्होंने प्रत्येक पात्रों के चरित्र को उद्घाटित करने में सफलता अर्जित की है।

'गोधरा' गुजरात प्रान्त का एक शहर है। 'गोधरा' का नाम सहसा तब सामने आया, जब वहाँ 27 फरवरी 2002 को रेलवे स्टेशन पर साबरमती ट्रेन में कुछ भीड़ ने सहसा आग लगा दी। जिससे पूरे गुजरात में सांप्रदायिक दंगा शुरू हो गया। इस बात पर गौर किया जा सकता है कि अधिकतर साम्प्रदायिक दंगा एक धर्म के लोगों द्वारा दूसरे धर्म के लोगों की भावनाओं को आहत पहुँचाने से होता है। समकालीन कहानीकार अनवर सुहैल की कुछ कहानियां गोधरा कांड की शिनाख्त में लिखी गई हैं। उनकी 'बुढ़वा मंगल' शीर्षक कहानी में गोधरा कांड की सच्चाइयों को उजागर किया गया है।

इक्कीसवीं सदी की पहले दशक में सन् 2006 से लेकर सन् 2009 तक अधिक मात्रा में दंगे हुए, जिनका उल्लेख निम्नलिखित है -

सन् 2006 में हुए साम्प्रदायिक दंगे -

17 जनवरी (बड़ौदा), 3 फरवरी (मध्य-प्रदेश), 17 फरवरी (मुजफ्फरनगर), 24 फरवरी (हैदराबाद)

10 मार्च (बंगलौर), 26 मार्च (फतेहपुर), 6 अप्रैल (अलीगढ़), 11 अप्रैल (राजस्थान), 29 अप्रैल

(थाणे), 29 मई (अलीगढ़), 16 जून (राजस्थान), 18 जून (प्रतापगढ़), 22 अक्टूबर (बुंदेलखंड)।

सन् 2007 में हुए साम्प्रदायिक दंगे -

18 जनवरी (जयपुर), 17 सितम्बर (सूरत), 21 जनवरी (इंदौर), 28 सितम्बर (महाराष्ट्र), 27 जनवरी (गोरखपुर), 21 दिसम्बर (इंदौर), 12 फरवरी (इंदौर), 16 फरवरी (जयपुर), 28 मार्च (गुजरात), 1 अप्रैल (रायगढ़), 13 मई (शाहजहाँपुर)।

सन् 2008 में हुए साम्प्रदायिक दंगे -

1जनवरी (कंधमाल), 14 सितम्बर (कर्नाटक), 23 मार्च (चितौड़गढ़), 5 अक्तूबर (महाराष्ट्र) 28 जून (मध्य-प्रदेश), 12 अक्टूबर (आंध्रप्रदेश), 4 जुलाई (इंदौर), 27 जुलाई (महाराष्ट्र)।

सन् 2009 में हुए साम्प्रदायिक दंगे -

7 फरवरी (गुजरात), 4 अप्रैल (महाराष्ट्र), 18 जून (नांदेड़), 17 अगस्त (अहमदाबाद), 24 अक्टूबर (बहराइच)।

मुस्लिम समाज पर भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद के प्रभाव को कथ्य बनाकर बहुत सारी कहानियाँ लिखी गई हैं। उदाहरण के लिए मृगतृष्णा(शमोएल अहमद), अंधी सीढ़ियाँ (साजिद रशीद), मैनेजर जावेद हसन (इकबाल रिजवी), 'कागजी बादाम'(नासिरा शर्मा) एवं अनकबूत(शमोएल अहमद) आदि।

शमोएल अहमद की कहानी 'मृगतृष्णा' भूमंडलीकरण के प्रभाव को सांकेतिक करती है। भूमंडलीकरण से शहर और गाँव दोनों प्रभावित हुए हैं। शहर में हुए बदलाव को यह कहानी सूक्ष्म रूप में व्यंजित करती है -"मुहल्ले में बहुत कुछ बदल गया था। मैदान में जहाँ शतरंज खेलते थे वहाँ सरकारी पंप हाउस बन गया था। खपरैल मकान पुख्ता इमारतों में बदल गए थे। उलफत की दुकान पर उसका लड़का बैठता था। वहाँ अब बिरयानी भी बनती थी। इफ्तिखार की दुकान भी तरक्की कर गई थी। उसका लड़का आम डारी हाउस में साइबर कैफ़े चला रहा था।"[77] इस कहानी में भूमंडलीकरण के प्रभाव से मनुष्य के चरित्र में जो

परिवर्तन हो रहा है उसका चित्रण भी किया गया है। शिल्प के स्तर पर भाषागत वैविध्य मौज़ूद है। इस कहानी में देशकाल, वातावरण की पूरी झलक मिलती है।

भूमंडलीकरण को अंग्रजी में Globalization कहा जाता है। यह शब्द बीसवीं सदी के अंतिम दशक में व्यापक रूप से प्रचलन में आया। आम तौर पर भूमंडलीकरण से तात्पर्य यह है कि किसी एक देश की कम्पनियाँ किसी दूसरे देश में जाकर अपना व्यापार करें और उसके बाज़ार में शामिल हो जाएँ। लेकिन गौर किया जाए तो यह परिघटना सिर्फ़ पूँजीवादी वर्ग के लिए ही सही साबित हो रही है, आम जनता के लिए नहीं जिनको दो जून की रोटी नसीब नहीं होती। सच्चाई यह है कि जिस मनुष्य के पास पूँजी रहेगी वही तो कम्पनियों में अपनी पूँजी लगाकर धन कमाएगा, वहीं दूसरी तरफ जिनके पास पूँजी नहीं है वह कैसे लाभ लेगा। "वास्तव में इससे सिर्फ़ संसार का एक सम्पन्न वर्ग ही अपने व्यापारिक या व्यावसायिक हितों के लिए एक दूसरे से जुड़ता है। प्रत्येक क्षेत्र और देश में नए संचार माध्यमों से जुड़े समूह अपने ही आस-पास के बहुसंख्यक वंचित समूहों से पूरी तरह कट जाते हैं। संसार का एक नया विभाजन सूचना समृद्ध और सूचना से वंचितों के बीच होता है।"[78]

भूमंडलीकरण जैसी परिघटना को पूरे देश में स्थापित करने में मीडिया का बहुत बड़ा हाथ रहा है। आज देश में इस परिघटना का कोई लाभ ले रह है तो वह है अमेरिका। विचारक अमरनाथ के शब्दों में -"सच तो यह है कि मुक्त बाज़ार, मंडीतंत्र, प्रतिस्पर्द्धा एवं समन्वित अर्थव्यवस्था, इन सबका सीधे शब्दों में एक अर्थ है 'अमेरिकी वर्चस्व'। सीमा-संघर्ष, गृह-युद्ध अथवा क्षेत्रीय युद्ध अंतर्राष्ट्रीय उद्योगों एवं हथियारों के अंतर्राष्ट्रीय सौदागरों को सदैव रास आते है।"[79] इस परिघटना से भारत की जो सांस्कृतिक विरासत थी वह धीरे-धीरे नष्ट हो रही है -पहनावे से लेकर खान-पान, वेश-भूषा आदि। "अपराधों में वृद्धि, मनोरंजन के व्यापार में शो बिजनेस के साथ-साथ मुक्त यौनाचार, उद्दाम संगीत और अश्लील साहित्य का हमारे यहाँ भी उद्योग बन चुका है। पूरी जीवन शैली का अमेरिकीकरण हो चुका है। दूर दराज के उन क्षेत्रों में जहाँ लोगों को साफ पेय जल या सड़कें व अन्य मौलिक सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं हैं। टी.वी. की पहुँच के कारण लोग काल्पनिक दुनिया व यथार्थ में फर्क करना भूल चुके हैं।"[80]

अंधी सीढ़ियाँ (साजिद रशीद) शीर्षक कहानी में शिल्प के स्तर पर भाषागत वैविध्य मौज़ूद है, कहानी का एक प्रसंग है- ''सर नाउ सिचुएशन इज गोइंग टू चेंज .... यस सर अब कुछ भी हो सकता है। वह सी.एम. ऑफिस की तरफ मार्च करने जा रहे हैं ... यस सर उन्हें घेराव करने के लिए कह दिया है ... ओ.के. सर, वी विल ओबे योर आर्डर...।''[81] मैनेजर जावेद हसन (इकबाल रिजवी) कहानी भी मुस्लिम समाज पर भूमंडलीकरण के प्रभाव को व्यंजित करती हैं। संवाद शैली की दृष्टि से यह कहानी विशिष्ट है।

नासिरा शर्मा की कहानी 'कागजी बादाम' आम जनता पर बाज़ारवाद के पड़ते प्रभाव को केंद्र में रखकर लिखी गई है। इस कहानी में एक स्त्री चंद पैसों के लिए अपनी बेटी को गिरवी रख देती है। आज पूँजी की महत्ता बढ़ गई है। पूँजी प्राप्त करने के लिए मनुष्य गलत कार्य करने के लिए अभिशप्त है। पैसे के लिए मानवीयता को ताख पर या कहें एक तरफ रख देना कहानी की केन्द्रीय विशेषता है। कहानी का एक प्रसंग है -"चलते वक्त गुलबानो मुँह फाड़कर रो पड़ी। अजीज़ डंगरवाल बेचैन हो उठा। लाल ज़ाद ने डंगरवाल को शाना थपकर हिम्मत बँधाई, मगर वह बेटी को अपने से अलग न कर सका। "बाबा, मुझे छोड़ो मत बाबा !" गुलबानो सिसक रही थी। यह सारा मंजर देखकर घर की मालकिन ने साहब से इशारा किया। उन्होंने सौ का नोट अज़ीज़ की तरफ़ बढ़ाते हुए कहा, "बच्ची है, एक-दो दिन में इसका दिल लग जाएगा।"[82] लम्बी कहानी के क्षेत्र में नए प्रयोग को इस कहानी में देख सकते हैं। कहानी बहुत ही लम्बी है परन्तु तारतम्यता की कमी को पाठक को महसूस नहीं होने देती है।

शमोएल अहमद की 'अनकबूत' कहानी बाज़ारवादी संस्कृति के यथार्थ को सम्प्रेषित करती है। इस कहानी में पात्रों के चरित्र में बहुत ही वैविध्य है। भाषागत प्रयोग कहानी में व्याप्त है, कहानी का एक प्रसंग द्रष्टव्य है -''हाई! हाई! ए एस एल प्लीज... ! मेल थर्टी इंडिया। मेल टू। बाई। बाई।''[83] इसी कहानी का दूसरा प्रसंग कुछ इस प्रकार है- ''हैलो! हाई! आर यू ब्यूटी ....? यस! आई एम बीस्ट। हा ... हा ... हा ... बयूटी एण्ड बीस्ट।''[84]

इस दशक में धर्म से प्रभावित मुस्लिम समाज पर आधारित बहुत सारी कहानियाँ लिखी गई हैं, उदाहरण के लिए निम्नलिखित कहानियों को देख सकते हैं - तहारत (शकील)2000, जिहाद (सरोज खान 'बातिश')2001, चिराग तले (स्वामी वाहिद काज़मी)2002, अजान की आवाज (मेराज अहमद)2005, एक मस्जिद समानांतर (नीला प्रसाद)2006, रफीक भाई को समझाइए (अनुज)2006, मॉमु (हसन जमाल)2008, एवं बदलते रंग (शमोएल अहमद)2009 आदि। उपर्युक्त कहानियों की वस्तु एवं शिल्प पर बात करने से पहले धर्म पर विवेचन कर लेना शोध की दृष्टि से समीचीन होगा।

आम तौर पर यह मान्यता है कि धर्म से आशय, अपने कर्तव्य का पालन करना। धर्म -'धृ' धातु से बना है। अंग्रेजी में इसे Religion कहा जाता है। जिस शब्द का मानव जाति ने सबसे अधिक दुरुपयोग किया है, वह है -'धर्म'। यह भी सर्वविदित है कि मानव जिस शब्द में सबसे अधिक आस्था रखता है -वह है -'धर्म'। "धर्म के प्रति यह समर्पण अनेक बार अंधविश्वास और अंधश्रद्धा तक पहुँच जाता है और जिसे वह 'धर्म' मानता है, उसकी रक्षा के लिए वह अपने प्राणों का ही नहीं, बल्कि अपना अस्तित्व तक बलिदान करने के लिए तैयार हो जाता है। इस शब्द का आश्रय लेकर मानव ने एक ओर जहाँ सर्वाधिक सृजनात्मक कार्य किए हैं, अपना उत्कर्ष किया है, मानवता के श्रेष्ठतम मूल्यों को उद्घाटित किया है, वहीं दूसरी ओर इस शब्द की आड़ लेकर उसने सर्वाधिक रक्त भी बहाया है।"[85] धर्म के नाम पर ही बहुत से युद्ध हुए, एक दूसरे के गले काटे गए। समस्त पाखण्ड, अंधविश्वास, धार्मिक कर्मकाण्ड सब 'धर्म' से ही जुड़ा हुआ है। 'धर्म' को लेकर क्यों विरोधाभास है, इसको जानने समझने की जरूरत है। भारतीय सन्दर्भ में बात करें तो भारतीय मनीषियों ने धर्म को न्याय का पर्यायवाची माना- "धर्म ही सत्य है, सत्य ही 'धर्म' है - यह विश्वास रहा है भारतीय मनीषियों का। यही विश्वास रहा है उन सत्य द्रष्टाओं का, जो कभी वैदिक ऋषियों के रूप में अवतरित हुए, कभी महात्मा बुद्ध के रूप में, कभी महावीर के रूप में, कभी जीसस क्राइस्ट के रूप में, कभी मोहम्मद साहब के रूप में और कभी महात्मा गाँधी के रूप में। निष्कर्ष यह है कि जिन्होंने 'धर्म' के क्षेत्र में प्रवेश किया, उसके वास्तविक स्वरूप को जानने समझने की चेष्टा की, उसके प्रति अपने आपको पूर्ण रूप से समर्पित कर दिया, उन्हें जो प्राप्त हुआ उसका सम्मान आज भी विश्व करता है।"[86]

धर्म के विषय में वास्तविकता यह है कि धर्म की परख मात्र कर्म से ही हो सकती है। धर्म और पाखंड के बीच के अंतर को सिर्फ कर्म द्वारा ही समझा जा सकता है। नरेंद्र मोहन के शब्दों में -"धर्म के सम्बन्ध में कर्म को हम कई रूपों में विभाजित कर सकते हैं। एक रूप वह है -जब हम कुछ प्राप्त करने के लिए कर्म करते हैं। लेकिन इसका एक दूसरा रूप भी है जो किसी इच्छा से प्रभावित नहीं होता। कर्म का जो दूसरा रूप है, उसमें कर्ता की अपनी स्वयं की कोई इच्छा नहीं होती और न कोई आकांक्षा। अपने इस दूसरे रूप में कर्म तो कर्ता का वह स्वभाव बन जाता है, जिससे कर्ता के अस्तित्व की पहचान होती है।"[87]

पश्चिमी देशों में धर्म को नीति से जोड़ा गया है और व्यक्ति पर अनेक आदेश निर्देश थोप दिए गए हैं। वहीं भारत में धर्म को सत्य से जोड़ा गया है। भारतीय मनीषियों की यह मान्यता रही है कि धर्म और नीति दोनों के रास्ते अलग-अलग हैं। भारतीय मनीषियों के अनुसार धर्म आत्मतत्व के प्रति सतत जागरूकता का नाम है। जिस व्यक्ति में अगर एक बार सत्य के प्रति विश्वास जाग गया वह मनुष्य समस्त तमस, समस्त विकार, समस्त अज्ञान से परे हो जाता है।

धर्म को लेकर यह प्रश्न बार-बार उठाया जाता है कि कौन बनेगा इस बात का साक्षी कि क्या धर्म और क्या अधर्म है? क्या हम धर्म ग्रन्थों की व्याख्याओं या परिभाषाओं को आधार मानें ? लेकिन जब इन धर्म ग्रन्थों की परिभाषाओं को आधार मानेंगे तो किस ग्रन्थ की परिभाषा को सर्वाधिक महत्व प्रदान करेंगे ? यह भी है कि हम सभी धर्म ग्रन्थों को आधार नहीं मान सकते। किसी एक धर्म ग्रन्थ को महत्व देना ही होगा। और यहीं से धर्म के बारे में मतभेद प्रारम्भ होता है। "हम महत्व वैदिक ऋचाओं को दें या उपनिषदों को या महात्मा बुद्ध के 'धम्मपद' को या महावीर के 'जिन सूत्रों' को या कुरान शरीफ की 'आयतों' को अथवा बाइबिल के निष्कर्षों को अथवा अन्य किसी धर्म ग्रन्थ को ? यहाँ हमें यह समझ लेना चाहिए कि जिन ग्रन्थों को धर्म ग्रन्थ की संज्ञा दी गई है, उनमें से अधिकांश इस धरती के महापुरुषों की वे अनुभूतियाँ हैं, जो उन्हें आत्मचिंतन से अन्तस में गहरे जाने से मिली है।"[88]

वैसे यथार्थ यही है कि 'धर्म' का सम्बन्ध आंतरिक शुद्धीकरण से है, बाह्य परिवेश से नहीं। "धर्म के नाम पर गढ़े गए बाह्य परिवेश व प्रतीक जैसे कि मंदिर, मस्जिद, गिरिजाघर बहुत ही सीमित रूप में केवल तब लाभकारी हो सकते हैं जब उनका प्रयोग सर्वव्यापी चैतन्य को समझने के लिए किया जाए। बाह्य प्रतीकों का महत्व मानव के आन्तरिक विकास में बहुत ही सीमित होता है। सामान्यतः ये बाह्य प्रतीक समाज में विभाजन व साम्प्रदायिकता के साधन बन जाते हैं तथा परम एकत्व के चिंतन में बाधक बनने लगते हैं।"[89] धर्म के वास्तविक निहितार्थ को समझकर ही मानव जाति कल्याण की राह पर चल सकती है। धार्मिक चेतना कभी गलत नहीं होती, गलत होता है मानव जाति का विचार। जब मनुष्य धर्म के नाम पर गलत कार्य करने लगता है और अन्धविश्वासी बन जाता है।

धर्म का हस्तक्षेप या कहें प्रभाव सबसे अधिक मुस्लिम समाज में है। धार्मिक प्रभाव के कारण यह समाज आज भी धार्मिक रूढ़ियों में जकड़कर गलत कार्य करता है। मुस्लिम समाज में धर्म को सबसे ऊपर रखा जाता है। धर्म ही या कहें कुरान शरीफ, हदीस की व्याख्या ही उनके लिए आज्ञा पालन है। एक बात और देखने को मिलती है कि कुरान शरीफ में जो लिखा गया है, उसका पालन इस समाज द्वारा नहीं किया जाता बल्कि मुल्ला, मौलवी वर्ग जो कहते हैं, उसी का पालन करते हैं। मुस्लिम समाज में मज़हब के नाम पर बहुत सारे गलत कार्य किए जाते हैं। 'जिहाद' जिसका अर्थ है -अपने देश की बाहरी शत्रुओं से रक्षा करना। परन्तु मुस्लिम समाज में 'जिहाद' का विपरीत अर्थ लिया जाता है। 'जिहाद' के नाम पर मुस्लिम बच्चों से अवैध कार्य करवाए जाते हैं। मानसिक और शारीरिक रूप से उन्हें आतंकवादी बनने के लिए विवश किया जाता है।

हबीब कैफ़ी की कहानी 'जय श्री बाबर' मज़हब के नाम पर समाज में हो रहे गलत कार्य को उजागर करती है। कहानी का एक प्रसंग है -"मज़हब के बहाने मुल्क से दुश्मनी साफ़-सी नज़र आ रही है। मैं एक आला अफ़सर की हैसियत से नहीं, बल्कि एक आम शहरी की हैसियत से कह रहा हूँ। कह देना मैं यह भी चाहता हूँ कि सो काल्ड हृदय सम्राटों और नफ़रत की 'परियोग शालाओं' के टेम्परेरी मालिकान की ऐन के

नाक नीचे गऊकुशी का व्यापार खुलेआम हो रहा है और इससे इन्कम भी हो रही है ।"[90] इस कहानी में रिपोर्ताज शैली के प्रभाव को देख सकते हैं।

निबंध शैली के प्रभाव को 'तहारत' शीर्षक कहानी में देख सकते हैं। पूरी कहानी मुस्लिम परिवार पर आधारित है। पिता जो अपने बच्चों को किसी तरह पाल-पोषकर बड़ा करता है। मदरसों में अपने बच्चों को तालीम दिलाता है। बच्चे जब बड़े होते हैं, तो मदरसों से प्राप्त शिक्षा का पूरा असर दिखाई पड़ता है। बड़ा लड़का धर्म में बहुत रुचि रखने लगता है। कहानी में मदरसों में शिक्षा की स्थिति को भी रेखांकित किया गया है। मुस्लिम धर्म से प्रभावित बड़ा पुत्र पूरी तरह धार्मिक हो जाता है, कहानी का एक प्रसंग है -"भाई भी हद तक मज़हबी थे। दुनिया के हर काम को उचित-अनुचित की मज़हबी दृष्टि से देखते थे। मज़हबी उसूल उनके लिए कहीं अधिक मूल्यवान थे, रिश्तों की निश्छलता और आत्मीयता कम।"[91]

'जिहाद' कहानी मज़हब के नाम पर हो रहे खून-खराबे को उद्घाटित करती है। कहानी का एक प्रसंग है -"इस खबर पर मुसलमानों ने कम, हिन्दुओं ने अधिक शोर मचाया था। मगर अल्लाह का मज़हब और न भगवान का शाप नाजील हुआ, हुआ तो खून-खराबा, अल्लाह और भगवान के नाम पर।"[92] शिल्प की दृष्टि से कथानक के स्तर पर प्रयोग को इस कहानी में देख सकते हैं। भाषा-शैली बहुत ही बेजोड़ है।

'चिराग तले' कहानी मस्जिद में धर्म के नाम पर हो रहे गलत कार्य जैसे-जुआ, बलात्कार, स्त्री-शोषण आदि को सम्प्रेषित करती है -"मैंने भीतर प्रवेश किया तो देखता यह हूँ कि फर्श पर बिछे गद्दे पर छिद्दू खां सहित चार व्यक्ति अपने-अपने हाथों में थामे ताश के पत्तों में गम हैं और बीच में नोटों की एक संक्षिप्त-सी ढेरी लगी है ! दारू की खाली बोतल कोने में लुढ़की पड़ी है और चार-पाँच गिलास भी पड़े हैं।उनमें से दो व्यक्तियों को मैं बस इतना जनता था कि वे नमाज़ पढ़ने नियम पूर्व आते थे।"[93] कहानी में पात्रों के चरित्र का बहुत ही सूक्ष्म चित्रण किया गया है। कहानी में विवरणात्मक शैली का प्रयोग बेहतरीन है।

इस दशक में शैल्पिक प्रयोग की दृष्टि से ऐसी कहानियाँ लिखी गई हैं जिनमें अलग-अलग पात्रों की अलग-अलग कहानियाँ चलती हैं, ऐसी ही एक कहानी है 'मॉमु'। यह कहानी एक सीधे-साधे मुस्लिम व्यक्ति

पर केन्द्रित है। करीमखान जो पेशे से एडवोकेट है। अपनी रोजी-रोटी के लिए हमेशा तत्पर रहता है। गैर मुस्लिम करीमखान को धर्म का हवाला देकर भड़काते हैं, परन्तु करीमखान इनके बहकावे में न आकर अपने कार्य पर ध्यान देता है। करीमखान पर गैर मुस्लिम व्यंग्य करते हैं और कहते हैं -"वकील साहब ! आप काफ़िरो के बीच ज्यादा रहते हैं, इसलिए काफ़िरों की जबान बोलने लगे हैं। हम तो आपको दीनदार मुसलमान समझते थे। आज मालूम हुआ, आपके खयालात ऐसे हैं।"[94] इस कहानी में सभी पात्रों की अलग-अलग कहानियाँ चलती हुई प्रतीत होती हैं। मेराज अहमद की 'अजान की आवाज', नीला प्रसाद की 'एक मस्जिद समानांतर', अनुज की 'रफीक भाई को समझाइए' एवं शमोएल अहमद की 'बदलते रंग' आदि कहानियाँ मुस्लिम समाज पर धर्म के प्रभाव को व्यंजित करती हैं।

आज मुस्लिम समाज का निचला तबका विस्थापन की समस्या से जूझ रहा है। विस्थापन को अंग्रेजी में Displacement कहते हैं। किसी व्यक्ति अथवा समुदाय का एक स्थान से दूसरे स्थान पर किसी कारण वश जाना विस्थापन कहा जाता है। विस्थापन की समस्या को मुस्लिम परिप्रेक्ष्य में बात करें तो सन् 1946 में जब संवैधानिक बैठक हुई थी, उसमें भारत को दो विभागों में बाँट दिया गया था -भारत और पाकिस्तान। इस विभाजन से भारत और पाकिस्तान दोनों देशों के नागरिकों को कई तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ा था। जैसे-विस्थापन की, शरणार्थी, पुनर्वास, सांस्कृतिक साधारणीकरण की समस्या और मनोवैज्ञानिक समस्या। ख़ास तौर से विभाजन से पूर्व ही पंजाब और बंगाल में पीड़ा जन्य प्रभाव दिखाई देना आरम्भ हो गया था, और विभाजन के बाद इस स्थिति में और वृद्धि हुई। वैसे देखा जाए तो विभाजन का मूल कारण था -धर्म। धर्म के आधर पर ही भारत और पाकिस्तान जैसे दो मुल्कों का जन्म हुआ। जो समस्या विभाजन पूर्व थी वहीं समस्या विभाजन के बाद भी बनी रही। कौन-कौन से राज्य भारत में रहेंगे और कौन-कौन से पाकिस्तान में ? इन दोनों देशों की सीमा का निर्धारण कैसे हो ? आदि। इस असमंजस की स्थिति में आम जनता को भय, तनाव, अविश्वास, प्रतिरोध, लूटपाट आगजनी व बलात्कार जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ा। एक बात और देखने को मिलती है कि जिस इलाके में जिस धर्म के लोगों की संख्या कम होती थी, वहाँ से उनको खदेड़ दिया

जाता था और उनका जबरदस्त शोषण भी किया जाता। जिसके कारण विस्थापन की समस्या उत्पन्न होती और इस तरह थोड़े ही समय में लाखों लोग अपने-अपने घरों से बेघर हो जाते।

आज विस्थापन की समस्या में बहुत हद तक बदलाव आया है। भारत में रह रहे मुस्लिम समुदाय को कई कारणों से विस्थापन की समस्या से जूझना पड़ रहा है। विकास के नाम पर बाँध, कारखाने, रेलवे लाइन, औद्योगिक क्षेत्र का निर्माण, सड़क-निर्माण, परमाणु व ताप, विद्युत गृह का निर्माण, खेल स्टेडियम आदि का निर्माण किया जाता है, परन्तु निर्माण के लिए जमीन की आवश्यकता पड़ती है। जमीन के लिए सरकार आम जनता से जबरदस्ती भी करती है। सच्चाई यह भी है कि मुस्लिम समुदाय के लोगों को डरा-धमकाकर जमीन तो ले ली जाती है, परन्तु उनको मुआवज़ा नहीं दिया जाता, जिसके कारण यह समुदाय विस्थापन की चपेट में आ जाता है। संविधान के अनुच्छेद-11 में यह दर्ज है कि प्रत्येक व्यक्ति को सम्मान पूर्वक जीने का अधिकार है। जिसमें आर्थिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक व्यवस्थाएँ भी शामिल हैं। आम तौर पर यह देखने को मिलता है कि जब भी कोई परियोजना विकास के नाम पर चलाई जाती है तो इस अनुच्छेद को भुला दिया जाता है।

साम्प्रदायिकता के कारण भी मनुष्य को विस्थापन का शिकार होना पड़ता है -"एक अनुमान के मुताबिक धार्मिक व सांप्रदायिक संघर्षों के चलते दुनिया भर में 50 लाख आईडीपी शरणार्थी शिविरों में रहने को मजबूर हैं। इसमें हर साल बीस लाख और आईडीपी जुड़ जाते हैं (कदीम 2005)। वहीं भारत में धार्मिक व सांप्रदायिक संघर्ष की वजह से आईडीपी होने वाले लोगों की सटीक संख्या का पता लगाना बेहद मुश्किल है क्योंकि इनमें से अधिकांश लोग अपने नाते-रिश्तेदारों के यहाँ शरण ले लेते हैं। केवल उन्हीं लोगों की गिनती हो पाती है जो राहत शिविरों में जाते हैं।"[95]

विकास के नाम पर हो रहे आंतरिक रूप से विस्थापित लोगों की बात करें तो, हालत और भी बदतर दिखाई पड़ती है। आंतरिक रूप से विस्थापित लोगों की तीन श्रेणियाँ मिलती हैं -पहला, आर्थिक बदलाव और नई तकनीक के कारण। "उदाहरण के तौर पर 1970 में तटीय उथले या कम पानी वाले इलाकों में गहरे पानी के लाने की मंजूरी से हजारों मछुआरों को उनकी आजीविका से दूर कर दिया गया (अलेक्जेंडर 1980)। गैर

वनीकरण के चलते लाखों आदिवासियों को अपनी रोजी-रोटी से हाथ धोना पड़ा (पांडे 1998 ए :2-3)। रबड़ के जूतों और चप्पलों ने दलित जूता बनाने वालों का रोजगार छीन लिया (त्रिवेदी 1977)। वैश्वीकरण के अहम अंग मशीनीकरण की वजह से खदान मजदूरों ख़ासकर महिलाओं को बड़ी संख्या में बेरोजगार कर दिया(बानुमथी 2002)।"[96] दूसरा, विकास परियोजनाओं ने जिनकी जमीन और संसाधनों पर कब्ज़ा कर लिया -"उदाहरण के तौर पर बंदरगाह परियोजनाएँ, जिनकी वजह से मछुआरों को समुद्र में जाने और मछली पकड़ने के अधिकार से वंचित रखा जाता है (फर्नांडिस तथा आसिफ 1997:109-111) । इसी तरह अप्रत्यक्ष तौर पर विस्थापित व्यक्ति भी हैं जो पर्यावरणीय प्रभावों की वजह से अपनी रिहाई से बाहर निकलने के लिए मजबूर कर दिए जाते हैं।"[97]

तीसरा, जमीन की उर्वरता, पानी, स्वास्थ्य आदि के कचरे के प्रभाव से विस्थापन । ऐसे लोगों की पहचान करना सम्भव नहीं है। सच्चाई यह है कि ऐसे लोग भी देश में मौजूद हैं।

उपर्युक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि परियोजनाओं के नाम पर या विकास के नाम पर लोगों को उनकी जमीन से, जहाँ वे रह रहे होते हैं, बेदखल तो कर दिया जाता है लेकिन उनको दूसरी जगह बसाया नहीं जाता या उचित मुआवज़ा नहीं दिया जाता है। जिसके कारण विस्थापित लोगों की हालत बदतर हो जाती है।

मुस्लिम समाज में विस्थापन की समस्या को केंद्र बनाकर कई कहानियाँ लिखी गई हैं । अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानी 'लंठ' किस्सागोई के माध्यम से ग्रामीण जन-जीवन में बचपन से ही विस्थापित बालक की कहानी है। जिसके माता-पिता बचपन में ही किसी कारणवश उसे छोड़कर चले जाते हैं। बालक किसी तरह एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमकर अपना पेट पालता है । इस कहानी में देशज शब्दों की बहुलता है । संवाद-शैली की दृष्टि से यह कहानी बहुत ही कमजोर है।

'एक बिन लिखी रज्मिया' शीर्षक कहानी प्रमुख रूप से बँटवारे पर आधारित है । इस कहानी में विभाजन के समय लोगों की बदहाली का चित्रण किया गया है। फ़ज़ल इमाम मल्लिक की कहानी 'विरासत में

मिली मुस्कराहट' विभाजन में विस्थापित लोगों की हालत पर प्रकाश डालती है। कहानी का एक प्रसंग द्रष्टव्य है -"कुछ लोगों के पाकिस्तान बनाने की गलती की सजा इस मुल्क में रह रहे मुसलमानों को झेलनी पड़ रही थी और वे या उन जैसे दूसरे लोग इसे एक बोझ की तरह अपने वजूद पर महसूस करते चले आ रहे थे। उन्हें पता था कि लोग उन्हें शक की निगाह से देखते हैं।"[98] लम्बी कहानी के क्षेत्र में नए प्रयोग की दृष्टि से यह कहानी सफल है। इस कहानी में शिल्प के स्तर पर विधागत प्रयोग व्याप्त है।

हसन जमाल द्वारा लिखित कहानी 'नुक्ताचीं है ग़मे-दिल' प्रमुख रूप से मुस्लिम समुदाय में व्याप्त राजनीतिक भ्रष्टाचार पर आधारित है। इस कहानी में आज जनता और राजनेता के बीच किस तरह ऊहापोह की स्थिति बनी हुई है उसका सूक्ष्म चित्रण किया गया है। इस कहानी में इस बात की ओर भी संकेत किया गया है कि जनता भी जागरूक हो गई है। अवसरवादी नेताओं से कैसे निपटा जा सकता है, इसका सटीक उदाहरण कहानी में उद्धृत है -"विधायक का रेला आगे बढ़ गया। कई तरह की खोपड़ियाँ मिलती हैं। किस-किस से माथा मारें ? अमजद मियाँ खड़े सोचने लगे, तवा गर्म था। अच्छा होता वह अपनी पत्रिका में विज्ञापन के लिए बात चलाए। आखिर चुनाव के दौरान ही बरसों से रुका हुआ काम लोग इन नेताओं से करवा लेते हैं। माजराजी बड़े व्यवसायी हैं। बड़ी मोबाइल एजेंसी के मालिक। हजार-पंद्रह सौ तो आसानी से दे सकते हैं।"[99] कहानी में देशकाल, वातावरण का पूरा ब्यौरा मौज़ूद। आज देशभर में जो राजनीतिक माहौल बना हुआ है कहानीकार उससे भलीभांति परिचित है।

मुस्लिम समाज में राजनीति के प्रभाव को देखा जा सकता है। मुस्लिम समुदाय को वोट बैंक के नाम पर छला जाता है। एक बात और है कि मुस्लिम समुदाय बहुसंख्यक वर्ग से तो छला जाता है वहीं दूसरी तरफ़ अपने ही समुदाय के उच्च वर्ग से भी राजनीतिक स्तर पर छलावे का शिकार बनता है।

भारतीय राजनीति और मुसलमानों की स्थिति पर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि पाकिस्तान बनने से पहले 1937 ई. में मुस्लिम लीग की स्थिति राजनीति में कमजोर थी। पाकिस्तान बनने के बाद मुसलमानों का राजनीतिक संगठन और कमजोर हो गया। जिसका तात्कालिक लाभ कांग्रेस पार्टी ने उठाया "कांग्रेस पार्टी ने

उस अवसर पर एक ओर तो मुस्लिम लीग के उन नेताओं का सहयोग लिया जो भारत में रह गये थे और दूसरी ओर भारतीय जनसंघ, हिन्दू महासभा और रामराज्य परिषद जैसे साम्प्रदायिक संगठनों की शक्ति को अतिरंजित कर मुसलमान समुदाय में असुरक्षा की भावना बढ़ाई।"[100] दूसरा आम चुनाव आते-आते मुसलमानों के विचार में परिवर्तन हुआ। इन लोगों ने ऐसी पार्टी से जुड़ना मुनासिब समझा जो प्रगतिशील हो। 1967 के आम चुनाव में कांग्रेस विरोधी में अन्य समुदायों के अलावा मुस्लिम समुदाय भी थी। 1969 तक आते-आते बड़े पैमाने पर दंगे हुए जिससे मुसलमानों के अंदर असुरक्षा की भावना प्रबल हुई -"राँची, जमशेदपुर, अहमदाबाद, जलगाँव आदि में दंगे हुए और संविदा सरकारों में शामिल भारतीय जनसंघ (और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ) पर उँगलियाँ उठीं। मुस्लिम समाज में असुरक्षा की जो भावना दब गयी थी, वह फिर उभरी।"[101]

1971 के चुनाव के ठीक पहले श्रीमती इंदिरा गाँधी ने एक नया सामुदायिक गठबंधन तैयार किया था। जिसमें मुस्लिम व अन्य अल्पसंख्यक समुदाय, दलित, आदिवासी और पिछड़े समुदाय थे। परन्तु 1977 तक आते-आते यह गठबंधन टूटा और श्रीमती इंदिरा गाँधी के प्रति मुसलमानों का मोहभंग हुआ -कारण बढ़ती मंहगाई, आपातकाल के दिनों में विशेषकर दिल्ली के सौंदर्यीकरण के समय, अत्याचारों से सामान्य जनता में रोष, जिसमें मुसलमान समुदाय भी शामिल थे। सौंदर्यीकरण के समय मुसलमानों को सबसे अधिक धक्का तब लगा जब जामा मस्जिद की बुनियादों को क्षति पहुँचाई गई।

1980 तक आते-आते स्थिति में फिर ऊहापोह मची। मुस्लिम-समुदाय अपना वोट कांग्रेस और लोकदल और जनता पार्टी में बाँटा। श्रीमती इंदिरा गाँधी के सत्ता में आने पर मुस्लिम समुदाय पर इनकी पकड़ मजबूत हुई।

1992 में बाबरी मस्जिद ढहने से भी मुस्लिम समुदाय को बहुत आहत पहुँची, इस मुद्दे पर जमकर राजनीति हुई। सुरेन्द्र मोहन के शब्दों में -"बाबरी मस्जिद ध्वस्त होने से पूरे समुदाय को भारी सदमा लगा है। उसका कांग्रेस से और भी मोहभंग हो गया है। जो जद की टूट के कारण कुछ विश्वसनीय लगने लगी थी। लेकिन उसके मन में अपने पुराने स्थापित नेताओं के प्रति भी सवाल उठने लगे हैं। इन नेताओं ने जब कभी

मुसलमानों से संघर्ष की अपीलें की हैं, तो उनके वही कुछेक मुद्दे रहे हैं जबकि उद्योगीकरण, यंत्रीकरण के चलते मुसलमानों और अन्य समुदायों के शिल्प, हथकरघा आदि से सम्बन्धित खत्म हो रहे हैं। शिक्षा में उनका पिछड़ापन बरकरार ही है।"[102]

संक्षेप में स्वतंत्रता के बाद भारतीय राजनीति में मुस्लिम समुदाय की जो स्थिति रही है, उसका विवरण इस प्रकार है -"पहला, सामान्यत: मुस्लिम जनता की धारा अन्य समुदायों के मतदान के साथ-साथ ही रही है। दूसरा, संघ परिवार को बड़ा खतरा मानकर भी जब उन्होंने यह पाया कि धर्मनिरपेक्ष विपक्ष ने प्रगतिशील भूमिका के साथ जनसंघ/भाजपा से दोस्ती की है, तो वे भी उसका समर्थन करते रहे हैं। तीसरा, जब-जब संघ परिवार की सत्ता में भागीदारी से सांप्रदायिक दंगों के भड़कने में उसकी भूमिका की आहट मिली है, तो वे चौकन्ने हुए हैं और कांग्रेस की ओर मुड़े हैं। चौथा, संघ परिवार के उदारवादी नेताओं, जैसे -अटलबिहारी वाजपेयी, से उन्हें बराबर लगाव रहा है।"[103]

मंजूर एहतेशाम की कहानी 'पुल-पुख्ता' ख़ास तौर पर बाढ़ के दौरान नेताओं द्वारा जो राजनीति की जाती है, उसको पर्दाफाश करती है। इस कहानी में मुस्लिम परिवार का मकान बड़े पुल के ठीक सामने रहता है। बाढ़ आ जाने से मकान को खतरा है, परन्तु सरकार हाथ-पे हाथ धर के बैठी रहती है, और नेता अपनी राजनीति के दाँव-पेंच खेलते रहते हैं। कहानी का एक प्रसंग है -"मास्टर प्लान ! इस पूरे इलाके को जहाँ वैसे भी ज्यादातर गरीब मुसलमान रहते हैं, खाली कराने का इससे अच्छा क्या बहाना हो सकता है ?पानी सब कुछ बहाकर ले जायेगा और कल कोई सरकारी अफ़सर हमें किसी दूसरे इलाके में प्लॉट एलाट कर देगा ! कुछ नेता इस बात पर अफ़सोस का बयान दे देंगे कि हमारा सब कुछ धर-धंधा सैलाब की नज़र हो गया। लकड़ी के कारखाने जो शहर से बाहर निकालने की कोशिशें हो रही हैं वह भी कामयाब हो जाएगी और मास्टर प्लान भी।"[104] इस कहानी में देशज शब्दों की बहुलता है। शिल्प के स्तर पर विधागत प्रयोग को देख सकते हैं। कहानीकार ने निबंध शैली का बेहतरीन उपयोग किया है।

असग़र वजाहत की कहानियाँ शैली की विविधता की दृष्टि से अद्वितीय हैं। इनकी कहानियों में व्यंग्यात्मकता का प्रभाव बेजोड़ तरीके से दिखाई पड़ता है। इनकी कहानी 'वस्ताद जमूरा बदकही' में आज के राजनीतिक हालात पर इस प्रकार व्यंग्य किया गया है। कहानी का एक प्रसंग द्रष्टव्य है -"व.अबे, तुझे सारे भारतीय सड़कों पर ही दिखाई दे रहे हैं "ज. फिर कहाँ देखूँ वस्ताद ?व. अबे फाईब स्टार होटलों में देख, फार्म हाउसों में देख, संसद में देख, मंत्रालयों में देख ...ज. जो बाहर दिखयी दे रहे हैं वे भारतीय नहीं हैं वस्ताद ?व. अबे वे मतदाता हैं ...ज. वह देश का नागरिक नहीं होता ? व. नहीं, वह मतदाता होता है ..पांच साल में .. और आजकल तो दो तीन साल में एक बार वह वोट डालता है .. उसे भारतीय कह कर देश का अपमान न कर।"[105]

मुस्लिम समाज में व्याप्त राजनीति के नाम पर भ्रष्टाचार, धोखाधड़ी आदि को पर्दाफाश करती है, कहानी 'तुम चुनाव लड़ोगे?'। इस कहानी में एक सीधे-साधे व्यक्ति को चुनाव में जबरदस्ती खड़ा करवा दिया जाता है। कुछ मुस्लिम व्यक्ति चुनाव में गलत रास्ते का उपयोग करते हैं। जिस व्यक्ति को चुनाव में खड़ा किया जाता है, उससे गलत कार्य करने के लिए मजबूर किया जाता है। कहानी का एक प्रसंग है -"छुट्टन उछल पड़ा, बोला, "हर घर में आदमियों के लिए एक-एक शराब की थैली, और औरतों के लिए चार-चार लड्डू भिजवा देते हैं।" "लेकिन, इसमें तो बहुत खर्चा आएगा और फिर बिरादरी वाले तो वोट देंगे ही, क्या उन्हें कौम की इज्जत प्यारी नहीं है ?" कहते हुए मास्टर जी के माथे पर बल पड़ गए।"[106] संवाद-शैली की दृष्टि से यह कहानी अद्वितीय है। कहानीकार ने पात्रों के बदलते चरित्र को बहुत ही सूक्ष्म ढंग से उकेरा है। भाषा देशज है।

मुस्लिम समाज में स्त्री अधिकारों को केंद्र बनाकर कई कहानियाँ लिखी गई हैं। अनवर सुहैल की कहानी 'नसीबन' की स्त्री पात्र नसीबन अपने हक़ के लिए समाज से लड़ती है। इस कहानी में नसीबन का पति बहुत ही क्रूर है, जो नसीबन को बार-बार प्रताड़ित करता है और ताना देता है कि तुम बच्चे की माँ बनने लायक नहीं हो। जबकि सच्चाई कुछ और ही रहती है। नसीबन अपने अधिकार के लिए परिवार के प्रत्येक सदस्य से गुहार लगाती है -" नसीबन लड़ती आपके बेटे से कुछ भी न हो पाएगा, वह बच्चा पैदा करने लायक तो क्या किसी औरत के ही लायक नहीं।"[107] अनवर सुहैल ने इस कहानी में शीर्षक चुनाव में नवीनता दिखाई है जो

शिल्पगत वैविध्य को दर्शाता है। इस कहानी में अंग्रेजी शब्दों की बहुलता है, उदाहरण के लिए, कहानी का एक प्रसंग द्रष्टव्य है - ''एजेंट और अनाउंसर सजग हुए। देखते ही देखते बस आ गई। नसीबन को खिड़की के पास वाली महिला-सीट का नम्बर मिला था।''[108]

'एक थी कम्मो' कहानी में एक ऐसी स्त्री का चित्रण है जो घर से बाहर निकलकर अपनी पढ़ाई पूरी करना चाहती है, परन्तु रूढ़ियों में जकड़ा उसका परिवार उसे ऐसा करने नहीं देता है। कम्मो अपनी शिक्षा को पूरी करने के लिए परिवार से लड़ती है -"कम्मो कहीं की न रही। न विवाह हुआ न 'प्रैक्टिस' ही कर पाई। पापा तो चाहते हैं किन्तु मम्मी नहीं चाहतीं कि कम्मो बाहर जाकर वकालत करे। मम्मी अपनी निगरानी से उसे आज़ाद करना नहीं चाहतीं।"[109] चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह कहानी बेजोड़ है। आज मानव जीवन में पूँजी का महत्वपूर्ण स्थान हो गया है। कोई भी स्त्री इसे पाने के लिए किसी हद तक जाने के लिए विवश हो जाती है, कहानी की केन्द्रीय विशेषता है।

आज मानवीय रिश्तों में बहुत हद तक टूटन आ गई है। कारण पूँजी की महत्ता का बढ़ना। भाई-बहन, पिता-पुत्र, पति-पत्नी आदि रिश्ते ज्यादा दिनों तक नहीं चला पा रहे हैं। ख़ास तौर पर वैवाहिक जीवन में टूटन तो आम बात हो गई है। मंजूर एहतेशाम की कहानी 'घेरा' में वैवाहिक जीवन में स्त्री संघर्ष को चित्रित किया गया है। कहानी में पति चारित्रिक पतन का शिकार है। पति का कई स्त्रियों से गैर सम्बन्ध भी रहता है। पत्नी शब्बो अपनी ज़िन्दगी में संघर्ष करती है। कहानी का एक प्रसंग है -"शब्बो को खड़े-खड़े काफ़ी समय बीत गया था। लॉन पर उभरती-डूबती दोनों आवाज़ें आनी बंद हो चुकी थीं, लेकिन लग रहा था आस-पास फैले विस्तार में अब भी आवाज़ें-ही-आवाज़ें हैं। ऐसी जिन्हें वह केवल सुन और महसूस कर सकती है, नाम नहीं दे सकती। ऐसी बेगिनती आवाज़ें।"[110] भाषा-शैली की दृष्टि से यह कहानी बेहतरीन है। कहानी का एक प्रसंग है - ''हू हैज़ गिविन यू दि लिबर्टी टु बी अन-फेथफुल टु योर ओन वाईफ़? (तुम्हें अपनी पत्नी से बेवफ़ाई की इजाज़त किसने दे दी है?) इतना ही जमाल को भड़काने के लिए काफी था। डोंट यू थिंक (तुम्हें नहीं लगना चाहिए), उसने बेपनाह गुस्से में कहा था।''[111]

'तपती रेत' कहानी मुस्लिम समाज में स्त्री पीड़ा और अधिकारों को उद्घाटित करती है। कहानी में एक स्त्री पति से अपने अधिकारों को लेकर लड़ती है। "मैंने निकाह किया है, मैं हवेली से नहीं जाऊँगी। चन्द्री जिद पर अड़ गई। उखड़ी-पुखड़ी दीवारों वाला और खपरैल की छतवाला कमरा, हवेली के पिछवाड़े था उसे रहने के लिए दे दिया। भैसों के बाड़े के पास कमरे में पड़ी रोती रही। रोते-रोते उसे साहस आ गया। मैं सामना करूँगी। अपनी बरबादी का बदला लूँगी।"[112] शिल्प की दृष्टि से पात्रों के चरित्र में हो रहे बदलाव को उद्घाटित करने में यह कहानी सफल है। निबंध-शैली का प्रभाव इस कहानी में व्याप्त है।

'नेक परवीन' कहानी स्त्री बेबसी को चित्रित करती है। स्त्री को कभी परिवार से लड़ना पड़ता है तो कभी समाज से, लेकिन कभी अपना अधिकार प्राप्त कर पाती है कभी नहीं। इस कहानी में एक अय्याश पति के कुकर्मों को उजागर किया गया है। पति, पत्नी को बार-बार बिना वजह के यातना देता है। कहानी में स्त्री अपने अधिकारों को लेकर लड़ती है -"बच्चा तुम्हारी जिम्मेदारी है, तुमने पैदा किया है अपनी ख़ुशी से। मैंने तो मना किया था। वह साफ पल्ला झाड़ गया। अच्छा खिलाता पिलाता हूँ, तुमको और क्या चाहिए ? मैं जलकर चुप रही।"[113] शिल्प की दृष्टि से भाषागत वैविध्य मौज़ूद है।

'उजबक' शीर्षक कहानी पूरी तरह एक विधवा स्त्री पर केन्द्रित है। इस कहानी में विधवा स्त्री अपने सास और देवर से हक़ की लड़ाई लड़ती है। विधवा स्त्री पूरी जायदाद से कुछ हिस्सा पाने की गुहार लगाती है, परन्तु अंत में हार जाती है। अपने हक़ को पाने के लिए कोर्ट का सहारा लेती है, परन्तु उसे असफलता ही हाथ लगती है। अंत में अपने देवर से अपनी बेबसी को इस प्रकार प्रकट करती है -"बाबू तुम्हारी भतीजियाँ जवान हो रही हैं। मेरी ज़िन्दगी तो किसी तरह कट ही गई है। मगर वो तो तुम्हारा आखिर खून हैं। इन यतीमों को तुम्हारी नजर-गुजर का कुछ मिल जाता तो तुम्हारी इज्ज़त पर ही चादर पड़ती।"[114] इस कहानी में तारतम्यता की कमी है। कहानी उद्देश्य की दृष्टि से तो सफल है परन्तु संवाद बहुत ही धीमा है।

समकालीन कहानीकार नसरीन बानो की कहानियों में स्त्री अधिकार, स्त्री-पीड़ा आदि का चित्रण देखने को मिलता है। इनकी कहानियों में दुःख, दर्द, पीड़ा और पराजय झेलती निम्नवर्ग की असहाय औरतों की

झलक अधिक दिखलाई पड़ती है। 'बाबुल का द्वार' कहानी वैवाहिक जीवन में स्त्री अधिकारों को केंद्र बनाकर लिखी गई है। "अम्मी हम जिस सुख की तलाश में गए थे वह हमें नहीं मिला, हम लौट आए। अगर हमें बाबुल का द्वार पर ठिकाना न मिला तो हम खुदकशी कर लेंगे। कुछ देर सोचने के बाद ...उस माँ ने अपना हाथ बड़ी सहजता से आगे बढ़ाकर बेटी के सिर पर रख दिया। बेटी माँ के सीने से लग गई।"[115]

शमोएल अहमद हिंदी के बहुचर्चित कहानीकार हैं। इनकी कहानियों में स्त्री-पुरुष की मनोवृत्तियों, मनोविज्ञान, अंतःसम्बन्ध, उत्तर-आधुनिक यथार्थ आदि को देखा जा सकता है। इनकी कहानी दिल से होकर गुजरती है और दिमाग को झकझोर कर रख देती है। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को इनकी कहानियाँ बहुत ही सूक्ष्म ढंग से सम्प्रेषित करती हैं। कहानी के बारे में स्वयं वे लिखते हैं -"कथाकार को किताबों से ज्यादा आदमी को पढ़ना चाहिए। हर आदमी का चेहरा एक कागज़ होता है जिस पर उसकी ज़िन्दगी की कहानी लिखी होती है। इस कागज़ के हज़ार रंग हैं। ये कभी कहकहों में डूबा होता है कभी आंसूओं में भीगा होता है। कभी रोशनी अपने पर फैलाती है कभी अँधेरा यहाँ जाल बुनता है। कभी तितलियाँ रक्स करती हैं कभी गिरगिट सरसराते हैं। कभी फूल खिलते हैं कभी काँटे उगते हैं। कथाकार को कोई एक रंग भाता है तो कहानी बनती है।"[116]

लम्बी कहानी के क्षेत्र में नए प्रयोग को 'ऊँट' (शमोएल अहमद) शीर्षक कहानी में देख सकते हैं। कहानी पढ़ने के बाद पाठक को ऐसा प्रतीत हो सकता है कि कहानीकार ने एक ही कहानी में कई छोटी-छोटी कहानियों को समाहित किया है। यह कहानी स्त्री अधिकार और पीड़ा को व्यंजित करती है। किस्सागोई के अंदाज में लिखी गई यह एक अनूठी कहानी है। इस कहानी में इमाम के नैतिक स्खलन को चित्रित किया गया है। एक भरा-पूरा परिवार है रहमत अली का। हशमत, रहमत अली का इकलौता बेटा है, जो जुआरी और शराबी है। हशमत की बीवी सकीना उसे सुधारना चाहती है परन्तु असफल होती है। पति को सुधारने के लिए इमाम के घर जाती है ताबीज लाने। मौलाना सकीना पर बुरी दृष्टि डालते हैं। मौलाना सकीना की बेबसी का फ़ायदा उठाते हुए उसे पैसा देकर हमबिस्तर भी होते हैं। सकीना इमाम के बच्चे की माँ बनने के लिए मचल उठती है, इसकी खबर इमाम को लग जाती है। इमाम सकीना पर जबरदस्ती करते हैं कि बच्चे को मिटा दो।

सकीना इमाम से संघर्ष करती है। इमाम धोखे से सकीना को मार देते हैं। कहानी का एक प्रसंग है -"सकीना ने उठकर बैठना चाहा लेकिन मौलाना ने उसकी पुश्त को कसकर दोनों घुटनों से दबाया और हाथों से गर्दन जकड़ ली ...सकीना छटपटाई ...उसके कंठ से ऊ..ऊ..की भयावह आवाज़ निकली ..मौलाना ने उसके चेहरे को तकिये में ज़ोर से धंसाया ...हरामजादी ..बच्चे को जन्म देगी ..इमामत से इस्तीफ़ा ..?ऊ..ऊ..ऊ..सकीना गिरफ़्त से निकलने के लिए जोर से हाथ-पाँव पटकने लगी लेकिन मौलाना ने पूरी कुव्वत से जकड़ रखा था। और फिर ...सकीना की आवाज़ कंठ में घुटकर रह गई ..।"[117]

आज देश भर में 'मुस्लिम पर्सनल लॉ' की चर्चा बहुत ही जोरों पर है। 'मुस्लिम पर्सनल लॉ' का सम्बन्ध मुस्लिम समाज में निकाह, तलाक, खुला और विरासत आदि से है। इसका क्षेत्र इतना व्यापक है कि इसमें इस्लाम का केवल निकाह, तलाक आदि का विधान ही नहीं बल्कि पूरी विरासती व्यवस्था भी आती है। मुस्लिम पर्सनल लॉ के इतिहास पर नज़र डालें तो, "मुग़ल शासन काल में इस्लाम का कानून देश का कानून(law of the land)था। अर्थात सिविल कानून ही नहीं बल्कि फौजदारी कानून(Criminal law) भी इस्लाम का ही चल रहा था और उसी के अनुसार अदालतों की व्यवस्था गतिमान थी, हाँ गैर मुस्लिमों को शादी-विवाह, विरासत और जायदाद आदि के विषय में उनके अपने धार्मिक और परंपरागत कानून पर चलने की पूरी स्वतंत्रता थी, अर्थात उनके लिए उनका अपना पर्सनल लॉ था और मुसलमानों के लिए उनका अपना पर्सनल लॉ।"[118]

सन् 1764 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अदालतों का गठन किया तो उसमें भी अंग्रेज जज इस्लामी कानून के अनुसार ही फैसला देते थे। बाद में चलकर अंग्रेजी कानून लागू कर दिया गया। सन् 1862 में इस्लाम के फौजदारी कानून को समाप्त करके इन्डियन पैनल कोड(Indian Penal Code)को शुरू किया गया, जो आज भी चलता है। इसी बिंदु पर एक और बात पर गौर किया जा सकता है कि कुछ मुसलमानों की बिरादरियों में परम्पराओं ने इस्लामी कानून की जगह ले ली थी, उदाहरण के तौर पर औरतों को विरासत में हिस्सा न दिया जाना। बाद में चलकर अंग्रेजों को विवश होकर उलेमाओं और आम मुसलमानों की माँग पर सन् 1973 में

'मुस्लिम पर्सनल लॉ' को लागू किया गया। मुस्लिम पर्सनल लॉ को शरियत एक्ट1937 भी कहा जाता है। 1937 शरियत एक्ट के अनुसार -"शादी ब्याह, मेहर, नान-नफ्फा, तलाक, फस्खे, निकाह, विलायत, हीबा, विरासत और औकाफ़ के सम्बन्ध में जहाँ दोनों पक्ष मुसलमान हों, फ़ैसले का कानून (Rule of Decision) मुस्लिम पर्सनल लॉ (शरियत) होगा।"[119]

सन् 1939 में निकाह के सम्बन्ध में फस्ख का कानून (Dissolution of Muslim Marriages Act 1939) भी लागू किया गया। जिसके अनुसार मुसलमान औरत अपने पति से छुटकारा प्राप्त कर सकती है। उदाहरण के लिए पति चार साल से लापता हो, अत्याचार का बर्ताव करता हो, वी.डी. रोग का शिकार हो।

मुस्लिम विचारकों का मानना है कि मुस्लिम पर्सनल लॉ के साथ राजिनीति की जाती है। देश में जिस समान सिविल कोड की माँग की जा रही है, वह सही नहीं है। मसलन इस कोड के लागू होने से मुस्लिम पर्सनल लॉ को खतरा है। देश में जिस समान सिविल कोड को लागू करने की मुहिम चल रही है, वह 'हिन्दू कोड बिल' पर आधारित होगा।

जेबा रशीद की कहानी 'तपती रेत' मुस्लिम समाज में 'पर्सनल लॉ' की स्थिति को केंद्र बनाकर लिखी गई है। इस कहानी में एक बेबस स्त्री का अंकन किया गया है। मुस्लिम समाज में कभी-कभी ऐसा भी होता है कि पति, पत्नी को बिना कारण तलाक दे देता है। कहानी की केन्द्रीय विशेषता है। कहानी का एक प्रसंग है -"अल्लाह ने मर्दों को तलाक का हक़ दिया है, पर साथ ही बिना वजह तलाक नहीं दे सकते, हिदायत भी दी है। पर पुरुष तो सोचता है मैं सब कुछ हूँ। जो करूँगा मेरी मर्जी ही चलेगी। वह रईस हुसैन के सामने जाकर खड़ी हो गई। तलाक देने का हक़ खुदा ने औरत को भी दिया है पर औरत ने कभी भी बिना कारण पति को तलाक नहीं दिया। कब तक औरतें छली जायेंगी।"[120] कहानी में देशज शब्दों की बहुलता है। शिल्प के स्तर पर विधागत प्रयोग मौज़ूद है। संवाद-शैली की दृष्टि से कहानी सफल है।

वर्तमान समय में धर्मांतरण का प्रश्न बहुत अहम मुद्दा बनकर उभरा है। धर्मांतरण से आशय एक धर्म में रहने वाले व्यक्ति का दूसरे धर्म में परिवर्तित हो जाना। धर्म परिवर्तन के अनेक कारण हैं- स्वेच्छा से होने वाला धर्म परिवर्तन, किसी लाभ के लिए, वैवाहिक कारण से या फिर बलपूर्वक किया जाने वाला धर्मांतरण।

धर्म परिवर्तन के पीछे कभी-कभी व्यक्तिगत विचार के साथ अन्य कारण भी जिम्मेदार होते हैं। कुछ लोग अपना रोष व्यक्त करने के लिए धर्म परिवर्तन कर लेते हैं,उदाहरण के लिए, "तमिलनाडु के मीनाक्षी पुरम में 1981 में हुए धर्म परिवर्तन का कारण था एक दलित युवक की उच्च जाति के थेवर समुदाय के एक व्यक्ति द्वारा किया गया अपमान और तिरस्कार। मीनाक्षी पुरम में तक़रीबन 100 दलित परिवारों ने इस अपमान का विरोध करने के लिए इस्लाम को अपना लिया था।"[121]

इस्लाम धर्म को जब कोई नया व्यक्ति स्वीकारता है तो उसे 'मुल्ताफ़' कहा जाता है। इस्लाम के पांच स्तम्भ या आधार हैं, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण है -ईश्वर या अल्लाह एक है। किसी व्यक्ति को उसी क्षण इस्लाम में धर्मान्तरित मान लिया जाता है, जब वह निष्ठा पूर्वक यह बात स्वीकार लेता है। जिसे 'शाहदा' कहते हैं। भारत में धर्म परिवर्तन के इतिहास पर गौर करें तो सबसे पहले इस्लामी आक्रमण के पूर्व काल में भारी मात्रा में हिन्दुओं को ईसाई बनाया गया था। इसके बाद क्रमशः इस्लामी सत्ताकाल में (मुहम्मद कासिम, औरंगजेब, टीपू सुलतान, सूफी फकीर, हैदराबाद के शासन काल में) पुर्तगालियों के शासन काल में, अंग्रेजों के शासन काल में, अंत में स्वतंत्रता के बाद के समयों में धर्मांतरण की प्रक्रिया को देखा जा सकता है।

'पीरू हज्जाम उर्फ़ हजरत जी', 'शेर खां', 'मार-मारकर', 'दहशतगर्द' एवं 'गोटी' आदि कहानियों में धर्म परिवर्तन को कथ्य बनाया गया है। 'पीरू हज्जाम उर्फ़ हजरत जी' शीर्षक कहानी का कथ्य यह है कि एक गरीब हिन्दू लड़की बेबसी या कहें आर्थिक तंगी के चलते धर्म परिवर्तन करने पर मजबूर हो जाती है। कहानी का एक प्रसंग है -"कुसुम तैयार हो गई। नगर में इसका विरोध हुआ। हिन्दुत्ववादी संगठनों ने जब एक हिन्दू लड़की का यह अधःपतन देखा तो वे धोतियों से बाहर हुए। कुसुम ने किसी भी तरह मज़ार शरीफ़ से बाहर

निकलना स्वीकार न किया, तब हजरत जी ने स्थिति को संभाला।"[122] यह कहानी उद्देश्य की दृष्टि से सफल है। पात्रों के बीच संवाद बहुत ही धीमा है। देशकाल, वातावरण कहानी में मौजूद है।

'शेर खां' कहानी डायरी शैली में लिखी गई है, जिस प्रकार डायरी में प्रत्येक दिन की घटित घटना लिखी जाती है ठीक उसी प्रकार। कहानीकार विजय की कहानी 'शेर खां' प्रमुख रूप से बम्बई के वेश्या जीवन पर केन्द्रित है। लेकिन धर्मांतरण की समस्या को भी कहानीकार ने सूक्ष्म ढंग से चित्रित किया है। एक व्यक्ति अपना पेट पालने के लिए एक धर्म से दूसरे धर्म में परिवर्तित हो जाता है, "निश्वास खींच खाला कहती है, 'जब आया था तो अपना नाम शेर सिंह बताया था पर अब जैसा हम बुलाते थे वैसे ही तो शेर खां बताया था नाम। सुन्नत तो हुई नहीं थी। 'तो दफ़न करा देते हैं, पंडित लोग साला चींची भी बहुत करता है। बूढ़ी खाला के चेहरे पर अजीब सी रोशनी उभर आई थी, निकम। खर्च का फ़िक्र नहीं करना, बिंदास होके जनाजा उठवाना।"[123] इस कहानी की भाषा-शैली बेजोड़ है।

हबीब कैफ़ी की कहानी 'मार-मारकर' धर्म परिवर्तन पर केन्द्रित है। इस कहानी में बार्डर पर जबरदस्ती कराए जाने वाले धर्मांतरण का चित्रण किया गया है। कहानी का एक प्रसंग है -"सुबह होने को है ...एक बात हमेशा याद रखना कि मार-मारकर मुसलमान बनाने वाले अपने ही हुआ करते हैं ...।"[124] अनवर सुहैल की कहानी 'दहशतगर्द' भी धर्मांतरण के प्रश्न को उकेरती है। इस कहानी में शिल्प के स्तर पर विधागत प्रयोग मौजूद है।

'गोटी' कहानी में एक हिन्दू व्यक्ति द्वारा मुसलमान धर्म में परिवर्तित हो जाने का चित्रण है। डॉ. श्याम किशोर जो पेशे से एक अच्छे डॉक्टर हैं। स्वेच्छा से धर्म परिवर्तन कर लेते हैं कारण उनकी दोस्ती मुस्लिम व्यक्तियों से ज्यादा रहती है। कहानी का एक प्रसंग है -"मेरा इरादा है कि मैं इस्लाम धर्म स्वीकार कर लूँगा। "अयं !" जनाब आशिक हुसैन 'आशिक' तो मानो पेड़ पर से गिर पड़े। इस जमाने में, यानी बीसवीं सदी के अंतिम दौर में अगर एक पढ़ा-लिखा हिन्दू उनके दीन में आ जाता है तो यह कितनी बड़ी बात है ! खुदा वाकई

बड़ा कारसाज है। वाह रे परवर दिगार, तू जिसका दिल न बदल दे।"[125] इस कहानी में देशज शब्दों की बहुलता है। पात्रों के चरित्र को उद्घाटित करने में कहानीकार ने सफलता प्राप्त की है।

इस दशक में कुछ ऐसी कहानियाँ गढ़ी गई हैं जिनमें वैवाहिक जीवन और दाम्पत्य समस्याओं का चित्रण किया गया है। अनवर सुहैल की 'नसीबन' कहानी में दाम्पत्य सम्बन्धों की सच्चाइयों को उकेरा गया है। इस कहानी में एक ऐसी स्त्री का चित्रण है, जिसका निकाह एक पागल पुरुष से कर दिया जाता है, जिसके कारण नसीबन अपनी ज़िन्दगी घुट-घुटकर जीती है। कहानी का एक प्रसंग है -"नसीबन की अम्मा ने समझाया कि उस मरदूद पर न रो बेटी, उसके जिस्म पर तो कीड़े पड़ेंगे। एड़ियाँ रगड़-रगड़कर मरेगा जुम्मन, समझी ! उसने मेरी फूल-सी बेटी को बहुत तकलीफ दी है। ख़ुदा उसे भी कभी माफ़ नहीं करेगा।"[126] इस कहानी में पात्रों के बीच संवाद बहुत ही धीमा है। उद्देश्य की दृष्टि से यह कहानी सफल है।

शमोएल अहमद की कहानी 'मिश्री की डली' दम्पति सम्बन्धों में टूटन की समस्या को अंकित करती है। इस कहानी में उस्मान और उसकी पत्नी राशदा के बीच शादी के प्राम्भिक दिनों में अच्छे सम्बन्ध रहते हैं, लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता है, राशदा किसी गैर लड़के से सम्बन्ध रखने लगती है। उस्मान को इस बात का पता लगते ही दोनों में झगड़ा प्रारम्भ हो जाता है और उनके सम्बन्धों में टूटन पैदा होने लगती है। कहानी का एक प्रसंग है -"उस्मान ने पहले सवालिया निगाहों से राशदा की तरफ़ देखा फिर खिड़की से बाहर झाँका। युवक सीखचें पकड़े खड़ा था। उस्मान से नजर मिलते ही उसने हाथ उठाकर सलाम किया। उस्मान को गुस्सा आ गया। उसने जोर से खिड़की के पट बंद किए और राशदा पर बरस पड़ा।"[127] इस कहानी में अंग्रेजी शब्दों की बहुलता है। शिल्प की दृष्टि से पात्रों के नामकरण में प्रयोग को इस कहानी में देख सकते हैं।

आज मानव जीवन में पूँजी का महत्व ज्यादा हो गया है। बाज़ार में मनुष्य को चकाचौंध करने वाली ऐसी वस्तुएँ आ गई हैं जिनसे वह प्रभावित है। मनुष्य की जीवन शैली में बहुत बदलाव आया है, जिसके कारण मानवीय सम्बन्धों के टूटन को देखा जा सकता है। वैवाहिक जीवन मनुष्य के जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। आज दाम्पत्य जीवन में बहुत टूटन आ गई है। मजबूत से मजबूत रिश्ते तुरंत टूट जा रहे हैं। दाम्पत्य

सम्बन्धों में टूटन के कई कारण हैं- पूँजी, जीवन शैली में बदलाव, उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रभाव, एक दूसरे पर शक आर्थात तीसरे की मौजूदगी, चारित्रिक गिरावट, नशा, अवैध सम्बन्ध एवं ईर्ष्या आदि।

हृषीकेश सुलभ की कहानी 'ख़ुला' प्रमुख रूप से पति-पत्नी के बीच तलाक के मुद्दे और तनाव को सम्प्रेषित करती है। इस कहानी में लुबना का निकाह हन्नू से कर दिया जाता है। हन्नू निकाह के तुरंत बाद परदेश चला जाता है और चार साल बाद आता है। इस लम्बी अवधि में लुबना पूरी तरह टूट जाती है और खुला माँगती है। कहानी का एक प्रसंग है -"खुला, हाँ, मैं खुला चाहती हूँ। यह इस्लाम में जायज है और खुला चाहने की माकूल वजह है मेरे पास ...मेरा निकाह हुआ, तो मैं बालिग़ नहीं थी। मेरा सोलहवां चल रहा था। और निकाह के बाद जिसका शौहर चार सालों के लिए छोड़ दे, उस औरत को खुला माँगने का हक़ है।"[128] कहानी में देशज शब्दों का प्रयोग ज्यादा किया गया है। सम्वाद-शैली की दृष्टि से यह कहानी सफल है।

'घेरा' कहानी में मंजूर एहतेशाम ने वैवाहिक जीवन में स्त्री के चारित्रिक पतन का चित्रण किया है। इस कहानी में शबनम का अपने पति के सिवाय अन्य और मर्दों से भी अवैध सम्बन्ध रहते हैं -"यह सिर्फ़ इत्तेफाक भी हो सकता है कि अभी तक उसकी आग को सबसे बेहतर जमाल ने बाँटा है। कल उससे अच्छा भी कोई हो सकता है।"[129] लम्बी कहानी के क्षेत्र में नए प्रयोग को यह कहानी सम्प्रेषित करती है।

'मीनार के परिदृश्य में' कहानी में अलीफ़ा रिफात ने मुस्लिम समाज में वैवाहिक जीवन की जटिलताओं को उकेरा है। 'तपती रेत', 'नेक परवीन', 'इंसानी नस्ल' आदि कहानियाँ इसी तरह की हैं।

समकालीन कहानीकारों में नासिरा शर्मा का नाम अग्रणी है। इनकी कहानियाँ ख़ास तौर से स्त्री के सम्पूर्ण जीवन की सच्चाइयों को सम्प्रेषित करती हैं। इनकी कुछ कहानियों में वैवाहिक जीवन की समस्याओं का अंकन मिलता है। कहानी-संग्रह 'इंसानी नस्ल'(2001) की कुछ कहानियाँ दाम्पत्य सम्बन्धों पर केन्द्रित हैं। इस संग्रह में संकलित 'कनीज बच्चा' शीर्षक कहानी प्रमुख रूप से मुस्लिम समाज में व्याप्त बहुविवाह की समस्या को उकेरती है। वीरेंद्र मोहन के शब्दों में -"जिस समाज में एक से अधिक विवाह करना या पत्नियाँ रखना अनैतिक नहीं माना जाता है, जिसे सामाजिक मान्यता प्राप्त है, वहाँ स्त्री का जीवन और उन पत्नियों की

संतानों का स्वभाव कैसा होगा। 'कनीज बच्चा' कहानी के माध्यम से नासिरा शर्मा ने उसे बेहतरीन ढंग से प्रस्तुत किया है।"[130] नासिरा शर्मा की कहानियाँ समाज में व्याप्त धर्म, जाति, सम्प्रदाय आदि की जो दीवार बन चुकी है उसको तोड़ती हैं। इनकी कहानियों में प्रेम का एक निर्मल संसार भी देखने को मिलता है, चाहे वह दाम्पत्य जीवन का प्रेम क्यों न हो ? जहाँ अलग-अलग धर्म के पति-पत्नी अपने सम्बन्धों को अच्छी तरह निभाते हुए दीखते हैं। 'इंसानी नस्ल' कहानी इन सब बातों को उजागर करती है।

नासिरा शर्मा की कहानियों में एक बात और देखने को मिलती है कि इनकी कहानियों के पात्रों में जिजीविषा की झलक दिखाई पड़ती है। इनकी कहानियों में स्त्री जीवन कि सम्पूर्ण क्षेत्रों का अंकन दिखाई पड़ता है। प्रो. वीरेंद्र मोहन के शब्दों में -"नासिरा शर्मा की कहानियाँ देशकाल के एक व्यापक दायरे में यात्रा करती हैं और ये कहानियाँ वह सब भी कहती हैं जो उनमें मौजूद नहीं हैं। मानवीय संवेदन और बुद्धि का तर्कजाल एक द्वंद्व के रूप में निरंतर टकराता हुआ इन कहानियों की अंतर्धारा को एक पहचान भी देता है। फिर भी नासिरा शर्मा की कहानियाँ साम्प्रदायिकता और फिरकापरस्ती के स्थान पर मानवीयता के तंतुओं की खोज करती हैं।"[131]

इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में कुछ ऐसी कहानियाँ लिखी गई हैं जिनका कथ्य प्रमुख रूप से शिक्षा की समस्या पर आधारित है। मुस्लिम समुदाय में आज भी अशिक्षा व्याप्त है। कारण समाज में शिक्षा के प्रति जागरूकता का न होना। भारतीय मुसलमान शिक्षा के क्षेत्र में अन्य समूहों की अपेक्षा बहुत कम शिक्षित हैं। एक बात और देखने को मिलती है कि मुस्लिम बच्चे इसलिए भी शिक्षा नहीं प्राप्त कर पाते क्योंकि आर्थिक समस्या बहुत अधिक है। 2001 की जनगणना के अनुसार मुस्लिम परिवेश में शिक्षा की स्थिति इस प्रकार है -"साक्षरता 7 वर्ष एवं अधिक समूह -मुस्लिम पुरुष-59.5%, मुस्लिम महिला -38.0%, कुल-49.5%। हिन्दू पुरुष-65.9%, हिन्दू महिला -39.2%। इसाई पुरुष-85.0% इसाई महिला -40.1%।"[132]

'तरक्की' शीर्षक कहानी मुस्लिम समाज में शिक्षा की महत्ता को उजागर करती है। युवा कहानीकार मेराज अहमद ने इस कहानी के माध्यम से शिक्षा के प्रभाव का चित्रण किया है। कहानी पिता और दो बेटों के

संवाद के माध्यम से निरंतर चलती रहती है। पिता का लक्ष्य होता है, अपने दोनों बेटों को पढ़ाकर बड़ा आदमी बनाना। कहानी का एक प्रसंग है -"दोनों बड़े बेटों की पढ़ाई का सफर लगभग एक साथ ही खत्म हुआ। नौकरी तो दोनों में से किसी एक ने भी नहीं शुरू की, फिर भी दोनों की पढ़ाई-लिखाई के पूरे हो जाने की ख़बर ने एकाएक जैसे उनकी दुनिया ही बदल दी। आस-पास के शहरों से लेकर गाँव जवार के बड़े-बड़े घरों से बेटे के लिए आने वाले रिश्तों ने तो गाँव में उनके लिए लोगों के रवैये को ही बदल दिया।"[133] इस कहानी में पात्रों के चरित्र-चित्रण पर बात करें तो हफीजुल्ला साहब जो जीवन में संघर्ष को अति-उत्तम कार्य मानते हैं, जो मनुष्य जीवन में प्रगति करे वही मनुष्य उनकी नज़र में सही है। असगर जो हफीजुल्ला साहब का बड़ा बेटा है, उसके विचार में संवेदना कूट-कूटकर भरी हुई है, उसमें जीवन में कुछ करने की जिद है, जिसको वह पूरा भी करता है। अजहर जो हफीजुल्ला साहब का छोटा बेटा है, जो धर्म में पूरी तरह विश्वास करता है, उसके लिए धार्मिक कर्मकाण्ड ही सब कुछ है। इस कहानी में इन तीनों पात्रों के माध्यम से कहानीकार ने परिवार में शिक्षा की कमी को उजागर किया है।

कथादेश में छपी कहानी 'मॉमु'(2008) ख़ास तौर से मुस्लिम समाज में शिक्षा की कमी को उकेरती है। यह कहानी एक ही पात्र के इर्द-गिर्द घूमती रहती है। हसन जमाल ने इस कहानी में एडवोकेट करीमखान के माध्यम से मुस्लिम समाज में व्याप्त अशिक्षा की स्थिति को अंकित किया है -"करीम खान पर गशी तारी होने लगी। होश खोने से पहले उनके ज़ेहन में जो ख़याल चल रहा था, वो ये था कि इस अँधेरे में से रोशनी की किरण कब फूटेगी ...लेकिन ये ख़याल भी अँधेरे में कहीं डूब गया।"[134] इस कहानी में शैलीगत प्रयोग देखने को मिलता है।

'तहारत' शकील की चर्चित कहानी है। इस कहानी का कथ्य यह है कि एक परिवार में पिता किसी तरह पैसे इकट्ठा करके अपने बच्चों को तालीम दिला पाता है और अपने बच्चों को कुछ बनाना चाहता है। कहानी का एक प्रसंग है -"मैं तुम सबों को पाल-पोस सका बेटियों की शादी कर सका और मदरिसों की तालीम

ही सही तुम्हे दिलाने को बाहर भेजने की हिम्मत जुटा सका ...।"[135] इस कहानी में संवाद-शैली बहुत ही बेजोड़ है और देशज शब्दों की बहुलता है।

मुस्लिम समाज में बेरोजगारी की समस्या बहुत है। जिसके मूल में रूढ़िवादिता, अशिक्षा, उद्योग में कम भागीदारी आदि को देखा जा सकता है। रूढ़िवादिता के चलते युवा वर्ग आधुनिक तौर तरीकों से नहीं जुड़ पाते। आम तौर पर यह देखा जाता है कि पिता जिस कार्य में संलग्न होता है, वही कार्य पुत्र भी करता है।

अशिक्षा की वजह से भी मुस्लिम समाज में बेरोजगारी की समस्या को देखा जा सकता है। मुस्लिम बच्चे जब कुछ बड़े होने लगते हैं तो उन्हें शिक्षा देने के बजाय, किसी छोटे-मोटे कार्य पर लगा दिया जाता है।

मुस्लिम समुदाय में व्याप्त बेरोजगारी की समस्या पर केन्द्रित बहुत सारी कहानियाँ लिखी गई हैं - अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानी 'लंठ' गाँव में एक अविकसित मस्तिष्क वाले मनुष्य के जीवन पर आधारित है। जो एक बेरोजगार की तरह अपने गाँव में घर-घर घूमता रहता है। गाँव के दूसरे समुदाय के लोग उससे कार्य करवाते हैं। अंत में पात्र आरिफ की मृत्यु हो जाती है। एक आम मनुष्य बेरोजगारी की वजह से किस प्रकार प्राण त्याग देता है, कहानी की केन्द्रीय विशेषता है। कहानी का एक प्रसंग है -"गाँव में बहुत दिनों तक उसकी मौत को लेकर तरह-तरह की अटकलें लगाई गईं। फिर थक-हारकर लोगों ने मान लिया, कि कुछ नहीं बेचारा अपनी लंठई में मारा गया।"[136]

अनवर सुहैल की कहानी 'दहशतगर्द' में मुस्लिम समाज में व्याप्त बेरोजगारी का चित्रण किया गया है। इस कहानी में एक गरीब मुस्लिम लड़के को आतंकवादी घोषित कर दिया जाता है। मुसुआ जो अच्छा लड़का है, परन्तु गरीबी का मारा। मुसुआ अपनी किस्मत पर इस तरह का व्यवहार करता है -"कभी-कभी मुसुआ का मूड ठीक दीखता तो भोला, ईसा मियाँ के चेहरे की नक़ल करते हुए भिखारियों के से अंदाज में हाथ फैलाकर एक गीत गाया करता -"औलाद वालों फूलो-फलो, भूखे गरीब की ये ही दुआ है ..।"[137]

चर्चित कहानीकार मो.आरिफ की कहानी 'मौसम' बेरोजगारी की समस्या को उद्घाटित करती है। कहानी का कथ्य यह है कि एक मुस्लिम परिवार में पिता के अलावा तीन पुत्र हैं। पिता अपने बच्चों को किसी प्रकार से शिक्षा दिलवाता है। लेकिन एक दिन ऐसा समय आता है कि पिता और उसके पुत्र एक ही नौकरी के लिए, एक ही कतार में खड़े नज़र आते हैं। कहानी का एक प्रसंग है -"अब्बू मुझसे तीन-चार कदम आगे ही उसी कतार में लगे थे। ईद वाला सफारी सूट पहने, हाथ में अपनी रिकार्ड फ़ाईल लिए एक-एक कदम काउंटर की ओर ख़िसक रहे थे।"[138]

हबीब कैफ़ी की कहानी 'जय श्री बाबर' भी मुस्लिम समाज में व्याप्त बेरोजगारी को उकेरती है। कहानी में एक माँ अपने बेटे की बेरोजगारी पर कुछ इस तरह कहती है -"सुन तो बेटे ! रोशन, मैं माँ हूँ तेरी। तेरी सारी तकलीफों को समझती हूँ। मेरा कहा मान तू। पिछली तमाम बातों को भुला दे और नयी तरह से ज़िन्दगी की शुरुआत कर डाल। घर में ही काम है, पुश्तैनी धंधा है।"[139]

'मैनेजर जावेद हसन' कहानी में एक बेरोजगार व्यक्ति की उलझनों को चित्रित किया गया है। हसन अली अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद एक छोटे से ऑफिस में काम करते हैं। ऑफिस में उनके बॉस बहुत अभद्र रूप से उनसे पेश आता है। बॉस की अभद्रता को हसन अली अपने साथियों से इस तरह व्यक्त करते हैं -"अरे यार सेल्फ़ रेस्पेक्ट भी कोई चीज होती है या नहीं ?" भन्नाए हुए जावेद हसन ने जवाब दिया।"[140]

कहानी में मुहावरे का प्रयोग कहानीकार कहानी को विशिष्ट बनाने के लिए करता है। हिन्दी साहित्य में कुछ ऐसी कहानियाँ लिखी गई हैं, जिनमें मुहावरे का प्रयोग नहीं के बराबर है, वहीं दूसरी तरफ़ कुछ ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें मुहावरे का जमकर प्रयोग किया गया है। इक्कीसवीं सदी के पहले दशक की कहानियों में कुछ कहानीकारों ने मुहावरे का प्रयोग कर कहानी को विशिष्ट बनाया है। इन कहानीकारों में अब्दुल बिस्मिल्लाह, असगर वजाहत, नासिरा शर्मा, शमोएल अहमद, मेराज अहमद, अनवर सुहैल, नसरीन बानो आदि प्रमुख हैं। इस सदी की कहानियों में मुहावरों के प्रयोग के रूप में निम्नलिखित मुहावरों को देखा जा सकता है -ऑखें लाल-पीली करना, आग बबूला होना, आँखें दिखाना, ईद का चाँद होना, उड़ती चिड़िया के

पंख गिनना, ऊँट के मुँह में जीरा होना, काला अक्षर भैंस के बराबर, गड़े-मुर्दे उखाड़ना, घाट-घाट का पानी पीना, दाल में काला होना एवं लोहे के चने चबाना आदि।

इक्कीसवीं सदी की कुछ कहानियों में लोकोक्ति और धार्मिक प्रतीकों का प्रयोग भी देखने को मिलता है। लोकोक्ति के माध्यम से कहानीकार किसी लौकिक घटना के द्वारा किसी तथ्य को स्पष्ट करता है। उदाहरण केलिए -चार दिन सुखद चाँदनी रात और फिर अंधकार अज्ञात, अंधों में काना राजा, अंधेर नगरी चौपट राजा, अपना हाथ जगन्नाथ, धोबी का कुत्ता घर का ना घाट का, सौ सुनार की एक लुहार की आदि को देखा जा सकता है।

हिन्दी में सम्पूर्ण शब्द-भण्डार तीन हैं- देशी, विदेशी और मिश्रित। इक्कीसवीं सदी के पहले दशक के कहानीकारों ने तीनों प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है, उदाहरण के तौर पर नासिरा शर्मा ने अपनी कहानी 'इब्ने मरियम' में इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है -खानाबदोश, फड़फड़ाहट, लकीर, सिजदे, पैगाम, उफनता, खालीपन, बेपरवाह, लाठी, नाख़ून आदि । अनवर सुहैल की कहानी 'चहल्लुम' के शब्द -मुद्दत, कंट्रास्ट, जली, अड्डा, सेप्टिक-टैंक, हुज्जत, कव्वाल, प्रलोभन, अधकचरे आदि हैं। गीतांजली श्री की कुछ कहानियों के शब्द- दूधवाला, झुटपुटा, थिरकन, स्क्रीन, अदने, लहराता आदि है। अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानियों में ज्यादातर ग्रामीण शब्दावली देखने को मिलता है, उदाहरण के लिए -दुपहरी, पैजामा, कुण्डी, फटफट, बिरछ, लौकी आदि। मंजूर एहतेशाम की कहानियों में ख़ास तौर से अंग्रेजी शब्दों का बाहुल्य है, जैसे - 'घेरा' शीर्षक कहानी के शब्द इस प्रकार हैं -दैट, यू, फेथफुल, टू, वाईफ, इट्स, टाईम आदि। शमोएल अहमद की कहानियों में भी अंग्रेजी शब्दों का बाहुल्य है, उदाहरण के लिए -थर्टी, हाई, आलवेज, लोकेशन, चेस्ट, साईड, लाईक, टेकिंग, डाईवोर्सी, होल्ड, नेट, बिटविन आदि ('अनकबूत' कहानी)।

निष्कर्ष:

उपर्युक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी के पहले दशक की कहानियों में शिल्पगत वैविध्य बहुत है। कहानीकारों ने परम्परा से चली आ रही फार्मूलाबद्ध शिल्प को नकारा है और एक

नई शिल्प के आधार पर कहानियाँ गढ़ी हैं। इस दशक की कहानियों में कहानीकारों ने शिल्प पर ध्यान आकृष्ट न कर समाज में जो देखा, अनुभव किया उसी को कथ्य बनाकर कहानी गढ़ दी। इस दशक की कहानियों में कोई अचंभित करने वाली घटना का चित्रण नहीं मिलता, मिलता है तो समाज का यथार्थ अंकन।

इस दशक की किसी भी मुस्लिम जीवन पर आधारित कहानी को उठाकर देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि कहानीकारों ने कहानी में घटना, चरित्र, प्रयोग, प्रतीक, बिम्ब आदि पर अधिक बल दिया है, बल्कि ऐसा लगता है कहानीकार ने समाज के यथार्थ को ज्यों का त्यों रखने का प्रयास किया है। कहानियों को पढ़कर ऐसा लगता है कि कहानी में किसी शिल्प का प्रयोग न करके मिश्रित शैली का प्रयोग निहित है। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि इस दशक की कहानियों में शिल्पगत वैविध्य तो है, परंतु परम्परा से चले आ रहे शिल्प से अलग। इस दशक में आत्मकथात्मक शैली से भी कहानियाँ गढ़ी गई हैं जो कहानी को एक नया आयाम देती हैं।

सन्दर्भ

1. https://hi.wikipedia.org/wiki/शिल्प_(साहित्य)

2. शिव के. कुमार एवं कीथ मैक्कीन(सं.)-क्रिटिकल एप्रोचिज टू फिक्शन, पृ. 267-268

3. दुर्गा प्रसाद मिश्र-कहानी कला की आधारशिलाएँ, पृ. 39

4. योगेन्द्र प्रताप सिंह(सं.)-श्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ, पृ. 11

5. वही, पृ. 12

6. मधुरेश-हिन्दी गद्य का विकास, पृ. 18

7. लक्ष्मीनारायण लाल-आधुनिक हिन्दी कहानी (जैनेन्द्र से नयी कहानी तक), पृ. 24

8. वही, पृ. 103

9. मधुरेश-हिन्दी कहानी का विकास, पृ. 123

10. वही, पृ. 185

11. हरदयाल-हिन्दी कहानी परम्परा और प्रगति, पृ. 176

12. हरदयाल-हिन्दी कहानी परम्परा और प्रगति, पृ. 178

13. हरदयाल-हिन्दी कहानी परम्परा और प्रगति, पृ. 178

14. हरदयाल-हिन्दी कहानी परम्परा और प्रगति, पृ. 178

15. सं. महीप सिंह-श्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ1975, पृ. 9

16. हरदयाल-हिन्दी कहानी परम्परा और प्रगति, पृ. 184

17. आदर्श सक्सेना-हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और शिल्पविधि, पृ. 51-52

18. लक्ष्मीनारायण लाल-आधुनिक हिन्दी कहानी (जैनेन्द्र से नयी कहानी तक), पृ. 43

19. वही, पृ. 45

20. सं. राजेन्द्र यादव-हंस, अंक - 11, जून 2002, पृ. 58

21. सं. हरिनारायण-कथादेश, अंक - 9, सितम्बर 2008, पृ. 18

22. सं. हरिनारायण-कथादेश, अंक - 1, मार्च 2000, पृ. 34

23. अनवर सुहैल-ग्यारह सितम्बर के बाद, पृ. 7

24. अनवर सुहैल-चहल्लुम, पृ. 112

25. मंजूर एहतेशाम-तमाशा तथा अन्य कहानियाँ, पृ. 128

26. सं. राजेन्द्र यादव-हंस, अंक - 11, जून 2007, पृ. 47

27. नसरीन बानो-धरती माँ का ज़ख्म, पृ. 67

28. मेराज अहमद-अजान की आवाज, पृ. 21

29. सं. राजेन्द्र यादव-हंस, अंक - 3, अक्टूबर 2001, पृ. 55

30. अनवर सुहैल-चहल्लुम, पृ. 19

31. सं. शैलेन्द्र सागर-कथाक्रम, अंक - 11, वर्ष - 3, जनवरी-मार्च 2002, पृ. 20

32. राकेश बिहारी-कहानी में कविता कुछ जरूरी सवाल, www.hindisamay.com

33. अब्दुल बिस्मिल्लाह-रफ़-रफ़ मेल, पृ.15

34. वही, पृ.33

35. वही, पृ. 46

36. वही, पृ. 110

37. राकेश बिहारी-कहानी में कविता कुछ जरूरी सवाल, www.hindisamay.com

38. शमोएल अहमद-इक्कीस श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 96

39. नीरज खरे-समकालीन युवा कहानी: स्मृतियों के भाष्य और यथार्थ का सवाल,

www.rachanakar.org पृ. 6

40. नीरज खरे-समकालीन युवा कहानी: स्मृतियों के भाष्य और यथार्थ का सवाल,

www.rachanakar.org पृ. 6

41. राजेन्द्र यादव-कहानी : स्वरूप और संवेदना, पृ. 85

42. वही, पृ. 190

43. वही, पृ. 190

44. वही, पृ. 191

45. सं. राजेंद्र यादव-हंस, अंक-12, जुलाई, 2001, पृ. 17

46. वही, पृ. -18

47. सं. रवीन्द्र कालिया-वागर्थ, जून, 2006, पृ. 27

48. सं. हरिनारायण-कथादेश, अंक -8, अक्टूबर, 2007, पृ. 57

49. मंजूर एहतेशाम-तमाशा तथा अन्य कहानियाँ, पृ. 48

50. वही, पृ. 49

51. विपिन चन्द्र-आज़ादी के बाद का भारत, पृ. 61

52. विपिन चन्द्र-आज़ादी के बाद का भारत, पृ. 617

53. सं. रवीन्द्र कालिया-वागर्थ, मई, 2006, पृ. 15

54. वही, पृ. 16

55. वही, पृ. 16

56. वही, पृ. 20

57. विपिन चन्द्र-आज़ादी के बाद का भारत, पृ. 619

58. वही, पृ. 619

59. अनवर सुहैल-ग्यारह सितम्बर के बाद, पृ. 72

60. वही, पृ. 195

61. सं. हरिनारायण-कथादेश, अगस्त, 2006, अंक-6, पृ. 61

62. वही, पृ. 61

63. सं. राजेन्द्र यादव-हंस, अंक-5, दिसम्बर, 2009, पृ. 36

64. अनवर सुहैल-चहल्लुम, पृ. 123

65. वही, पृ. 119

66. सं. विजय कुमार देव-अक्षरा54, जुलाई-अगस्त, 2001, पृ. 50

67. सं. अखिलेश-तद्भव, अंक-24, पृ. 27

68. गीतांजलि श्री-प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ. 28

69. सं. अखिलेश-तद्भव, अंक-24, पृ. 28

70. वही, पृ. 28

71. सं. राजेन्द्र यादव-हंस, अंक-11, जून,2007, पृ. 44

72. वही, पृ. 46

73. वही, पृ. 47

74. सं. राजेंद्र यादव-हंस, अंक-10, मई,2010, पृ. 43

75. गीतांजलि श्री-प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ. 75

76. सं. अखिलेश-तद्भव, अंक-24, पृ. 29

77. शमोएल अहमद-इक्कीस श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 76

78. अमरनाथ-हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृ. 259

79. वही, पृ. 260

80. वही, पृ. 260

81. सं. हरिनारायण-कथादेश, अंक - 4, जून 2004, पृ. 52

82. सं. ओमप्रकाश शर्मा-वर्तमान साहित्य, अंक-2, फरवरी,2002, पृ. 41

83. शमोएल अहमद-इक्कीस श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 111

84. वही, पृ. 118

85. नरेन्द्र मोहन-धर्म और साम्प्रदायिकता, पृ. 15

86. वही, पृ. 16

87. वही, पृ. 17

88. वही, पृ. 21

89. वही, पृ. 25

90. सं. राजेंद्र यादव-हंस, अंक-11, जून,2009, पृ. 37

91. सं. प्रभाकर श्रोत्रिय-वागर्थ, अंक-63, अगस्त,2000, पृ. 76

92. सं. विजय कुमार देव-अक्षरा-54, पृ. 50

93. सं. राजेंद्र यादव-हंस, अंक-11, जून,2002, पृ. 60

94. सं. हरिनारायण-कथादेश, अंक-9, सितम्बर,2008, पृ. 19

95. वाल्टर फर्नांडिस-विस्थापन, अभाव और विकास प्रक्रिया, hindi.indiawaterportal.org , 31 मार्च, 2016,

96. वही,

97. वही,

98. सं. राजेंद्र यादव-हंस, अंक-3, अक्टूबर,2001, पृ. 53

99. सं. हरिनारायण-कथादेश, अंक- 1, मार्च,2000, पृ. 34

100. सं. राजकिशोर-भारतीय मुसलमान मिथक और यथार्थ, पृ. 131

101. वही, पृ. 131

102. वही, पृ. 137

103. वही, पृ. 137

104. मंजूर एहतेशाम-तमाशा तथा अन्य कहानियाँ, पृ. 56

105. सं. शैलेन्द्र सागर-कथाक्रम, अंक-11, जनवरी-मार्च, 2002, पृ. 21

106. सं. राजेंद्र यादव-हंस, अंक-11, जून, 2008, पृ. 66

107. अनवर सुहैल-ग्यारह सितम्बर के बाद, पृ. 50

108. अनवर सुहैल-ग्यारह सितम्बर के बाद, पृ. 49

109. अनवर सुहैल-ग्यारह सितम्बर के बाद, पृ. 81

110. मंजूर एहतेशाम-तमाशा तथा अन्य कहानियाँ, पृ. 31

111. मंजूर एहतेशाम-तमाशा तथा अन्य कहानियाँ, पृ. 21

112. सं. हरिनारायण-कथादेश, अंक-5, जुलाई, 2004, पृ. 79

113. सं. रवीन्द्र कालिया-वागर्थ, मई,2004, पृ. 19

114. वही, पृ. 77

115. नसरीन बानो -छाँव की धूप, पृ. 63

116. सं. ए. हुसैन-सम्बोधन, अंक-4 जुलाई, अक्टूबर, 2014, पृ. 10

117. शमोएल अहमद-इक्कीस श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 53

118. शम्स पीरजादा-मुस्लिम पर्सनल लॉ और समान सिविल कोड, पृ. 7

119. वही, पृ. 8

120. सं. हरिनारायण-कथादेश, अंक- 5, जुलाई, 2004, पृ. 80

121. असगर अली इंजीनियर-धर्म और साम्प्रदायिकता, पृ. 226

122. सं. राजेंद्र यादव-हंस, अंक-10, मई, 2003,पृ. 72

123. सं. हरिनारायण-कथादेश, अंक- 9, नवम्बर, 2006, पृ. 58

124. सं. राजेंद्र यादव-हंस, अंक- 10, मई, 2007, पृ. 36

125. अब्दुल बिस्मिल्लाह-रफ़-रफ़ मेल, पृ. 45

126. अनवर सुहैल-ग्यारह सितम्बर के बाद, पृ. 45

127. शमोएल अहमद-इक्कीस श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 100

128. सं. राजेंद्र यादव-हंस, जनवरी2001, पृ. 27

129. मंजूर एहतेशाम-तमाशा तथा अन्य कहानियाँ, पृ. 29

130. सं. एम. फीरोज अहमद-नासिरा शर्मा: एक मूल्यांकन, पृ. 249

131. वही, पृ. 251

132. राजेंद्र यादव -हंस, पूर्णांक-203, वर्ष-18, अंक-1, अगस्त, 2003, पृ. 43

133. मेराज अहमद-अजान की आवाज तथा अन्य कहानियाँ, पृ. 25

134. सं. हरिनारायण-कथादेश, अंक-9, सितम्बर, 2008, पृ. 22

135. सं. प्रभाकर श्रोत्रिय-वागर्थ, अंक-63, अगस्त, 2000, पृ. 78

136. अब्दुल बिस्मिल्लाह-रफ़-रफ़ मेल, पृ. 123

137. अनवर सुहैल-चहल्लुम, पृ. 126

138. मो. आरिफ-फूलों का बाड़ा, पृ. 48

139. सं. राजेंद्र यादव-हंस, अंक-11, जून,2009, पृ. 36

140. सं. राजेंद्र यादव-हंस, अंक-6, जनवरी,2007, पृ. 249

चतुर्थ अध्याय

मुस्लिम कहानीकारों की स्त्री-दृष्टि

4.1 मुस्लिम कहानीकारों की स्त्री दृष्टि - कुछ विशिष्ट कहानियों के सन्दर्भ में

मुस्लिम जीवन के स्त्री पक्ष को केंद्र में रखकर हिंदी में बहुत सी कहानियाँ लिखी गयी हैं। इन कहानियों पर बात करने से पहले यह देख लेना शोध की दृष्टि से समीचीन होगा कि मुस्लिम समाज में स्त्रियों की स्थिति क्या है? इस्लाम में उसे कौन-कौन से अधिकार दिए गए हैं ? धर्म और राजनीति से इन स्त्री पात्रों की टकराहटों के मुद्दे क्या हैं और समाज में उनकी स्थिति क्या है ?

मुस्लिम समाज में स्त्रियो की स्थिति पर पर्याप्त शोध हुए हैं। आभिजात्य वर्ग की स्त्रियों की बात छोड़ दें तो निम्नवर्गीय स्त्री और मध्यवर्गीय स्त्री के जीवन में इक्कीसवीं सदी बहुत सारे बदलावों के साथ उपस्थित हुई है। सरकारी प्रयास और गैर सरकारी संगठनों ने मध्यवर्गीय स्त्री के जीवन में रोजगार के नए अवसर पैदा किये हैं। लेकिन निम्नवर्गीय स्त्रियाँ अब भी हाशिये का जीवन ही जीती हैं। सफाई, अशिक्षा, निर्धनता और धर्म के प्रति रुढ़िवादी सोच- ये वे कारण हैं जिनसे उनका जीवन स्तर दयनीय ही बना हुआ है। आम तौर पर यह देखा जाता इस वर्ग में स्त्रियों को सिर्फ पति की इच्छापूर्ति का साधन माना जाता है, वह भी बुर्के में कैद। यह भी माना जाता है कि मुस्लिम स्त्रियों को इस्लाम में कोई अधिकार नहीं दिया गया है। लेकिन यथार्थ कुछ और ही है। इस्लाम में स्त्रियों को अधिकार दिए गए हैं, परन्तु कुरान शरीफ़ हदीस के व्याख्याकार उसकी व्याख्या अपने-अपने ढंग से पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण से करते हैं जो अक्सर स्त्री विरोधी व्याख्याएँ होती हैं।

इस्लाम धर्म में मुस्लिम स्त्रियों को पुरुषों से आर्थिक समानता प्रदान की गई है, विचारक राजकिशोर के अनुसार- ‘‘उसे पूरी आज़ादी प्राप्त है। कुरान में अल्लाह का आदेश है- मर्दों के लिए भी है उस चीज में जिसको माँ-बाप या निकट के संबंधी छोड़ जाएं और औरतों के लिए भी हिस्सा है उस चीज में, जिसको माँ-बाप या

नजदीक के रिश्तेदार छोड़ जाएं। (3:7)''[1] आज हक़कीत यह है कि मुसलमानों ने इस अधिकार से स्त्रियों को वंचित कर रखा है। बुर्के में मुँह छुपाकर, स्त्री अपने अधिकार को लेना भी प्रारंभ करती है तो पति द्वारा या परिवार द्वारा प्रताड़ित की जाती है- ''सच्चाई यह है कि मुसलमान स्त्री के अधिकारों पर डाका डालने वाले मुसलमान ही हैं जो उसे आर्थिक व सामाजिक समानता नहीं देना चाहते। यही लोग प्रचार करते हैं कि स्त्री का सुधार करने के लिए उनका मज़हब उसे पीटने का हक देता है।''[2] एक बात और देखने को मिलती है कि जहाँ इस्लाम में स्त्री को पीटने का अधिकार देता है वहीं इस नियम से पुरुष भी बरी नहीं है। इस दृष्टि से पुरुषों को उनकी गलती पर क्यों नहीं पीटा जाता है। ''कुरान में आदेश है : और जो लोग सतवंती स्त्रियों पर तोहमत लगायें और (आरोप की पुष्टि के लिए) चार गवाह न लायें, उन्हें अस्सी कोड़े मारो और कभी भी उनकी गवाही स्वीकार न करो और वही अवज्ञाकारी है। (24:4) व्यभिचार के मामले में पुरुष व स्त्री के लिए समान सजा की व्यवस्था की गयी है।''[3] इस उद्धरण से स्पष्ट है कि पुरुष और स्त्री दोनों के लिए कुरान में व्याख्याएँ मौज़ूद हैं।

मुस्लिम स्त्रियों को आर्थिक मामलों में जहाँ समानता प्रदान की गयी है वहीं विवाह के मामले में भी स्वतंत्रता प्रदान की गई है। उसे मेहर वसूल करने का पूरा अधिकार प्राप्त है। एक बात और देखने को मिलती है कि स्त्रियों को कई मुसलमान परिवारों में धन के लालच में या गरीबी की वजह से रईस या बूढ़े व्यक्ति से शादी कर देते हैं। आज स्त्रियों के साथ बहुत ही बुरा व्यवहार हो रहा है। आए दिन किसी न किसी समाचार पत्र में यौन शोषण का मामला आ ही जाता है।

मुस्लिम समाज में स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार भी प्राप्त है। परंतु वास्तविकता यह है कि कुछ स्त्रियाँ तो तालीम ले पाती हैं कुछ पति अथवा परिवार के दबाव के कारण शिक्षा प्राप्त नहीं कर पातीं।

भारत में शिक्षा व्यवस्था की स्थिति दयनीय है। आज भी देश में नब्बे प्रतिशत गरीब व दलितों के बच्चे न्यूनतम शिक्षा स्तर से भी नीचे हैं। आज स्थिति यह है कि जिनके पास धन है, उनके बच्चे तो कान्वेंट स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करते हैं, वहीं गरीब घर के बच्चे शिक्षा के लिए मोहताज हैं। देश को आज़ाद हुए छह दशक हो गए हैं परन्तु दोहरी शिक्षा प्रणाली को लेकर आज भी लड़ाईयाँ लड़ी जा रही हैं। पूरे देश में समान

शिक्षा, समान अधिकार की मांग जोरों पर है। आज शिक्षा, व्यवसाय में तब्दील हो गई है जिसे गरीब घर का बच्चा खरीद पाने में असमर्थ है।

दोहरी शिक्षा नीति मुस्लिम समाज में गरीब तबके के लिए अहितकारी साबित हो रही है। शिक्षा एक मूलभूत आवश्यकता है जिसमें किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं होना चाहिए। लेकिन इस देश में ठीक इसके विपरीत ही हो रहा है -"गरीबों के लिए जिला परिषद/नगरपालिका का हिन्दी माध्यम का घटिया विद्यालय तथा अमीर घर के बच्चों के लिए अंग्रेजी माध्यम के आईसीएसई एवं सीबीएसई विद्यालय हैं। यही नहीं देहरादून, मसूरी जैसे विद्यालयों में अमीर घरों के बच्चे पढ़ाई करते हैं। इस प्रकार अमीर घर के बच्चों तथा गरीब घर के बच्चों में बहुत बड़ी खाई बनती जा रही है।"[4] हिन्दू कौम हो या मुस्लिम कौम दोनों में स्थिति बराबर है।

इस्लाम में पुरुष को चार विवाह करने की छूट है, लेकिन कुरान में इसके प्रावधान के सम्बन्ध में कहा गया है कि, ''और यदि तुम्हें भय हो कि यतीमों के मामले में न्याय कर सकोगे तो स्त्रियों में से जो तुम्हारे लिए जायज हों दो-दो, तीन-तीन और चार-चार तक विवाह कर लो। और यदि तुम्हें भय हो कि उनके साथ समता का व्यवहार न कर सकोगे तो फिर एक ही पर बस करो या वह दासी जो तुम्हारे कब्जे में हो उसी पर बस करो। इसमें तुम्हारे ज्यादती से बचे रहने की अधिक संभावना है ।(4:3)''[5] इस्लाम में जब यह कहा गया कि मुसलमान व्यक्ति तीन-तीन या चार-चार शादियाँ कर सकता है, उस समय परिस्थितियाँ कुछ और थीं, ''इस्लाम के आरंभ काल में उसके विरोधियों की संख्या बहुत अधिक थी। विरोधियों को परास्त करने के लिए उस समय बद्र, उहुद, खंदक, खैबर, मक्का, तबूक आदि स्थानों पर अनेक बड़े युद्ध लड़ने पड़े थे। युद्धों में पुरुषों की जानें अधिक जाती हैं। अत: इन युद्धों में भी अनेक स्त्रियाँ विधवा एवं बेसहारा हो गयी थीं तथा समाज में उनके समायोजन की विकट समस्या आ गयी थी। इस विशेष परिस्थितियों में मुसलमानों को विशेष सुविधा दी गयी कि वे चार पत्नियाँ रख सकते हैं। चार की संख्या इसलिए सीमित की गयी कि पहले लोग असीमित संख्या में शादियाँ करते थे।''[6]

विवाह-विच्छेद के संबंध में भी मुस्लिम समाज में यह बात देखने को मिलती है कि पति अगर तीन बार अपनी पत्नी से तलाक-तलाक कह दे तो विवाह-विच्छेद हो जाता है, परंतु वास्तविकता यह है कि ऐसी धारणा गलत है। कुरान के अनुसार पति-पत्नी के बीच किसी बात को लेकर झगड़ा होता है तो पति-पत्नी को समझाएगा। अगर समझाने से बात नहीं बनती है तो इस्लाम के नियमों के अनुसार उसे तलाक दे सकता है। कुरान के अनुसार तलाक की प्रक्रिया इस प्रकार है- ''1. पहले सुलह के प्रयास किए जाएं। 2. प्रयास असफल होने पर इद्दत के समय तलाक कहा जाए। 3. एक मास बीतने पर दूसरा तलाक कहा जाए। 4. इसके बाद तीन मास प्रतीक्षा की जाए। 5. यदि इस अवधि में भी बात न बने तो पत्नी को रुखसत कर दिया जाए तथा उसे खर्च दिया जाए।''[7]

मुस्लिम समाज में स्त्रियों को शोषित करने के लिए पर्दा या बुर्का की व्यवस्था की गई है लेकिन पर्दा की व्यवस्था किन परिस्थितियों में सही है इस पर विचार करना समीचीन होगा। कुरान के अनुसार- ''हे नबी! अपनी पत्नियों और बेटियों और ईमान वाली स्त्रियों से कह दो कि वे (बाहर निकालने पर) अपने ऊपर अपनी चादरों के पल्लू लटका लें इसमें इस बात की अधिक संभावना है कि वह पहचान ली जाएं और सताई ना जाएं और अल्लाह बड़ा क्षमाशील व दयावान है। (33:59)''[8]

मुस्लिम समाज में व्याप्त गरीबी, भूखमरी, यौन शोषण व अत्याचार जैसी खबरें मीडिया से एक दम दरकिनार कर दी गई हैं। आज इलेक्ट्रॉनिक तथा प्रिंट मीडिया में खेल, फ़िल्मी दुनिया, विज्ञापन, सीमापार आतंकवाद की समस्या आदि पर ही ध्यान दिया जा रहा है, जो कि एक चिंता का विषय है। मीडिया सरकारी विभाग मुस्लिम समाज में गरीबों की मूल समस्या की तरफ लोगों का ध्यान आकर्षित करने में असमर्थ रहा है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मुस्लिम समाज में स्त्रियों की दीन दशा के लिए इस्लाम नहीं, बल्कि कुरान, हदीस की व्याख्या करने वाले धर्माधिकारी दोषी हैं। चूँकि कुरान अरबी भाषा में लिखा गया है इसलिए बहुत सी स्त्रियाँ कुरान तो पढ़ती हैं परंतु उसका सही अर्थ न जान पाने के कारण अपने अधिकारों से वंचित रह जाती हैं और शोषण का शिकार हो जाती हैं।

ऐसे रचनाकार जिन्होंने मुस्लिम स्त्री की समस्याओं को अपनी कहानियों के केन्द्र में रखा है, उनमें से प्रमुख हैं- हसन जमाल (नुक्ताचीं है गमे-दिल, 2000), फहमीदा रियाज़ (पर्सनल एकाउण्ट, 2000), मंजूर एहतेशाम (घेरा, 2001), ऋषिकेश सुलभ (खुला, 2001), नासिरा शर्मा (कागज़ी बादाम, 2010, इंसानी नस्लें, 2001), अलीफा रिफ़ात (मीनार के परिदृश्य में, 2002), मोहसिन खान (जोहरा, 2003), जेबा रशीद (तपती रेत, 2004), गजाल ज़ैगम (नेक परवीन, 2004), अकील कैस (उजबक, 2004), अनवर सुहैल (नसीबन, एक थी कम्मो, 2006), विजय (शेर खाँ, 2006), नीला प्रसाद (एक मस्जिद समानांतर, 2006), एम.हनीफ मदार (तुम चुनाव लड़ोगे?, 2008), नूर जहीर (ट्रान्ज़िट की जिंदगी, 2009), नसरीन बानो (बाबुल का द्वार, 2009), शमोएल अहमद (ऊँट, 2009, मिश्री की डली, 2009) एवं गीतांजलि श्री (बेलपत्र, 2010)आदि।

मुस्लिम समुदाय में व्याप्त स्त्री की समस्या को केन्द्र बनाकर हसन जमाल ने 'नुक्ताचीं है गमे-दिल' कहानी लिखी है। इस कहानी में शहनाज जो सरकारी नौकरी करती है, नौकरी करने के लिए रोजाना उसे घर से बहुत दूर जाना पड़ता है। नौकरी जाते वक्त उसे बहुत सारी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। कहानी का एक प्रसंग है- ''उन्हीं दिनों शहनाज की प्राब्लम ज़नानखाने से निकलकर अमजद मियाँ के मर्दाने में चली आयी। शहनाज़ उनकी कुँआरी साली थी। शहर से चालीस कि.मी. दूर एक छोटे गाँव के स्कूल में टीचर थी। रोज़ अप-डाउन करना पड़ता था। पर्दानशीनों के घर की पढ़ी-लिखी बिटिया को इक टकिया की नोकरी के लिए यूँ परेशान-बदहाल होना पड़ेगा इसका तसव्वुर भी इस खानदान में मुहाल था।''[9] शहनाज की समस्या को दूर करने के लिए उसके जीजा एक नेता से मिलते हैं, परंतु नेता शहनाज का शोषण करता है- ''आप अपनी साली को भेज दीजिए, उनकी प्राब्लम को ठीक तरह समझ लूँ। अमजद मियाँ ने अचकचाकर बारी-बारी से माजरा साहब और अब्दुल सत्तार को देखा। अब्दुल सत्तार ने पहले तो कंधे उचकाये फिर हँसकर कहा, ''माजरा साहब घर के आदमी हैं।''[10] ये कहानी स्त्री शोषण के सामाजिक चरित्र को व्याख्यायित करती है ,जहाँ स्त्री न हिन्दू है न मुसलमान,वह सिर्फ स्त्री है।

'पर्सनल एकाउंट' कहानी कामकाजी स्त्री की समस्या पर आधारित है। कहानी में रजिया जो छोटी-सी नौकरी करती है। नौकरी के दौरान रजिया को जो पैसे मिलते हैं, उसे उसका पति छीन लेता है और गलत कार्य के लिए उपयोग करता है- ''उसकी आमदनी का एक-एक पैसा उसका शौहर ले लिया करता था। रजिया तड़पती रह जाती थी, लेकिन अपने माँ और बाप की ज़रा भी मदद नहीं कर पाती थी।''[11]निम्नवर्गीय स्त्री कितनी भी मेहनत करे उसके कष्टों का कहीं कोई अंत नहीं है।

'घेरा' शीर्षक कहानी ख़ासतौर से मुस्लिम समाज में स्त्री के चरित्रहीनता को उद्घाटित करती है। इस कहानी में शब्बो की शादी के बाद कई तरह के नाज़ायज़ संबंध रहते हैं। कहानी का एक प्रसंग है- ''जमाल?? हुँह! जमाल जब तक है, आगे कोई और हो सकता है।''[12]

'मीनार के परिदृश्य में' एक ऐसी स्त्री की कहानी है, जो अपने पति से त्रस्त है। पति के कई नाजायज संबंध रहते हैं, परंतु पत्नी विरोध नहीं कर पाती। पति से अच्छे संबंध बनाने की पूरी कोशिश करती है - ''कई बार उसने इशारे में बतलाया है कि उसके दूसरी स्त्रियों से रिश्ते रहे हैं और कभी-कभी उसे ऐसा भी संदेह हुआ कि उसके संबंध अभी भी हैं।''[13]

मुस्लिम महिलाओं की समस्याओं में घरेलू हिंसा और जुबानी तलाक सबसे अहम मुद्दा है। ऐसे मामले अक्सर देखने को मिलते हैं कि किसी परिवार में लंबे समय तक घरेलू हिंसा हुई। झगड़े होते रहे और फिर अंत में एक दिन पति ने तलाक दे दिया। तलाक के दौरान न मेहर वापस की गई और न ही पत्नी के भरण-पोषण के लिए गुजारा भत्ता दिया गया। हालाँकि सन् 2007 में 'भारतीय मुस्लिम महिला आंदोलन' (BMMA) का गठन किया गया। जिसका प्रमुख उद्देश्य मुस्लिम समाज में महिलाओं पर हो रहे अत्याचार का विरोध करना है। इस संस्था का गठन ज़किया सोमान और नूरजहाँ सफिया ने किया है। 'भारतीय मुस्लिम महिला आंदोलन' के द्वारा 2007 में किए गए सर्वे के अनुसार 92.1% मुस्लिम महिलाओं का मानना है कि 'जुबानी तलाक एक गलत प्रथा है।'

देश में मुस्लिम महिलाओं के विपक्ष में सुप्रीम कोर्ट द्वारा कुछ ऐसे निर्णय भी दिए गए हैं, जिससे मुस्लिम महिलाओं की लड़ाई को धक्का लगा है। उदाहरण के लिए 1985 में शाहबानो मामला को देख सकते हैं- इंदौर की 62 साल की महिला को उसके पति ने तलाक दे दिया। तब शाहबानो ने अपने पति के खिलाफ़ (CRPC की धारा 125) के तहत गुजारा भत्ता देने के लिए कोर्ट में मुकदमा कर दिया। कोर्ट ने शाहबानो के हक में फैसले भी सुनाए, लेकिन कुछ मुसलमानों का एक तबका इसका कड़ा विरोध किया, जिसके परिणामस्वरूप तत्कालीन कांग्रेस सरकार ने फैसले को पलट दिया और 'मुस्लिम विमेन प्रोटेक्शन ऑफ राइट्स ऑन डाइवोर्स' एक्ट 1986 पारित किया। जिसमें यह कहा गया कि तलाकशुदा पत्नी अपने पति से गुजारा भत्ता नहीं ले सकती।

'जोहरा' शीर्षक कहानी प्रमुख रूप से मुस्लिम समाज में व्याप्त 'बुर्के' की समस्या पर आधारित है। कहानी में बुर्के के कारण एक स्त्री समाज में, परिवार में किस प्रकार घुट-घुट कर जीवन यापन करती है, उसका सजीव चित्रण किया गया है। कहानी का एक प्रसंग है- ''जमील ने रिक्शा वाले को पैसे दिए फिर उसकी तरफ देखते हुए कहा, ''अब उतरोगी या रिक्शे पर ही बैठी रहोगी। वह धूम से कूद पड़ी बुरका पैरों में उलझ गया। रिक्शे का हुड न पकड़ लेती तो मुँह के बल गिर जाती।''[14] मुस्लिम समाज में बुर्के की वजह से भी स्त्रियाँ अपने घर में ही शोषित होती हैं- ''और एक उसका घर था कि जैसे घर न हो मदरसा हो गया। जरा-सी लग़जिश हुई नहीं कि डांट-डपट पड़ी। किसी तरफ़ से अम्मा की आवाज़ आई। जोरा दुपट्टा ठीक करो।''[15] इस कहानी में सामंती परिवार में स्त्रियों की मजबूरी, यातना, अशिक्षा आदि समस्याओं को उकेरा गया है। मुस्लिम सामंती परिवार में स्त्रियों की स्थिति पर राजेन्द्र यादव ने इस प्रकार टिप्पणी की है- ''सामंती परिवार में स्त्री का न नाम होता है, न चेहरा। हो सकता है पिता के घर वह किसी पुरानी देवी या पिता के नाम से पुकारी जाती हो, मगर उसके 'अपने परिवार' में उसका नाम ठीक वैसा ही होता है जैसा जेल में कैदी का नंबर। गाँव, घर या परिवार में उसके स्थान के संदर्भ और आसंग ही उसके नाम तय करते हैं। चेहरे की जगह होते हैं घूँघट, बुर्के या अंधेरी कोठरियों की चलती-फिरती छायाकृतियाँ। उससे उम्मीद की जाती है कि बाहर वालों को न उसका चेहरा दिखाई दे, न आवाज़ सुनाई दे।''[16]

आम तौर पर देखा जाए तो सामंती परिवार में जन्म लेने वाली मुस्लिम महिलाएँ शोषित तो होती हैं, परन्तु ज्यादातर निम्नवर्ग की मुस्लिम महिलाएँ शोषण का शिकार बनती हैं, ''भारतीय मुस्लिम निम्न वर्ग और निम्न-मध्यवर्ग की औरतें इसका ज्यादा शिकार होती हैं, क्योंकि न तो वे पढ़ी-लिखी होती हैं, न उसके पास इतना धन होता है कि वे मौलवियों को दें या अदालत का दरवाजा खटखटाएँ। इस मामले में भी औरतों में यह विश्वास पक्का है कि उनका पति के विरोध में जाना गुनाह है। खुदा उस औरत को माफ़ नहीं करता है।''[17]

'तपती रेत' कहानी मुस्लिम समाज में विवाह की समस्या को उद्घाटित करती है। इस कहानी में अन्नो की दो शादी होती है, परंतु दोनों पति नकारा निकलते हैं। कहानी में एकल परिवार में पिसती स्त्री की समस्या को उकेरा गया है- ''आज अन्नो को पूरी पुरुष जाति पर क्रोध आया हुआ था। ''अरे क्या बक रही है तू .... हुलिया बिगाड़ दूँगा भूतनी का ....'' ''अरे जा बहुत देखे तेरे जैसे ... !'' ''आज क्या तू पागल हो गई है?'' उसने हैरत से पूछा। हाँ इतने साल मैं पागल ही तो थी। अब अक्ल आ गई है। क्यों डरती फिरूँ मैं मरदों से .... जा निकल मेरे घर से।''[18] इस कहानी में स्त्री के अकेलेपन को भी उकेरा गया है। कहानी का एक प्रसंग है- ''बहना मैं भी ऐसा सोचती थी! पर हार गयी ... इसलिए मैंने भी एक का हाथ पकड़ लिया। अकेली औरत का इस दुनिया में रहना बड़ा मुश्किल है। तू सोच ले ...।''[19]

समाज में स्त्री भय भी शोषण का सबसे बड़ा कारण बनता है। राजेन्द्र यादव के शब्दों में- ''भय स्त्री का स्थायी भाव है : दूसरों द्वारा मूल्यांकन किए जाने का भय, सौंदर्य के न रहने का भय, पुरुष की निगाहों से उतर जाने का भय, दूसरी स्त्री के अधिक सुंदर होने का भय, अपनी शारीरिक अक्षमता का भय, इज्जत का भय, बलात्कार का भय, सामाजिक सम्मान का भय, बूढ़े होकर फालतू हो जाने का भय... स्त्री के भय के अनगिनत रूप हैं जो उसके खून की एक-एक बूँद में भरे हैं। यह भय या आशंकाएँ उसे ईर्ष्यालु और कुटिल भी बनाते हैं।''[20]

किसी भी समाज में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा की समस्या कई कहानियों का प्रमुख मुद्दा है। भारतीय समाज में महिलाओं का तबसे शोषण होने के प्रभाव मिलते हैं, जबसे सामाजिक संगठन और पारिवारिक

जीवन के लिखित प्रमाण मिलते हैं। यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि वे कौन-सी महिलाएँ हैं, जिन्हें उत्पीड़ित किया जाता है? महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के मुख्य कारण कौन-कौन से हैं? महिलाओं के विरुद्ध हिंसा का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है -

1. आपराधिक हिंसा

2. घरेलू हिंसा

3. सामाजिक हिंसा

आपराधिक हिंसा के अंतर्गत बलात्कार, अपहरण, हत्या आदि आता है। घरेलू हिंसा के अंतर्गत दहेज संबंधी मृत्यु, पत्नी को पीटना, लैंगिक दुर्व्यवहार, विधवाओं के साथ दुर्व्यवहार, वृद्ध महिला के साथ दुर्व्यवहार वहीं सामाजिक हिंसा के अंतर्गत पत्नी अथवा पुत्रवधू को मादा भ्रूण की हत्या के लिए बाध्य करना, महिलाओं से छेड़छाड़, संपत्ति में महिलाओं को हिस्सा न देना, विधवा को सती होने के लिए बाध्य करना, पुत्र-वधू को अधिक दहेज लाने के लिए बाध्य करना आदि आता है।

यौन उत्पीड़न की समस्या सभी देशों में एक प्रमुख समस्या के रूप में सामने आयी है। फिर भी अन्य देशों की तुलना में भारत में बलात्कार का प्रतिशत कम है, ''अमेरिका में बलात्कार के अपराधों की प्रति लाख प्रतिवर्ष दर लगभग 26 है, कनाडा में यह संख्या लगभग 8 है और इंग्लैण्ड में यह प्रति एक लाख जनसंख्या पर लगभग 5.5 है। इसकी तुलना में भारत में इसकी दर 0.5 प्रति लाख जनसंख्या है।''[21] एक सर्वे के अनुसार- ''क्राइम इन इंडिया में केन्द्रीय सरकार द्वारा जनवरी 27, 1993 को 'महिलाओं के विरुद्ध अपराध' पर प्रस्तुत की गई रिपोर्ट के अनुसार भारत में प्रत्येक 54 मिनट में एक महिला के साथ बलात्कार होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि एक महीने में लगभग 800 तथा एक वर्ष में लगभग 9600 बलात्कार होते हैं।''[22]

बलात्कार प्रमुख रूप से निम्नलिखित स्थितियों में होते हैं- ''बलात्कार सदैव पूर्णतया अपरिचित व्यक्तियों में नहीं होते, प्रत्येक दस में से नौ बलात्कार परिस्थितियों से संबंधित होते हैं, लगभग पाँच में से तीन

बलात्कार (58.0 प्रतिशत) एकल बलात्कार होते हैं (जिनमें एक ही अपराधी होता है), पाँचवें हिस्से में (21.0 प्रतिशत) द्वय बलात्कार होते हैं (यानी महिला के साथ दो आदमी बलात्कार करते हैं), और पाँचवें हिस्से में ही (21.0 प्रतिशत) सामूहिक बलात्कार होते हैं ।''[23] इसी प्रकार समाज में अपहरण और हत्या जैसी समस्या महिलाओं के लिए एक कठिन समस्या के रूप में देखा जा सकता है।

आज दहेज संबंधी हत्याएँ ज्यादातर देखने को मिल रही हैं। इसका कारण है - धन का लालच। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा एक प्रमुख मुद्दा है । इसके निम्नलिखित कारण होते हैं - ''(1) यौन संबंधी असमायोजन, भावात्मक गड़बड़, पति का गर्वित अहम या हीनभावना, पति का पियक्कड़ होना, इर्ष्या तथा पत्नी की निष्क्रिय कायरता। (2) पीटने वाले पति के बचपन में हिंसा की विपदग्रस्तता पत्नी के पीटने में एक महत्वपूर्ण कारक होता है। (3) यद्यपि अनपढ़ पत्नियों को शिक्षित पत्नियों की अपेक्षा पति द्वारा पीटे जाने की संभावना अधिक होती है, फिर भी पीटने और पीड़ितों के शैक्षिक स्तर में कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं है और (4) यद्यपि उन पत्नियों का जिनके पति शराबी होते हैं उत्पीड़न का अनुपात अधिक होता है ।''[24] इसी प्रकार विधवाओं के साथ दुर्व्यवहार महिला उत्पीड़न की प्रमुख समस्या है।

समाज में हिंसा की शिकार वो स्त्रियाँ होती हैं , ''जो दबावपूर्ण पारिवारिक स्थितियों में रहती हैं या ऐसे परिवारों में रहती हैं जिन्हें समाजशास्त्रीय शब्दावली में 'सामान्य' परिवार नहीं कहा जा सकता। सामान्य परिवार वे हैं जो संरचनात्मक रूप से पूर्ण होते हैं । (दोनों माता-पिता जीवित हैं और साथ-साथ रह रहे हैं), आर्थिक रूप से निश्चिंत हैं (सदस्यों की मूल और पूरक आवश्यकताओं की पूर्ति करते है) ।''[25] इसके अलावा वे महिलाएँ भी हिंसा का शिकार बनती हैं - ''जिनके पति बहुधा मदिरापान करते हैं। जिनके पति/ससुराल वालों के विकृत व्यक्तित्व हैं और जिनमें सामाजिक परिपक्वता की या सामाजिक अंतर-वैयक्तिक की या सामाजिक अंतर-वैयक्तिक प्रवीणताओं की कमी है जिसके कारण उन्हें व्यवहार संबंधी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।''[26]

समाज में महिलाओं के प्रति बढ़ती हिंसा के कारणों पर सुधा अरोड़ा ने इस प्रकार टिप्पणी की है- ''यह एक बड़ी विसंगति है कि एक ओर साहित्य में स्त्री विमर्श का डंका बज रहा है, दूसरी ओर स्त्री उत्पीड़न का ग्राफ बढ़ता जा रहा है। आपराधिक आँकड़ों को देखने से समाज की जिस मानसिकता की तस्वीर सामने आती है, वह चिंता जगाती है। स्त्री अगर शोषित होती है तो अक्सर शोषक घर का व्यक्ति भी होता है। अगर महिला बाहर काम करती है तो बाहर भी उसे अतिरिक्त चौकस रहना पड़ता है। छोटी बच्चियों से या नाबालिग से बलात्कार एक मानसिक विकृति है।''[27]

'नेक परवीन' कहानी दंपत्ति के बीच संबंधों के यथार्थ को संप्रेषित करती है। कहानी में पत्नी जानती है कि उसके पति का अन्य महिलाओं के साथ अवैध संबंध भी हैं, फिर भी वह पति से कुछ न कहकर, उसको ख़ुश करने का पूरा प्रयत्न करती रहती है। इस कहानी में पति से परेशान स्त्री का चित्रण भी किया गया है, कहानी का एक प्रसंग है- ''अब धोबी को कपड़े देते वक्त उसकी पैंट की जेब से तरह-तरह की नंगी तस्वीरें और बेहूदा मजमून की कतरनें मिलने लगीं। सोफे के नीचे फहश (अश्लील) मैगज़ीन, क्लिप और बाल, लिपिस्टिक के निशान लगे रूमाल वगैरह मिलने लगे।''[28] इस कहानी में मुस्लिम स्त्री का एकल परिवार में त्रस्त जीवन का चित्रण भी कहानीकार ने किया है, कहानी का एक प्रसंग है- ''हजारों जोड़ों की तरह बेबस और बेहिस। ज़िंदगी की तमाम नरमी अचानक खुश्क हो गई। अब तमाम रिश्ते अपने माइने खोते जा रहे थे। मैं अरब किस्म के नाकाबिले बयान कैफियत के ग्रास में थी। तमाम ताल्लुकात बेकैफ हो चुके थे, बेमज़न, नमक खत्म हो चुका था।''[29]

मुस्लिम समाज में रूढ़िवादिता या कहें धार्मिक पाखंड- स्त्री शोषण के कारक हैं। स्त्री चाहकर भी समाज, परिवार में मुक्त होकर नहीं जी पाती। इस कहानी के अंत में पत्नी ज़िंदगी में पूरी तरह हार जाती है और कहती है- ''इस समाज में जहाँ कुँवारी और तलाकशुदा लड़कियों की हालत एक जैसी है, जो कि बगैर कोई गुनाह किए हुए भी गुनहगार मानी जाती हैं। तलाकशुदा औरत? न ... न.... न। कभी जी चाहता भाग जाऊँ यह जंजाल छोड़कर, लेकिन तहफ्फुज (सुरक्षा) का एहसास ही काफी था।''[30]

मुस्लिम समुदाय में स्त्रियों की दयनीय स्थिति का सबसे बड़ा कारण है - धर्म के बारे में गलत दृष्टिकोण। जिसका पूरा लाभ धर्म के ठेकेदार उठाते हैं। मुल्ला, मौलवी स्त्रियों को धर्म के नाम पर कुछ भी करने के लिए विवश करते रहते हैं। कथाकार नासिरा शर्मा मुस्लिम स्त्रियों की धर्म के बारे में अज्ञानता को, स्त्री के प्रति हिंसा का कारण बताती हैं - ''मुस्लिम औरत की बदनसीबी का भेद केवल इतना है कि उसको अपने धर्म का पूरा ज्ञान नहीं, तो भी वह उस पर आँख मूँदकर विश्वास करती है, क्योंकि उसको विरासत में यही मिला है कि धर्म के मामले में मौलवी साहब का और घरेलू मामलों में शौहर का कहना मानना ही जन्नत जाने के दरवाज़े की कुंजी है। शौहर मजानी ख़ुदा अर्थात सांसारिक भगवान है, जो पत्नी को उसका हिस्सा देता है, मगर देखने में आता यह है कि न मौलवी उसको खुदा के बताए रास्ते का सही ज्ञान देता है, न शौहर ही उसको वे अधिकार देता है, जिनको शरीयत कानून ने वाजिब बताया है।''[31]

'उजबक' कहानी संयुक्त परिवार में शोषित मुस्लिम स्त्री की व्यथा को उजागर करती है। एक विधवा स्त्री जिसको पति के मरने के बाद घर से अलग कर दिया जाता है। पत्नी अपने हक़ के लिए परिवार से लड़ती है, परंतु अंत में हार जाती है। कहानीकार ने इस कहानी के माध्यम से मुस्लिम समाज में विधवा स्त्री की दयनीय स्थिति की ओर संकेत किया है - "भाभी जान की अर्थव्यवस्था बच्चों को घर पर ट्यूशन पढ़ाने और कपड़ों की कुछ सिलाई-विलाई पर टिकी थी। मंदा चल रहा होगा आजकल - मैंने निष्कर्ष निकाला और जफरू से मुहल्ले का हाल-चाल पूछता हुआ चल पड़ा।''[32]

किसी भी देश या समाज में किसी भी व्यक्ति का वर्चस्व सिर्फ़ भय या आतंक से नहीं होता बल्कि उसके लिए एक दर्शन को गढ़ा जाता है, ताकि आम-बेबस लोगों के जीवन पर कब्ज़ा किया जा सके, राजेन्द्र यादव ने भी लिखा है कि -"लेकिन तंत्र के शीर्ष केंद्र पर बैठे हुओं को मालूम है कि वर्चस्व सिर्फ़ भय-आतंक या लोभ से स्थाई नहीं होता। उसके लिए बाकायदा एक 'दर्शन' गढ़ना भी ज़रूरी है :उसका मुख्य उद्देश्य ज़ाहिलों, गँवारों, असभ्यों और अविकसितों को प्रकाश देकर 'मुख्य धारा' में यानी अपने हितों और दृष्टिकोणों में शामिल करना है। उनका यह 'दर्शन' लगभग स्वायत्त होकर औरों में ऐसी चेतना विकसित करता है कि शेष

खुद-बखुद अपने को इस 'मुख्यधारा' में शामिल किए जाने के लिए जी-जान एक कर देते हैं : बिना इस दर्शन और मानसिकता के 'हमारा' वर्चस्व स्थाई नहीं हो पाएगा।"[33]

आजकल 'मानसिक उपनिवेशवाद' की चर्चा बहुत जोरों पर है। दुनिया में गरीब, असहाय और हाशिये पर जीवन यापन कर रहे मनुष्यों की संख्या बहुत ज्यादा है। 'मानसिक उपनिवेशवाद' एक ऐसी परिकल्पना है जिसमें बेसहारा और असहाय लोगों के दिलों, दिमाग पर कब्ज़ा किया जाता है। राजेन्द्र यादव के शब्दों में -"वे अलग और असंतुष्ट रहेंगे तो हमें खा जाएँगे। स्थितियाँ और प्रलोभन ऐसे बना दिए जाने चाहिए कि वे स्वेच्छा से 'हम' में शामिल होने की दौर में बने रहें -पद, प्रतिष्ठा, पुरस्कार, पैसा, सुरक्षा या फिर उपेक्षा, अस्वीकृति, वंचित होने की स्थिति, एक ओर फेंक दिए जाने की शर्तें बिल्कुल स्पष्ट रूप से परिभाषित होनी चाहिए। एक दौड़ ऊपर ले जाती है और दूसरी नीचे धकेलती है। 'उनमें' से हर एक में यह भावना और कामना दोनों होनी चाहिए कि 'हमारी' थाली में साथ बैठकर लड्डू खाने के लिए वे 'हमारी शर्तों' पर दौड़ में शामिल होने के लिए 'स्वतंत्र' हैं । मोटे रूप में यही 'मानसिक उपनिवेशवाद' है ।"[34]

'एक थी कम्मो' शीर्षक कहानी में मुस्लिम समाज में व्याप्त आर्थिक समस्या को उद्घाटित किया गया है। यह एक संयुक्त परिवार की कहानी है। घर की हालत ऐसी रहती है कि दो लड़कियों में से छोटी लड़की का विवाह तो किसी तरह हो जाता है, परंतु बड़ी लड़की कुँवारी ही रह जाती है कारण- आर्थिक समस्या के साथ-साथ बड़ी लड़की कुरूप है। कहानी में एक प्रसंग है - ''कम्मो की सहेलियाँ अब अपना जन्म-दिन नहीं मनातीं। अधिकांश लड़कियाँ अब श्रीमती 'क' या श्रीमती 'ख' बन गई हैं। अब वे अपनी शादी की सालगिरह मनाती हैं। अपने बच्चों का जन्मदिन मनाती हैं। कम्मो को ये सुख कहाँ इस वर्ष भी वह लड़के वालों के लिए 'अस्वीकृत' रही !''[35] इस कहानी में एक कुंवारी स्त्री के अकेलेपन को उकेरा गया है, कहानी का एक प्रसंग है- ''कितना चिकना गई है शब्बो ! यदि कम्मो का भी ब्याह हो गया होता तो आज वह शहनाज़ की तरह एक-दो बच्चों की माँ हो गई होती। कम्मो को अपना जीवन एक बोझ-सा लगता है आजकल! शब्बो जानती है सब किन्तु वह कर भी क्या सकती है। नसीब का खेल शायद इसी को कहते हैं।''[36]

'नसीबन' शीर्षक कहानी मुस्लिम समाज में फैले अपसंस्कृति को सम्प्रेषित करती है। कहानी का कथ्य यह है कि जुम्मन की शादी नसीबन से होती है। जुम्मन बच्चा पैदा करने में असमर्थ रहता है, जिसके कारण उसकी माँ दूसरी शादी कर देती है। जुम्मन की जो दूसरी पत्नी आती है, उसके पेट में पहले से ही बच्चा रहता है। जुम्मन की पहली पत्नी नसीबन जो बच्चा पैदा कर सकती थी, उसके घर वाले निकाल देते हैं। नसीबन की सास नसीबन को ताना देती है कि तुम माँ बनने योग्य नहीं हो, लेकिन सच्चाई कुछ और ही रहती है। कमी जुम्मन में रहती है। इस कहानी में एक बेबस स्त्री की पीड़ा का अंकन किया गया है। कहानी में एक प्रसंग है- ''नसीबन बाँझ न थी। वह किससे बताती कि उसकी नम-उर्वरा कोख की धरती पर बीज पड़ा ही न था।''[37] कहानी में नसीबन को उसकी सास जबरन कोसती रहती है, कहानी का एक प्रसंग है- ''बेटे से झूठी शिकायतें करती कि बहू ने ढंग से खाना दिया न पानी। दिन भर मुझसे लड़ती रहती है। बाँझ-निपूती रांड़ सब ऐसी ही होती हैं। मेरे बेटे पर 'टोनाहिन' ने न जाने कैसा टोना कर दिया है कि यह किसी की सुनता ही नहीं।''[38]

मुस्लिम समाज में स्त्रियों की समस्याओं को केंद्र बनाकर इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में बहुत सारी लेखिकाओं ने लेखन किया है। लेखिकाओं को अपने लेखन में बहुत सारी समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए, हाल के दिनों में एक शब्द आया है - 'लेखकीय कम्युनिटी सेंटर'। लेखकीय कम्युनिटी सेंटर के बारे में कथाकार अनामिका ने इस प्रकार टिप्पणी की है- ''स्त्री लेखकों का एक कमयुनिटी सेंटर होना चाहिए, जहाँ वे बेधड़क जा सकें, उठ-बैठ सकें, लिख सकें ताकि प्राइवेट स्फियर में जाकर यौन शोषण न झेलना पड़े उन्हें। इसके लिए एक ऐसे स्थान का चयन किया जाना चाहिए जहाँ से साहित्य के साथ-साथ मानवीय संवेदना का स्रोत भी प्रवाहित हो जैसे कि वृद्धाश्रमों, शिशुगृह, विधवाश्रम और विकलांग से जुड़े संस्थान हों जिससे साहित्य के साथ ही मानवीय जीवन के सुखद क्षण को सुपात्र तक पहुँचाया जा सके।''[39] उपर्युक्त बातों पर गौर करें तो भविष्य में ऐसा होता है तो स्त्री लेखन के लिए बहुत उपयोगी साबित होगा।

लेखिकाओं का मानना है कि समस्या समाज में उत्पन्न होती है तो उसका हल भी समाज में ही है। साहित्य केवल समाज में व्याप्त कुरीतियों, भ्रष्टाचार, धार्मिक पाखण्ड, अपसंस्कृति, शोषण आदि समस्याओं की भूमिका तैयार करता है या कहें साहित्य सिर्फ चेतना में बदलाव लाता है। समकालीन लेखिका प्रज्ञा के शब्दों में- ''साहित्य से जनक्रांति की अपेक्षा किया जाना ही गलत है। वह सीधे तौर पर जनक्रांति नहीं करता पर चेतना में बदलाव जरूर लाता है। इस दृष्टि से यह परिवर्तन बहुत सकारात्मक, ठोस और स्थाई प्रभाव लिए हुए हैं। मानव-समाज का जो भी कुछ बेहतर, मानवीय और समावेशी रूप हो सकता है उसके निर्माण में साहित्य मदद करता है।''[40]

'स्त्री विमर्श' के उभार के साथ इसमें बहुत उतार-चढ़ाव भी देखने को मिले हैं। यह विमर्श कई भटकनों का शिकार भी रहा है, लेकिन आज यह सशक्त आन्दोलन के रूप में तेजी से आगे बढ़ रहा है। जिसके कारण नारी अपने अस्तित्व को समझने लगी है, राजेन्द्र यादव के शब्दों में- "यही सही है कि नारी मुक्ति के आन्दोलन अनेक उलझनों और भटकनों के शिकार रहे हैं। सभी दलित आन्दोलन हो जाते हैं। कहीं वे मालिक पुरुषों से होंड़ लेकर उन्हीं की तरह 'हंटरवाली' (हेमंत) बन जाने के रूप में आए हैं तो कहीं पुरुष अस्तित्व को ही नकारकर स्वायत्त और स्व-सम्पूर्ण हो जाने में। इन दोनों स्थितियों से होता हुआ नारी-मुक्ति आन्दोलन एक नई व्यवस्था में गया है, जहाँ स्त्री एक सह नागरिक की तरह अपनी पहचान स्थापित करना चाहती है। उसके लिए उसका सारा प्रयास अब तक प्रयुक्त भाषा और मानसिकता के अस्वीकार और स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में स्वीकृति का है।"[41]

आज महिला-लेखन बहुत हद-तक समृद्ध होकर आगे बढ़ रहा है। नारी की रोजमर्रा ज़िन्दगी का यथार्थ चित्रण इनके पूरे साहित्य में सूक्ष्म रूप से देखने को मिल रहा है। प्रभा खेतान के शब्दों में -"रोजमर्रा की ज़िन्दगी, निजी घटनाओं का सटीक वर्णन जितना महिला-लेखन में प्रस्तुत किया जा सकता है उतना पुरुष लेखन में नहीं। मगर पुरुष आलोचकों को स्त्री लेखन की विषयवस्तु बहुत ही सीमित लगती है। माना कि

लेखकीय निखार अभ्यास और साधना पर आधारित है, मगर यह एक सवाल भी है कि क्या केवल अभ्यास करने से ही औरत प्रेमचंद, अज्ञेय हो जाएगी? क्या वह वर्गीय द्वेष, उपेक्षा की शिकार नहीं होगी ?"[42]

इस बात पर शक नहीं किया जा सकता है कि जिस तरह से समाज में कई जटिल मुद्दे उलझे हुए हैं, ठीक उसी तरह की हालत नारीवाद की भी हो गई है। आज ऐसी कई लेखिकाएँ उभरकर हमारे सामने आई हैं जिन्होंने नारीवाद को सही दिशा की ओर ले जाने में कोई कसर नहीं छोड़ा है। आज की लेखिकाएँ नारी के शोषण को ही उजागर नहीं करतीं बल्कि उन्हें प्रेरणा के रूप में समाज से लड़ने की ताकत भी प्रदान करती हैं।

'शेर खाँ' कहानी ख़ास तौर पर मुम्बई में बाढ़ के दौरान वेश्या जीवन व्यतीत करती महिलाओं की समस्याओं पर केन्द्रित है। इस कहानी में मुस्लिम समाज में वेश्या जीवन व्यतीत करती स्त्रियों की बदहाली और बेबसी के हालात का चित्रण किया गया है। कहानीकार ने तवायफ की ज़िंदगी का यथार्थ चित्रण भी किया है, कहानी का एक प्रसंग द्रष्टव्य है- ''सबसे ज्यादा मुसीबत में थीं दोनों शहर की तवाइफें। कहाँ जाएँ? लाखों शहर, गाँव और कस्बे हैं हिन्दुस्तान में मगर कहीं भी अब उनका कोई रिश्तेदार नहीं रहता है। मजबूरी में अपनाया गया कार्य उन्हें रिश्तों से विमुख कर देता है जबकि रिश्तों से गुंथी उसी समाज से ऊबकर तो लोग अपना एकाकीपन दूर करने उनके पास आते हैं।''[43]

'तुम चुनाव लड़ोगे?' कहानी में एक गरीब परिवार के मुखिया को कुछ मुहल्लों में रहने वालों द्वारा बहला फुसलाकर चुनाव लड़ा दिया जाता है। चुनाव के दौरान एक स्थिति ऐसी भी आती है कि कुछ आदमी गरीब मुखिया की लड़की से दुर्व्यवहार करने की कोशिश करते हैं। कहानी में राजनीतिक यथार्थ का चित्रण किया गया है। आज राजनीति में धन, दौलत, भ्रष्टाचार, लड़की, शराब आदि का उपयोग किया जा रहा है। इस कहानी में राजनीति के दौरान स्त्री शोषण को भी व्यंजित किया गया है- ''गलियों में चहलकदमी लगभग थम चुकी थी तब मास्टर के कदम बेटी के कमरे की ओर बढ़े थे। उनका एक-एक पैर सौ मन का हो रहा था। वे खुद को जल्लाद समझ रहे थे जो किसी निर्दोष को फाँसी देने जा रहे हों।''[44]

'ट्रान्ज़िट की जिंदगी' एक ऐसी कहानी है, जिसमें कामकाजी स्त्री के जीवन की घटनाओं को उकेरा गया है। आज मुस्लिम समाज की लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त करके ऊँचे ओहदे पर तो जा रही हैं, परंतु उनको वहाँ भी कई तरह की मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। इस कहानी में शबनम जिस ऑफिस में काम करती है, वहाँ पर उसे ऑफिस के माहौल से कई तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ता है। ऑफिस में सिर्फ मज़हब, धर्म पर ही बातें चलती हैं। कहानी में कामकाजी स्त्री के अकेलेपन का अंकन भी मिलता है, कहानी का एक प्रसंग है- ''आख़िर क्या फ़ायदा हुआ उसे जवाब देने का? देखा जाए तो क्या फ़ायदा हुआ पार्टी में जाने का? है तो वह अब भी उतनी ही अकेली या शायद ज्यादा अकेली, जितनी सौम्या के आने से पहले थी।''[45]

'बाबुल का द्वार' शीर्षक कहानी सात लड़कियों और एक बूढ़ी माँ की कहानी है। कहानी में बूढ़ी माँ किसी तरह अपनी लड़कियों का भरण-पोषण करती है। इस कहानी के माध्यम से कहानीकार नसरीन बानो ने मुस्लिम समाज में व्याप्त शादी की समस्या, आर्थिक तंगी, वृद्ध औरत की व्यथा आदि का यथार्थ चित्रण किया है। वृद्ध माँ अपनी ज़िन्दगी से तंग आकर कहती है- ''कुछ भी हो। मैं नहीं भेज पाऊँगी। पहली ईद पर सब शौक पूरे कर दिए अब मुझसे नहीं हो सकेगा, तुम्हारा ब्याह करके मैं बिक गयी। अब तक कर्ज नहीं उतरा।''[46] कहानी में आर्थिक तंगी के कारण एक लड़की घर से भाग जाती है- ''कर्तव्यों ने बंदी बना रखा था, वह बेटियों से याचना करती कि वे उसकी इज्जत से न खेलें। बेटी मन ही मुस्कुरा उठी। इस विकट अवसर पर एक आश्चर्यजनक विचार मन में तैर गया और माँ का असीम आदर क्षण भर में उस विचार से उतर गया। उसने तुरंत ही एक फैसला कर डाला और सामने वाले लड़के के साथ निकल पड़ी।''[47]

आम तौर पर यह माना जाता है कि 'नारीवाद' कुछ बातों को छोड़कर कहीं न कहीं पुरुषों के खिलाफ़ है। लेकिन सच्चाई यह है कि 'नारीवाद' एक विचारधारा है, जो समाज में नारी को उसकी सही जगह पर स्थापित करने का पहल करता है। मृणाल पाण्डेय के शब्दों में- "नारीवाद कतई स्त्रियों को वृहत्तर समाज से अलग-थलग रखकर देखने और हर क्षेत्र में पुरुषों के खिलाफ़ उन्हें प्रोत्साहित करने का दर्शन नहीं। यह तो एक समग्र दृष्टिकोण है, जो संवेदनशील नागरिकों में पहले शोषित और प्रवंचित स्त्रियों की स्थिति के प्रति सहानुभूति

और मानवीय दृष्टिकोण विकसित कर के उसके उजास में उन्हें अपने पूरे समाज के शोषित और प्रवंचित तबकों को समझने की क्षमता देता है। साथ ही उनके प्रति एक तरह की सदयता तथा कर्मठ दायित्वबोध भी जगाता है।"[48]

पुरुष समाज ने बहुत हद तक स्त्री की स्वतंत्रता को कुचला है। स्त्री की बदहाल स्थिति के लिए कहीं न कहीं पुरुष समाज भी ज़िम्मेवार है, "वस्तुतः इस सारे साहित्यिक और सांस्कृतिक गरिमामय शब्दजाल से आदमी ने औरत की जिस एक चीज को मारा, कुचला या पालतू बनाया है, वह है उसकी स्वतंत्रता। आदमी हमेशा से नारी की स्वतंत्र सत्ता से डरता रहा है; और उसे ही उसने बाकायदा अपने आक्रमण का केन्द्र बनाया है। अपनी अखंडता और सम्पूर्णता में नारी दुर्जेय और अजेय है। वहाँ वह ऐसी शक्ति है जो स्वतंत्र और स्वच्छंद है, बनैली और स्वैरिणी-इसलिए आदमी ने उसे ही तोड़ा है। तोड़कर ही किसी को कमज़ोर या पालतू बनाया जा सकता है।"[49]

स्त्री समाज की एक धुरी होती है। समाज में स्त्री अपने को स्थापित करने के लिए पूरा प्रयत्न करती रहती है। राजेंद्र यादव के शब्दों में -"नारी और शूद्र की नियति चूँकि एक है इसलिए उससे पैदा होने वाला मनोविज्ञान भी लगभग समान है -सवर्णों और पुरुषों की दुनिया में अपने को अधिक से अधिक नकारकर उनके जैसा होने का मानसिक तनाव...'आत्मा को मारने' का घिसा-पिटा मुहावरा न भी इस्तेमाल करूँ तो भी यह सही है कि अपने को स्थगित करके ही नारी और शूद्र समाज-व्यवस्था में सुरक्षा या सत्ता में हिस्सा पा सकते हैं।"[50]

मुस्लिम समुदाय में स्त्रियों के शोषण का कारण उनका शिक्षित न होना भी है। मुस्लिम स्त्रियाँ धार्मिक पाखण्ड में पड़कर शोषण का शिकार हो जाती हैं। शमोएल अहमद की कहानी 'ऊँट' मुस्लिम समाज में धार्मिक पाखण्ड के द्वारा स्त्री शोषण कैसे होता है, इसका पूरा ब्यौरा प्रस्तुत करती है। इस कहानी में सकीना अपने पति को नशाखोरी से बचाने के लिए ताबीज का सहारा लेती है। सकीना इमाम से ताबीज बनवाने उसके

घर जाती है, तभी इमाम सकीना पर बुरी नज़र डालता है। इमाम बहला-फुसलाकर सकीना का जमकर शोषण करता है।

4.2 मुस्लिम स्त्री रचनाकारों और पुरुष रचनाकारों की रचनात्मक दृष्टि में अंतर

इक्कीसवीं सदी की मुस्लिम स्त्री रचनाकारों की रचनात्मक दृष्टि के केंद्र में स्त्री समस्या रही है, परन्तु कुछ रचनाकारों ने अन्य मुद्दों को भी उकेरा है। नासिरा शर्मा जो कि कहानी विधा के क्षेत्र में एक बड़ा नाम है, उनकी दृष्टि प्रमुख रूप से 'स्त्री' केन्द्रित रही है। उदाहरण के तौर पर 'पत्थर गली', 'सबीना के चालीस चोर', 'इब्ने मरियम', 'संगसार', 'खुदा की वापसी' आदि कहानी-संग्रहों की कहानियों को देख सकते हैं। 'पत्थर गली' कहानी की स्त्री पात्र फरीदा है, 'बंद दरवाजा' की शब्बो, 'ताबूत' की फहमीदा, 'कागजी बादाम' की गुलबानो, 'मोमजाम' की जबीबा, 'पुल-ए-सरात' की लैला, 'जहाँनुमा' की नबीला आदि स्त्री पात्र हैं।

नसरीन बानो ने भी 'धूप की छाँव' (कहानी संग्रह) और 'धरती माँ का ज़ख्म' (कहानी-संग्रह) में मुस्लिम समाज में पीड़ित स्त्री का चित्रण किया है। नीलाक्षी सिंह की चिंता का केंद्र धर्म की आड़ में हो रहे अमानवीय कार्य रहे हैं । नीला प्रसाद ने भी अपनी कहानियों का क्षेत्र मस्जिद की आड़ में हो रहे अत्याचार को बनाया है। इसी प्रकार साजिद रशीद, गीतांजली श्री आदि लेखिकाओं ने मुस्लिम समाज में व्याप्त भिन्न-भिन्न समस्याओं को अपनी रचनाओं का क्षेत्र बनाया है।

मुस्लिम पुरुष रचनाकारों की कहानियों का रचनात्मक क्षेत्र अलग-अलग रहा है, जैसे- साम्प्रदायिकता, बाबरी मस्जिद विध्वंस, हलाला निकाह, वेश्या वृत्ति, दाम्पत्य सम्बन्धों में टूटन, प्रेम विवाह की समस्या, तलाक, जिहाद का सच, मस्जिद के इमाम की हक़ीकत, आतंकवाद की समस्या आदि।

मुस्लिम ग्रामीण समाज में कई तरह की समस्याएँ पैदा हो गई हैं जिसका खुलासा अब्दुल बिस्मिल्लाह खुलकर करते हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानियों का रचनात्मक क्षेत्र प्रमुख रूप से मुस्लिम ग्रामीण समाज

है। असगर वजाहत ने अपनी व्यंग्य शैली के माध्यम से मुस्लिम समाज में व्याप्त गंदी राजनीति पर कड़ा प्रहार किया है। मो. आरिफ़ ने अपनी कहानियों का क्षेत्र मुस्लिम पारिवारिक समस्या को बनाया है। अनवर सुहैल का रचनात्मक क्षेत्र प्रमुख रूप से साम्प्रदायिकता है। शमोएल अहमद की कहानियों का रचनात्मक क्षेत्र - स्त्री वेश्या वृत्ति और इंटरनेट के माध्यम से हो रहे यौन शोषण है। इसी प्रकार हबीब कैफ़ी, इक़बाल रिजवी, मेराज अहमद, मुशर्रफ आलम जौकी, गुलज़ार, मंज़ूर एहतेशाम आदि कहानीकारों का रचनात्मक क्षेत्र भिन्न-भिन्न रहा है।

उपर्युक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि मुस्लिम स्त्री रचनाकारों और पुरुष रचनाकारों की रचनात्मक दृष्टि में बहुत अंतर है। जितनी गंभीरता से स्त्री रचनाकार स्त्री सम्बन्धी मुद्दों और समस्याओं को संवेदनशील ढंग से उठाती हैं, उतनी गहराई पुरुष रचनाकारों में दुर्लभ ही है. फिर भी पुरुष रचनाकारों का रचनाफलक अपेक्षाकृत ज्यादा विस्तृत है, जिनमें सामाजिक-राजनीतिक प्रसंग ज्यादा ईमानदारी के साथ उकेरे गए हैं ।

4.3 कहानियों में स्त्री चरित्रों के वैविध्यपूर्ण सन्दर्भ और उनका वैशिष्ट्य

इक्कीसवीं सदी की पहले दशक की कहानियों में स्त्री चरित्र के वैविध्यपूर्ण सन्दर्भ कुछ कहानीकारों में व्याप्त हैं। 'ऊँट' शमोएल अहमद की चर्चित कहानी है। 'ऊँट' कहानी में संयुक्त परिवार में पिसती औरत की व्यथा को व्यंजित किया गया है। कहानी का एक प्रसंग है- ''कलमुँही! तेरे हरामी के लिए मैं दूध दूँ? भूख से बिलखता हुआ मासूम बच्चा! माँ शेरनी हो गयी। एक झटके से कलाई छुड़ाई। 'जहन्नमी बुढ़िया ...?' 'खामोश! जबान लड़ाती है' बेगम रहमत अली ने झोंटा पकड़ा। सकीना ने भी झोंटा पकड़ा ... 'अरे ..... अरे ..... !' रहमत अली दौड़कर आए।''[51] कभी-कभी मुस्लिम समाज में स्त्री शोषण के लिए स्त्री खुद जिम्मेदार होती है। 'ऊँट' कहानी का एक प्रसंग है- ''सकीना अपनी नाक पर उंगली रखती हुई पहले मुस्कराई फिर एक ज़रा कमर लचकाती हुई बोली, 'दो-दो आदमी के रहते हुए मेरी नाक में नथ नहीं है' 'दो-दो आदमी ...?

मौलाना मानो बिछ गए ....? एक आदमी मैं हूँ....''[52] कहानी में सकीना मौलाना को रोज घर बुलाती है और चोर दरवाजे से बाहर भगा देती है। ''दूसरी रात सकीना ने उनको चोर रास्ते से अंदर बुलाया। घर में सन्नाटा था। बेगम रहमत अली पड़ोस में सोने चली गई थीं। कमरे में अंधेरा था। ओसारे पर रोशनी थी।''[53] 'ऊँट' कहानी पर बात करने के बाद यह कहा जा सकता है कि शमोएल अहमद ने इस कहानी के माध्यम से मुस्लिम समाज में व्याप्त इमाम का चारित्रिक पतन, फूहड़ स्त्री, आर्थिक तंगी, संयुक्त परिवार की दयनीय स्थिति आदि का सूक्ष्म ढंग से अंकन किया है।

'मिश्री की डली' कहानी में पति-पत्नी के बीच तीसरे व्यक्ति के मौजूदगी से दंपत्ति के बीच टूटन का चित्रण किया गया है। इस कहानी में मुस्लिम समाज में स्त्री के चारित्रिक पतन का अंकन भी किया गया है। कहानी का एक प्रसंग है- ''उस्मान को हैरत हुई थी। ये किताब घर में नहीं थी ... ! राशदा के पास कहाँ से आयी ... गोया अलताफ़ उसकी अनुपस्थिति में आता है और राशदा से बातें करता है ...? उस्मान से रहा नहीं गया, उसने राशदा से पूछा। ''ये किताब किसकी है ....?'' ''अलताफ़ साहब भूलकर चले गए ....'' ''भूलकर चले गए?'' उस्मान के माथे पर बल पड़ गए।''[54]

भारत में मुस्लिम महिलाओं का साक्षरता दर लगभग 16 प्रतिशत है। पर्सनल-लॉ के कारण भी मुस्लिम शिक्षण संस्थाओं में सरकार का हस्तक्षेप न के बराबर होता है। आम तौर पर मुस्लिम समाज में लड़कियों को 10 वर्ष की अवस्था तक ही तालीम दी जाती है, उसके आगे की शिक्षा कुछ ही लड़कियाँ ले पाती हैं। देखा जाए तो अधिकांश लड़कियाँ रूढ़ियों के चलते घरेलू नौकर के रूप में कार्य करने लगती हैं और उनकी आगे की पढ़ाई अवरूद्ध हो जाती है। मुस्लिम समाज में स्त्री शिक्षा के यथार्थ को केंद्र बनाकर ऋषिकेश सुलभ ने 'खुला' शीर्षक से कहानी लिखी है। इस कहानी में लुबना जो मदरसे के बाद शहर में जाकर आगे की पढ़ाई करना चाहती है, परंतु नहीं जा पाती कारण घर के लोग जाने नहीं देते हैं। कहानी में विवाह की समस्या को भी उजागर किया गया है। लुबना का विवाह ऐसे व्यक्ति से कर दिया जाता है जो निकाह के तुरंत बाद विदेश चला जाता है। और चार साल बाद घर लौटता है। कहानी के अंत में लुबना खुला माँगती है, लेकिन घर वाले इंकार करते हैं।

लुबना संघर्ष करती है अंत में उसको 'खुला' मिल जाता है। कहानी का प्रसंग है- ''खुला, लुबना बोली। औरतें एक साथ चीख़ उठीं - हाय अल्ला! खुला? हाँ, खुला, लुबना ने अपनी बात दुहरायी।''[55]

भारत में विकलांग स्त्रियों की स्थिति बहुत ही ख़राब है, चाहे किसी भी समुदाय की स्त्री हो। स्त्री शारीरिक और भावनात्मक रूप से कमजोर होने के कारण कुछ अपवादों को छोड़ दें तो पितृसत्तात्मक समाज में शोषित रही है। पितृसत्तात्मक समाज में शोषण से मुक्ति के लिए कई स्त्रीवादी आंदोलन भी चले, जिनमें सवर्ण, दलित, आदिवासी आदि अनेक जाति, धर्म, सम्प्रदाय की स्त्रियों के सवाल को बड़े पैमाने पर उठाया गया। लेकिन जब स्त्री दृष्टिबाधित हो तो समस्या और भी जटिल हो जाती है। जिन दृष्टिबाधित स्त्रियों की आर्थिक स्थिति अच्छी रही उन्होंने अपने जीवन को आगे बढ़ाया लेकिन जिनकी आर्थिक स्थिति ख़राब रही वह जीवन में शोषित हुईं -"दृष्टिबाधित स्त्रियों की शिक्षा में भागीदारी बहुत कम है। जिसके कारण नौकरियों में भी भागीदारी अधिक नहीं हो सकी है। जागरुकता के अभाव तथा पारिवारिक असहयोग और धन की कमी आदि कारणों से अधिकांश लड़कियाँ शिक्षा से वंचित रह जाती हैं। धन समाज का आधार बिन्दु है। दृष्टिबाधित स्त्रियों की सामाजिक, पारिवारिक और आर्थिक स्थिति में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। संपन्न घरों में उत्पन्न दृष्टिबाधित स्त्रियों की स्थिति सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक सभी स्तरों पर मजबूत दिखाई देती है।"[56]

विकलांग और दृष्टिबाधित स्त्रियों की शादी बहुत ही कठिनाई से हो पाती है। परिवार इनको स्वीकारने में आनाकानी भी करता है, विचारक ललिता बघेल के शब्दों में -"भारतीय समाज में दृष्टिबाधित स्त्री को किसी सामान्य पुरुष के लिए तभी विवाह के योग्य समझा जा सकता है। जब वह नौकरी में किसी उच्च पद पर आसीन हो या किसी अन्य कारण से आर्थिक रूप से संपन्न हो। ऐसी स्थिति में भी ऐसे ही परिवार इन लड़कियों को अपनाने के लिए तैयार हो पाते हैं जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी न हो और लड़की की तुलना में लड़का भी बहुत कम पढ़ा-लिखा हो बिल्कुल अनपढ़ या बेरोजगार हो। ऐसे विवाह भी पैसे के नाम पर समझौते के अतिरिक्त बहुत ज्यादा सफल दिखाई नहीं देते।"[57] एक बात और देखने को मिलती है कि दृष्टिबाधित स्त्रियाँ साहित्य के क्षेत्र में बहुत ही कम दिखाई पड़ती है -"दृष्टिबाधित स्त्रियों की साहित्य में भागीदारी न के बराबर है।

उनके जीवन में आने वाली कठिनाईयों को लेकर एकाध शोध पत्र तो अवश्य सुनने में आए हैं। किन्तु साहित्य में उनकी व्यथा-कथा, शोषण और संघर्ष कहीं नज़र नहीं आता है। वे अपने जीवन संघर्ष के चक्र में इस तरह उलझी हुई हैं कि उन्हें अपनी भाषा और अभिव्यक्ति का ख्याल ही नहीं आता। न ही अन्य साहित्यकार उनकी दशा की ओर मुखातिब हुए हैं। साहित्य में भी वे उपेक्षित ही नज़र आ रही हैं।"[58]

अंतरजातीय विवाह की समस्या पर भी कई कहानियाँ लिखी गयी हैं -'बेलपत्र' कहानी में दम्पति के बीच मज़हब के कारण तनाव की स्थिति को उकेरा गया है। कहानी में दो विपरीत धर्म वाले लड़का-लड़की शादी करते हैं। परन्तु कुछ दिन व्यतीत होने के बाद शहर में धर्म के नाम पर हो रहे दंगे के कारण दोनों में टकराहट उत्पन्न हो जाती है। कहानी इस बात की ओर संकेत करती है कि मज़हब के नाम पर हो रहे खून-खराबे से समाज का कोई हिस्सा अछूता नहीं है। कहीं न कहीं इसका प्रभाव प्रत्येक क्षेत्र पर पड़ता है।

निष्कर्ष:

उपर्युक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी के पहले दशक की मुस्लिम जीवन के स्त्री पक्ष पर केन्द्रित कहानियों के वैशिष्ट्य में विविधता है। इस दशक की कहानियों में हमें मुस्लिम समाज में शोषित स्त्री की पूरी झलक दिखाई पड़ती है। इस दशक की कहानियों में अशिक्षित स्त्री, निर्धनता से त्रस्त स्त्री, फूहड़ स्त्री, बहु-पत्नीत्व में पीसती स्त्री, बन्ध्या स्त्री की पीड़ा, वेश्या वृत्ति करने वाली स्त्री, कामकाजी स्त्री, वृद्धा स्त्री, पितृसत्तात्मक समाज का शिकार स्त्री, संयुक्त परिवार एवं एकल परिवार में घुटती स्त्री, बांझ स्त्री की व्यथा, हलाला स्त्री की समस्या, श्रमिक स्त्री की समस्या आदि का चित्रण किया गया है।

मुस्लिम समाज के स्त्री पक्ष पर केन्द्रित कहानियों का विश्लेषण करने पर हमें मुस्लिम समाज में आज स्त्रियों की दशा क्या है, इसका पता मिलता है। आभिजात्य वर्ग की स्त्रियों की बात छोड़ दें तो निम्नवर्गीय स्त्री और मध्यवर्गीय स्त्री के जीवन में इक्कीसवीं सदी बहुत सारे बदलावों के साथ उपस्थित हुई है। सरकारी प्रयास

और गैर सरकारी संगठनों ने मध्यवर्गीय स्त्री के जीवन में रोजगार के नए अवसर पैदा किये हैं । लेकिन निम्नवर्गीय स्त्रियाँ अब भी हाशिये का जीवन ही जीती हैं। सफाई, अशिक्षा, निर्धनता और धर्म के प्रति रुढ़िवादी सोच -ये वे कारण हैं जिनसे उनका जीवन स्तर दयनीय ही बना हुआ है।

संदर्भ

1. सं. राजकिशोर-भारतीय मुसलमान मिथक और यथार्थ, पृ. 105

2. वही, पृ. 106

3. वही, पृ. 106

4. सं. रमणिका गुप्ता-युद्धरत आम आदमी, पिछड़ा वर्ग विशेषांक, 2015, पृ. 107

5. सं. राजकिशोर-भारतीय मुसलमान मिथक और यथार्थ, पृ. 107

6. सं. राजकिशोर-भारतीय मुसलमान मिथक और यथार्थ, पृ. 107

7. सं. राजकिशोर-भारतीय मुसलमान मिथक और यथार्थ, पृ. 110

8. सं. राजकिशोर-भारतीय मुसलमान मिथक और यथार्थ, पृ. 110

9. सं. हरिनारायण-कथादेश, अंक - 1, मार्च 2000, पृ. 34

10. वही, पृ. 36

11. सं. राजेन्द्र यादव-हंस, अंक-12, वर्ष-14, जुलाई, 2000, पृ. 25

12. मंज़ूर एहतेशाम-तमाशा तथा अन्य कहानियाँ, पृ. 29

13. सं. राजेन्द्र यादव-हंस, अंक-3, दिसंबर 2002, पृ. 52

14. सं. राजेन्द्र यादव-हंस, अंक-5, सितंबर 2003, पृ. 64

15. वही, पृ. 65

16. सं. राजेन्द्र यादव-कथा जगत की बाग़ी मुस्लिम औरतें, पृ. 10

17. नासिरा शर्मा-राष्ट्र और मुसलमान, पृ. 93

18.सं. हरिनारायण-कथादेश, अंक-5, जुलाई 2004, पृ. 76

19. वही, पृ. 79

20. सं. राजेन्द्र यादव-कथा जग़त की बागी मुस्लिम औरतें, पृ. 16

21. सं. प्रकाश नारायण नाटाणी एवं प्रज्ञा शर्मा-भारत में सामाजिक समस्याएँ, पृ. 227

22. वही, पृ. 227

23. वही, पृ. 227

24. वही, पृ. 231

25. वही, पृ. 233

26. वही, पृ. 237

27. सं. फरहत परवीन-आजकल, अंक-11, मार्च, 2016, पृ. 34

28. सं. रवीन्द्र कालिया-वागर्थ, मई 2004, पृ. 19

29. वही, पृ. 19

30. वही, पृ. 21

31. नासिरा शर्मा-राष्ट्र और मुसलमान, पृ. 92

32. सं. रवीन्द्र कालिया-वागर्थ, मई 2004, पृ. 77

33. राजेन्द्र यादव-आदमी की निगाह में औरत, पृ. 36

34. वही, पृ. 36

35. अनवर सुहैल-ग्यारह सितम्बर के बाद, पृ. 79

36. वही, पृ. 81

37. वही, पृ. 46

38. वही, पृ. 48

39. सं. फरहत परवीन-आजकल, अंक - 11, पृ. 35

40. वही, पृ. 37

41. राजेन्द्र यादव-आदमी की निगाह में औरत, पृ. 85

42. प्रभा खेतान-उपनिवेश में स्त्री, पृ. 47

43. सं. हरिनारायण-कथादेश, अंक - 9, नवम्बर 2006, पृ. 52

44. सं. राजेन्द्र यादव-हंस, अंक - 11, जून 2008, पृ. 66

45. सं. राजेन्द्र यादव-हंस, अंक - 5, दिसम्बर 2009, पृ. 34

46. नसरीन बानो-छाँव की धूप, पृ. 61

47. वही, पृ. 63

48. मृणाल पाण्डेय-परिधि पर स्त्री, पृ. 47

49. राजेन्द्र यादव-आदमी की निगाह में औरत, पृ. 15

50. वही,पृ. 67

51. शमोएल अहमद-इक्कीस श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 40

52. वही, पृ. 44

53. वही, पृ. 46

54. वही, पृ. 103

55. सं. राजेन्द्र यादव -हंस, जनवरी 2001, पृ. 27

56. सं. रमणिका गुप्ता-युद्धरत आम आदमी, वर्ष 5, अंक 43,मार्च-2017, पृ. 97

57. वही, पृ. 97

58. वही, पृ. 98

उपसंहार

मध्यकालीन भारत में मुस्लिम शासन ने भारतीय समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था। जिसके फलस्वरूप एक नई संस्कृति से जुड़ाव हुआ। इसके ठीक पहले देखें तो कई संस्कृतियों का भारतीय संस्कृति से जुड़ाव या कहें लगाव हो चुका था। भारतीय समाज के मूल में निहित लचीलापन, सहिष्णुता और बौद्धिक स्वतंत्रता ने सदियों से चली आ रही सांस्कृतिक विरासत को बनाए रखने में अपना योगदान दिया। इसी कड़ी में मुस्लिम संस्कृति भी आती है। भारतीय मुस्लिम समुदाय की एक अलग अपनी संस्कृति, रीति-रिवाज, बोली-भाषा, खान-पान आदि रही है।

मध्यकाल से लेकर आज तक मुस्लिम समुदाय की स्थितियों पर बात करें तो हम पाते हैं कि यह समुदाय अन्य समुदायों की भाँति आंतरिक कमजोरियों और अन्तर्विरोधों से ग्रस्त रहा है। मुस्लिम समुदाय में जाति-व्यवस्था, ऊँच-नीच की भावना, शिया-सुन्नी भेदभाव, नस्लवाद, वंशवाद, धार्मिक कट्टरता आदि ऐसे कारण मौजूद हैं, जिसकी वजह से इस समुदाय की स्थिति अच्छी दिखाई नहीं पड़ती है। एक बात और भी देखने को मिलती है कि भारतीय मुस्लिम समाज अशरफ (उच्चवर्ग), अजलाफ़ (मध्यवर्ग)और अरजाल(निम्नवर्ग) में बंटा हुआ है और इनके बीच बहुत बड़ी खाईं है। मध्यकाल में अशरफ ही सभी सुख-सुविधाओं के भोक्ता थे। वे ही सभी कार्यों में लिप्त थे, जैसे-शासन, सत्ता आदि। शेष मुसलमान किसी तरह अपना पेट ही पाल पाते थे या यह कह सकते हैं कि अशरफ(उच्चवर्ग) की कृपा पर जीवित रहना आम मुसलमानों की बेबसी थी। निचले तबके के मुसलमान जिसे आज 'पसमांदा मुसलामन' के नाम से जाना जाता है, वह किसी प्रकार से अपनी जीविका का निर्वाह करते थे।

भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद मुस्लिम शासक वर्ग भी गुलामी की चपेट में आया। अभिजात वर्गीय मुसलमान ब्रिटिश शासन के साथ मिलकर अपना हित साधने लगे। ठीक इसी समय सांप्रदायिकता का जन्म होता है। ब्रिटिश शासक वर्ग भारतवासियों को गुलाम बनाने के लिए मुसलमानों और हिन्दुओं को धर्म के नाम पर लड़ाने लगे, जिससे दोनों समुदायों में दूरियाँ बढ़ीं, जिसकी अंतिम परिणति

भारत-विभाजन के रूप में हुई। विभाजन के बाद अधिकांश अभिजात वर्गीय मुसलमान पाकिस्तान चले गए और भारत में रह गए निम्नवर्गीय मुसलमान।

भारतीय मुसलमान की एक प्रमुख समस्या है-सांप्रदायिकता। मुख्यतः साम्प्रदायिकता में अधिकांशतः मुस्लिम ही मारे जाते हैं। एक बात और देखने को मिलती है कि स्वतन्त्रता के बाद जो भी मुसलमान यहाँ रह गए उनमें कुछ मुसलमान भारत की राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने में बहुत साथ दिए। आज स्थिति यह है कि राजनीतिक दल तुष्टीकरण के नाम पर मुसलमानों को संतुष्ट कर उसके विकास को रोकते हैं। भारतीय मुसलमानों की स्थिति पर दृष्टिपात करने के बाद जो बात सामने आती है वह है- गरीबी, अशिक्षा, अन्धविश्वास, दकियानूसी खयाल, परम्परा, भटकाव, अंध-धर्मान्धता आदि जिसके कारण इनकी स्थिति आज भी नाजूक बनी हुई है और यह वर्ग हाशिये पर है।

भारतीय मुसलमानों में व्याप्त सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्या को निम्नलिखित कहानीकारों ने अपने कहानियों में पिरोया है - अब्दुल बिस्मिल्लाह, असगर वजाहत, इंतिजार हुसैन, अनवर सुहैल, शमोएल अहमद, नासिरा शर्मा, मंजूर एहतेशाम, मो.आरिफ, नीलाक्षी सिंह, कुर्रतुल ऐन हैदर, गीतांजलि श्री, इस्मत चुगताई, नसरीन बानो, बदीउज्ज्मा, मेहरुनिस्सा परवेज, जाकिर अली 'रजनीश', फहीम आजमी, मुनीर अहमद, रशीद जहाँ, शानी, सज्जाद जहीर, हयातुल्ला अंसारी, हुस्न तबस्सुम निहाँ, एम.हनीफ मदार, जेब अख्तर, जकिया जुबैरी, निजाम शाह, शकील सिद्दकी, हसन जमाल, फहमीदा रियाज, जाबिर हुसेन, इकबाल रिजवी, अहमद निस्सार, शाजी जमां, शमीम उद्दीन अहमद, गुलजार, फजल इमाम मल्लिक, अलिफा रियात, वाहिद काजमी, महमूद अय्यूबी, हबीब कैफ़ी, शाहिद अख्तर, तबस्सुम फातिमा, नूर जहीर, अहमद निसार, जेबा रशीद, नीला प्रसाद, अकील कैस, शकील, ग़जाल जैगम, एखलाक अहमदजई, सलामबिन रज्ज़ाक, सआदत हसन मंटो, राही मासूम रजा, इब्राहीम शरीफ, लतीफ़ घोंघी, आलमशाह खान, रंजन जैदी, महरूदीन खाँ, विजय, रणेंद्र, हरिओम, अनुज, हृषिकेश सुलभ, निज़ाम शाह, जहूर बख्श, आलम शाह खान, मोहम्मद ताहिर, कमर मेवाड़ी, शीरान भारती, मोहम्मद इब्राहीम, ज़हरा राय, मुग़ल महमूद, अयूब प्रेमी, महरूद्दीन खां,

अशफाक अहमद, अली सिद्दीकी, एस.एम.शाहनवाज, मशकूर जावेद, बानो सरताज एवं आयशा सिद्दीकी इत्यादि।

इक्कीसवीं सदी के पहले दशक के कहानीकारों ने पूरी गंभीरता के साथ उन समस्याओं को छुआ है जो इस समुदाय को जकड़ा हुआ है। किसान, मजदूर, वेश्या, शहरी आदमी, ग्रामीण आदमी, शहर की समस्याएँ, ग्रामीण जीवन की समस्याएँ, पर्यावरण संकट, बाढ़-सूखा, महिला शोषण की समस्या आदि मुद्दे लम्बे समय तक कहानियों के कथ्य बनते रहे हैं। आज स्थिति बदली हुई है। आज साम्प्रदायिकता, बेरोजगारी, पानी की समस्या, असंतोष, कुंठा, असुरक्षा बोध, पिछड़ापन, आंतरिक संरचना में व्याप्त अन्तर्विरोध और कमजोरियाँ, भूमंडलीकरण, उपभोक्तावाद, बाज़ारवाद, अपसंस्कृति आदि को कथ्य बनाकर कहानियाँ लिखी जा रही हैं।

अनवर सुहैल की 'पीरू हज्जाम उर्फ़ हज़रत जी', 'नसीबन', 'बुढ़वा मंगल', शमोएल अहमद की 'ऊँट' 'मिश्री की डली', नासिरा शर्मा की 'कागज़ी बादाम', मंजूर एहतेशाम की 'घेरा', नीलाक्षी सिंह की 'परिंदे का इंतजार-सा कुछ', नसरीन बानो की 'नजरबंद', हसन जमाल की 'मॉमु', फहमीदा रियाज़ की 'पर्सनल एकाउंट', शाजी जमां की 'अलविदा बीसवीं सदी', अलीफा रियात की 'मीनार के परिदृश्य में', नूर जहीर की 'ट्रांजिट की ज़िन्दगी', नीला प्रसाद की 'एक मस्जिद समानांतर', विजय की 'शेर खां', हरिओम की 'मियाँ', ह्रषीकेश सुलभ की 'खुला', जाबिर हुसैन की 'आरसी', अकिल कैस की 'उजबक', अब्दुल बिस्मिल्लाह की 'पेड़ एवं असग़र वजाहत की 'मैं हिन्दू हूँ', आदि अन्य कहानियों को पढ़ने से जो मुस्लिम समाज की दो तरफा जानकारी मिलती है वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। इन कहानीकारों की दृष्टि उन बेबस ज़िन्दगी पर गई है जो आज भी हाशिये का जीवन यापन करते हैं। सरकार द्वारा शुरू की गई योजनाएँ इन तक न पहुँच पाने के कारण इनकी हालत वैसी-की वैसी ही बनी हुई है।

मुस्लिम समाज में व्याप्त गरीबी, अशिक्षा, जाति-प्रथा, पहचान का संकट, शिया-सुन्नी संघर्ष, अंधविश्वास, सांस्कृतिक अस्मिता का प्रश्न, असुरक्षा की भावना, मध्यवर्ग का अभाव, राष्ट्रीयता का प्रश्न, मुस्लिम स्त्रियों की पीड़ा, बहुसंख्यकों की शंका भरी निगाहें आदि ऐसे कई मुद्दे हैं जिनको इस दशक के

कहानीकारों ने सूक्ष्म ढंग से चित्रित किया है। अनवर सुहैल ने जहाँ मुस्लिम समाज में दंगे की स्थिति पर कलम चलाई है तो वही शमोएल अहमद ने मुस्लिम स्त्रियों की पीड़ा को अपनी कहानियों में पिरोया है। इस दशक के कहानीकारों ने मुस्लिम जीवन के किसी एक पक्ष को ही कथ्य न बनाकर उसके सारे पक्षों को छुने का प्रयास किया है। नासिरा शर्मा, मंजूर एहतेशाम, नीलाक्षी सिंह, नसरीन बानो, अब्दुल बिस्मिल्लाह, असग़र वजाहत, रशीद जहाँ, हसन जमाल, नीला प्रसाद आदि ऐसे कहानीकार हैं जिन्होंने मुस्लिम जीवन के लगभग सभी पक्षों को छुआ है।

भारत में मुस्लिम समुदाय की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक स्थिति के सुधार के लिए 9 मार्च 2005 को सच्चर समिति का गठन किया गया। 17 नवम्बर 2006 को रिपोर्ट आई, जिसमें मोटे तौर पर निम्नलिखित रिपोर्ट सरकार के सामने रखे गए- बहुसंख्यक ही नहीं अल्पसंख्यकों के बीच शिक्षा और निजी रोजगार और गृह निर्माण का समान अवसर होना चाहिए। अल्पसंख्यकों के लिए छात्रावास की व्यवस्था, विद्यालय में मुस्लिम शिक्षकों की कमी है, उर्दू एक वैकल्पिक विषय के रूप में विद्यालयों में हो, मदरसों की शिक्षा में सुधार किया जाए। बैंकों द्वारा कर्ज का सही विवरण हो, पानी, सड़क, विद्यालय की पूरी व्यवस्था हो, जल विभाग में महिला की भागीदारी बढ़ाई जाए, जबरदस्ती कब्जों पर रोक होनी चाहिए आदि। कुल मिलाकर 76 अनुशंसाएँ मंत्रिमंडल के सामने रखी गईं, जिनमें से 72 अनुशंसाएँ मानी गईं, 3 नहीं मानी गईं और एक अस्वीकार कर दी गई। सच्चर समिति रिपोर्ट में मुस्लिम समुदाय की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक से सम्बन्धित जितनी भी समस्याओं को उजागर किया गया था यथार्थ रूप में देखा जाए तो कुछ ज्यादा सुधार नहीं हुआ है। सरकार द्वारा जो भी इस समुदाय के सुधार के लिए योजनाएँ चलाई गईं वह सही तरीके से इन तक नहीं पहुँच पाईं, जिसके कारण इस समुदाय का बहुत बड़ा हिस्सा आज भी हाशिये का जीवन यापन करता है।

इस शोध-प्रबंध में हिंदी कहानी में ख़ास तौर पर इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में मुस्लिम जीवन की स्थिति पर विचार किया गया है। मुस्लिम समुदाय का बहुत बड़ा हिस्सा आज भी हाशिये पर है। उनको जो हक़ मिलना चाहिए वह नहीं मिला। इस दशक के कहानीकारों की दृष्टि घूम-फिरकर साम्प्रदायिकता, नारी शोषण,

मुस्लिम समाज में शिक्षा का अभाव और सरकार द्वारा तुष्टीकरण ये ऐसे मुद्दे हैं जिसको लगभग सभी कहानीकारों ने छुआ है। इस दशक के कहानीकारों ने अपनी कहानियों में किसी एक ही मुद्दे पर बात न करके मुस्लिम समाज के लगभग सभी पक्षों को समेटने का प्रयास किया है। उदाहरण के लिए अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानी-संग्रह 'रफ़-रफ़ मेल' को ही लें, जो की सन् 2000 में प्रकाशित हुई है। इस कहानी-संग्रह में कुल पन्द्रह कहानियाँ संकलित हैं। इस संग्रह की लगभग सभी कहानियों में कई-कई मुद्दे समाहित हैं। 'जीना तो पड़ेगा' शीर्षक कहानी में साम्प्रदायिकता, कुरान-शरीफ़, मुस्लिम समाज में विवाह की स्थिति, अशिक्षा आदि मुद्दों को समेटा गया है, तो वहीं 'पेड़' शीर्षक कहानी में मुस्लिम पर्व, गाँव में गरीब मुस्लिमों की स्थिति, अंधविश्वास, रीति-रिवाज आदि को कथ्य बनाया गया है। इसी तरह अन्य कहानियों में भी कई-कई मुद्दों को कहानीकार ने समाहित किया है।

इस दशक के कहानीकारों में ऐसे कई कहानीकार हैं जिन्होंने अपनी कहानियों में सिर्फ़ मुस्लिम समुदाय के हाशिये पर रह रहे लोगों को ही जगह दी है। नासिरा शर्मा, अब्दुल बिस्मिल्लाह, नसरीन बानो, अनवर सुहैल, शमोएल अहमद आदि ऐसे कहानीकार हैं जिन्होंने अपनी कहानियों में हाशिये की जिंदगी यापन कर रहे लोगों को समेटा है। आज मुस्लिम समुदाय का 'पसमांदा समाज' सामाजिक और आर्थिक स्थिति की दृष्टि से पूरी तरह कमज़ोर है। इस समाज में अशिक्षा, बेरोजगारी, पानी की कमी आदि ऐसी बहुत सी समस्याएँ हैं जिनकी वजह से यह समाज बदहाली का जीवन जीता है।

मुस्लिम स्त्रियों की दयनीय स्थिति पर भी इस दशक के कहानीकारों ने कलम चलाई है। नासिरा शर्मा, शमोएल अहमद, नसरीन बानो, असगर वजाहत, साजिद रशीद, गज़ाल ज़ैगम, नीलाक्षी सिंह, नीला प्रसाद, गीतांजलि श्री आदि ऐसे कहानीकार हैं जिन्होंने मुस्लिम समाज में हाशिये की जिंदगी जी रही स्त्रियों पर नज़र दौड़ाई है। आज भारत में ऐसा कोई समुदाय अछूता नहीं है जिसमें स्त्रियों को शोषित होना न पड़ता होगा। यौन शोषण, विवाह-विच्छेद, घरेलू हिंसा आदि ऐसी बहुत सी समस्याएँ हैं जिनसे स्त्रियों को जूझना पड़ता है।

नसरीन बानो की कई कहानियों में मुस्लिम समाज में तलाक की समस्या को उद्घाटित किया गया है। 'बाबुल का द्वार' शीर्षक कहानी इसी मुद्दे को केंद्र बनाकर लिखी गई है।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि इस दशक की कहानियों में मुस्लिम समाज में व्याप्त व्यक्ति के जीवन की सच्चाई को चित्रित करने का सफल प्रयास हुआ है। आज भारतीय मुस्लिम समाज का बहुत बड़ा तबका 'अरजाल' जिसे 'पसमांदा समाज' भी कहते हैं, हाशिये पर खड़ा है। उसकी आर्थिक, सामाजिक स्थिति आज भी खराब है। शिल्प, भाषा, कथ्य और विषय वस्तु की दृष्टि से इस दशक की कहानियाँ अद्वितीय हैं।

आधार ग्रन्थ सूची

1. अनवर सुहैल-ग्यारह सितम्बर के बाद, दीपा प्रकाशन, गाजियाबाद, उत्तर-प्रदेश, प्रथम संस्करण-2006

2. अनवर सुहैल-चहल्लुम, समय प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2009

3. अब्दुल बिस्मिल्लाह-रफ़-रफ़ मेल, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2000

4. असगर वजाहत-मैं हिन्दू हूँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,प्रथम संस्करण-2006

5. गीतांजलि श्री-प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2010

6. नसरीन बानो-छाँव की धूप, समय प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2009

7. नसरीन बानो-धरती माँ का ज़ख्म, समय प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2009

8. नासिरा शर्मा-इंसानी नस्ल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2001

9. नासिरा शर्मा-दूसरा ताजमहल, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2002

10. नीलाक्षी सिंह-परिंदे के इंतजार-सा कुछ, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2005

11. मंजूर एहतेशाम-तमाशा तथा अन्य कहानियाँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2001

12. मेराज अहमद-अजान की आवाज़ तथा अन्य कहानियाँ, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2005

13. मो. आरिफ़ -फूलों का बाड़ा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2008

14. शमोएल अहमद-इक्कीस श्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पाकेट बुक्स (प्रा.) लि., नई दिल्ली,संस्करण-2009

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह-अतिथि देवो भव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 1990

2. अब्दुल बिस्मिल्लाह-जीनिया के फूल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1991

3. अब्दुल बिस्मिल्लाह-झीनी-झीनी बीनी चदरिया, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1986

4. अमरनाथ-हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2012

5. अली अनवर-मसावात की जंग, पसेमंजर:बिहार के पसमांदा मुसलमान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -2001

6. असगर अली इंजीनियर-धर्म और साम्प्रदायिकता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2012

7. इस्मत चुगताई-प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1988

8. उमाशंकर चौधरी (सं.)-हाशिये की वैचारिकी, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2008

9. एम.फीरोज अहमद-नासिरा शर्मा:एक मूल्यांकन, सामयिक बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2010

10. एम. फीरोज खान-हिंदी के मुस्लिम कथाकार:शानी, वांग्मय प्रकाशन, अलीगढ़, प्रथम संस्करण-2012

11. के.एल.शर्मा-भारतीय समाज, एन. सी. इ. आर. टी., नई दिल्ली, संस्करण-2006

12. के.एल.शर्मा-भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, संस्करण-2006

13. गोपालराय-हिंदी कहानी का इतिहास, भाग-1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2011

14. गोपालराय-हिंदी कहानी का इतिहास, भाग-2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2014

15. गोपालराय-हिंदी कहानी का इतिहास, भाग-3, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2014

16. देवेन्द्र चौबे-समकालीन कहानी का समाजशास्त्र, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली,संस्करण-2001

17. नामदेव-भारतीय मुसलमान:हिंदी उपन्यासों के आईने में, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लि.,नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2009

18. नरेंद्र मोहन-धर्म और साम्प्रदायिकता, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1996

19. नरेंद्र सिंह-दलितों के रूपांतरण की प्रक्रिया, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-1993

20.नासिरा शर्मा-पत्थर गली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2001

21. नासिरा शर्मा-राष्ट्र और मुसलमान, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2002

22. प्रभा खेतान-उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2003

23. मधुरेश-हिंदी कहानी का विकास, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-1996

24. महाश्वेता देवी और निर्मल घोष-भारत में बँधुआ मजदूर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-1999

25. मृणाल पाण्डेय-परिधि पर स्त्री, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1996

26. युगीवा थ्योंगी (अनु.) आनन्द स्वरूप वर्मा-औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्ति, शिल्पी प्रकाशन दिल्ली, संस्करण-1999

27. रघुनाथ राय-विश्व इतिहास के प्रसंग,वी.के.(इण्डिया) इंटरप्राईजेज, संस्करण-2008-2009

28. राजकिशोर (सं.)-भारतीय मुसलमान मिथक और यथार्थ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण - 2004

29. राजेन्द्र यादव-आदमी की निगाह में औरत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2001

30. राजेन्द्र यादव-कहानी स्वरूप और संवेदना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -1968

31. रामचन्द्र तिवारी-हिंदी का गद्य-साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण - 1995

32. रामविलास शर्मा-मार्क्स और पिछड़े हुए लोग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2007

33. लक्ष्मीनारायण लाल-आधुनिक हिंदी कहानी (जैनेन्द्र से नयी कहानी तक), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 1989

34. शम्स पीरजादा-मुस्लिम पर्सनल लॉ और समान सिविल कोड, मर्कजी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स, नई दिल्ली, संस्करण-2009

35. शानी-काला जल, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली-6, प्रथम संस्करण -1965

36. श्यामाचरण दूबे-मानव और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-1990

37. श्वेता उप्पल, रेखा अग्रवाल (सं.)-भारतीय समाज, एन. सी. इ. आर. टी., नई दिल्ली, संस्करण-2007

38. सिमोन द बोउवार (अनु.)प्रभा खेतान-स्त्री उपेक्षिता, हिंदी पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, संस्करण-2004

39. हरदयाल-हिन्दी कहानी : परम्परा और प्रगति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2005

सहायक ग्रन्थ सूची

1. अख्तरुल वासे-इस्लाम और मुसलमान:कुछ प्रश्न:कुछ जिज्ञासाएँ, सर्जना प्रकाशन, बीकानेर, संस्करण-2015

2. अब्दुल बिस्मिल्लाह-रैन बसेरा, वाणी प्रकाशन, संस्करण-1993

3. असगर वजाहत-डेमोक्रेसिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2013

4. असगर वजाहत-दिल्ली पहुँचना है, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1981

5. असगर वजाहत-स्विमिंग पूल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1990

6. कमलेश्वर-नई कहानी की भूमिका, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली-6, संस्करण-1996

7.कुर्रतुल ऐन हैदर-प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-1996

8. चन्द्रदेव यादव (सं.)-अब्दुल बिस्मिल्लाह का कथा-साहित्य, अनंग प्रकाशन, दिल्ली-32, प्रथम संस्करण-2005

9. धनंजय (सं.)- समकालीन कहानी दिशा और दृष्टि, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण- 1970

10. नामवर सिंह-कहानी: नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2012

11. नामवर सिंह-वाद विवाद संवाद,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1989

12. नासिरा शर्मा-इब्ने मरियम, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2010

13. नासिरा शर्मा-खुदा की वापसी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1998

14. नासिरा शर्मा-संगसार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2009

15. नासिरा शर्मा-सबीना के चालीस चोर, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1997

16. नीलाक्षी सिंह-जिनकी मुट्ठियों में सुराख़ था, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2012

17. पंकज चतुर्वेदी-क्या मुसलमान ऐसे ही होते हैं?, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2010

18.प्रकाश नारायण नाटाणी, प्रज्ञा शर्मा-भारत में सामाजिक समस्याएँ, पोइन्टर पब्लिशर्स,जयपुर (राजस्थान), प्रथम संस्करण-2000

19. प्रेमचन्द-प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, संस्करण-1972

20. बच्चन सिंह-आधुनिक हिंदी आलोचना के बीज शब्द, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-1986

21. महेंद्र राजा जैन-नामवर विचार कोश, नयी किताब, नई दिल्ली, संस्करण-2012

22. मुजफ्फ़र हुसैन-खतरे अल्पसंख्यकवाद के, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2005

23. योगेन्द्र प्रताप सिंह-हिंदी आलोचना का इतिहास और सिद्धांत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2008

24. राजेन्द्र यादव-एक दुनिया समानांतर, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली-6, संस्करण-1960

25. राजेन्द्र यादव, मुशर्रफ आलम जौंकी (सं.)- कथा जगत की बागी मुस्लिम औरतें, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2006

26. राम पुनियानी-साम्प्रदायिक राजनीति तथ्य एवं मिथक, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,संस्करण-2005

27. राम पुनियानी(सं.)-धर्म,सत्ता और हिंसा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2016

28. रामशरण जोशी-इक्कीसवीं सदी के संकट, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2003

29. रामस्वरूप चतुर्वेदी-हिंदी गद्य : विन्यास और विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-1996

30.रामस्वरूप चतुर्वेदी-हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-1986

31. विजय मोहन सिंह-आज की कहानी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1983

32. शम्सुल इस्लाम-भारत में अलगाववाद और धर्म, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2006

33. शिवकुमार मिश्र-यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2009

34. सुरेन्द्र चौधरी-हिंदी कहानी प्रक्रिया और पाठ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1995

35. सूरज पालीवाल-इक्कीसवीं सदी का पहला दशक और हिंदी कहानी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2012

36. ज्ञानचन्द शर्मा-आधुनिक हिंदी कहानी में वर्णित सामाजिक यथार्थ, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण-1996

पत्र-पत्रिकाएँ

1. ओमप्रकाश शर्मा(सं.)-वर्तमान साहित्य, अंक-2, फरवरी 2002, गाजियाबाद

2. एम. फीरोज अहमद(सं.)-वांग्मय, अक्टूबर-दिसम्बर 2015, अलीगढ़

3. प्रभाकर श्रोत्रिय(सं.)-नया ज्ञानोदय, अंक-17, जुलाई 2004, नई दिल्ली

4. प्रभाकर श्रोत्रिय(सं.)-वागर्थ, अंक-63, अगस्त 2000, कोलकाता

5. फ़रहत परवीन(सं.)-आजकल, अंक-11, मार्च 2016, नई दिल्ली

6. रमणिका गुप्ता -युद्धरत आम आदमी, पिछड़ा वर्ग विशेषांक, 2015

7. रवीन्द्र कालिया(सं.)-वागर्थ, मई 2004, कोलकाता

8. राजेन्द्र यादव(सं.)-हंस, फरवरी1992, नई दिल्ली

9. विजय कुमार देव(सं.)-अक्षरा-54, भोपाल, जुलाई-अगस्त 2001,भोपाल

10. शैलेन्द्र सागर(सं.)-कथाक्रम, अंक-11, वर्ष-3, जनवरी-मार्च 2002, लखनऊ

11. हरिनारायण(सं.)-कथादेश, अंक-9, सितम्बर 2008, दिल्ली

शब्द-कोश

1. कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय एवं मुकुन्दी लाल श्रीवास्तव(सं.)-वृहत हिंदी कोश, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी-1, प्रथम-रथयात्रा, संवत् 2009

2. मुहम्मद मुस्तफ़ा खां 'मद्दाह'(सं.)-उर्दू-हिंदी शब्दकोश, उत्तर-प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, प्रथम संस्करण-1959

3. सच्चिदानंद शुक्ल(सं.)-हिंदी शब्द कोश, युनीकार्न बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2013

4. हरिकृष्ण रावत(सं.)-उच्चतर समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन्स जयपुर एवं नई दिल्ली - 2002

इंटरनेट संदर्भ

1. https://en.wikipedia.org/wiki/islam_in_india.

2. https://hi.wikipedia.org/wiki/संयुक्त_राष्ट्र

3. https://www.bbc.com/hindi/international

4. https://www.aftabfazil.blogspot.in

5. https://www.khalidanisansari.blogspot.in

6. https://hindi.indiawaterportal.org

7. https://www.hindisamay.com

8. https://www.rachanakar.org